॥ श्रीः ॥

६४ तन्त्रोंका सार सर्व तन्त्रोत्तम

श्यामारहस्यतन्त्र.

जिसको

नजीबाबाद निवासी दैवज्ञ पंडित कुन्दनलालात्मज पंडित हरिशङ्करजी शास्त्रीने भाषाटीका से अलंकृत किया.

वही

बंबई टाइपमें मुद्रितहुआ.

१७ अगस्त सन् १८९९ ई०

मिलनेका पता–

पं० हरिशङ्करजी शास्त्री अध्यक्ष
संस्कृत पुस्तकालय
हरिद्वार.

प्रथमबार १००० प्रति] –***– [मूल्य २)

Printed at the "Lakshminarayan" Press
MORADABAD

पूर्वदृष्टव्यम् ।

भो तांत्रिको आपकी चिरकालीन आशा पूर्ण होगई जिस श्यामारहस्य तंत्र तांत्रिक जन बाहर की हवा भी नहीं लगाते थे वही तंत्र आज छपाकर प्रकाशित कि गयाहै । इस तंत्र के द्वारा साधक, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुवेर, यम, देव, दा भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, पन्नग, ब्रह्मराक्षस, वैताल, आदि सम्पूर्ण चराचर को मे करसक्ता है । इसही के द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन, आकर्षण, आदि २ जि कार्यकी आवश्यक्ता हो सिद्ध करलीजिये । अष्टसिद्धि नवनिद्धि तो साधक के संमु हाथ बांधे सदैव उपस्थित ही रहती हैं ।

जिसके प्रभाव से ब्रह्मा, सृष्टि उत्पन्न करता है, विष्णु, पालन करताहै, शि संहार करता है जिसके प्रभाव से जड़ चेतन स्थावर जंगम प्रतीयमान होरहे हैं जि के साधन से मुमुक्षु को मोक्ष प्राप्त होती है इस तंत्र में उनहीं महामाया कालिका विधान साधन प्रकार कवच, सहस्रनाम स्तोत्रादिकोंके द्वारा वर्णनकियाहै । उत्तरकालि दक्षिणकालिकाका पूजन प्रकार अत्युत्तमतासे वर्णनहै यह सामान्य दर्शायाहै ग्रन्थ गुरूता वाणी से कथन नहीं होती देखने से ही प्रतीत होती है जिनको तंत्र शास में रुचि है या जो कालिका के उपासक हैं अथवा जिनका विश्वास तंत्र शास्त्र नहीं है उनको ही क्या सम्पूर्ण गृहस्थी को गृहस्थ की रक्षार्थ रखना योग्यहै य आपको संस्कृत के गद्य पद्यों का आनन्द लेना है यदि आपको प्राचीन कविता देखना है यदि आपको जगन्मोहनी कालिका को प्रसन्न करना है और अपनाहि चाहते हो तब अवश्य इस महान् आश्चर्य ग्रंथ के ग्रहण करने में विलम्ब मतक हमने सर्व साधारण ले सकें इसी कारण सुन्दर अक्षरों में छपाकर विलायती कपडे जिल्द बंधवादी है मूल्य केवल २, खर्चा ।≈, कुल २।≈, में आप को घर बैठे मिले शीघ्रता करो ऐसा अवसर पुनः नहीं मिलेगा ॥

पुस्तक मिलने का ठिकाना–

पं० हरिशङ्कर जी शास्त्री

हरिद्वार.

विषय सूची।

कालिकोपनिषद् इत्यादि २ ऐसे अमूल्य ग्रंथका मू० २, डाकव्यय ।=, १८९६॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ श्यामारहस्य तंत्रम् ।

भाषाटीका सहितम् ।



मंगलाचरण ।

गणेशंसिद्धिसदनं शारदासुखदायिनीम् । शंकरं शंकरं नत्वा सर्व्वापन्निवारणम् ॥ कन्हैयालालमिश्रोहं हरि शंकर शास्त्रिणा । प्रेरितोह्युपकाराय तान्त्रिकानांमहात्मनाम् ॥ सर्वाभीष्टप्रदां शुभ्रां साधकानांमनोरमाम् । श्यामारहस्यतंत्रस्य कुर्वेऽहं व्यांसुमंगलाम् ॥

प्रथमः परिच्छेदः ।

देवींदानवदैत्यदर्पनिवहानुन्मूलयन्तीं शिवां ब्रह्मानन्दमहेशमौलिमणिभिः संसेवितांघ्रिद्वयाम् । नत्वा श्रीगुरुपादपद्मपरमा मोदामृतप्लावितः पूर्णानन्दगिरिस्तनोति विमलां श्यामारहस्याभिधाम् ॥

स्वतन्त्रं वीरतन्त्रञ्च तन्त्रं फेत्कारिणीं तथा । कालिकाकुलसर्वस्वं कालीतंत्रच यामलम् ॥

जो दानव और दैत्य गणोंका दर्प उन्मूलन करते हैं ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि ईश्वर श्रेष्ठगण भी जिनके दोनों चरणोंकी सेवा करते हैं उन्हीं देवी शिवाको प्रणाम् करके और श्री गुरुके चरणारविन्द के परमानंद सुधा संदोहमें प्लावित होकर पूर्णानंदगिरि श्यामारहस्य नाम्नी अतीव दुर्लभ तंत्र संहिता प्रणयन करते हैं ॥ १ ॥

स्वतंत्रवीरतंत्र, फेत्कारिणीतंत्र कालिकाकुल सर्वस्व, कालीतंत्र, यामल,

कुलचूडामणिश्चैव कुमारीतंत्रमेवच । कुलार्णवं तथाकालीकल्पं भैरवतन्त्रकम् ॥ कालिकाकुलसद्भावं तथा चोत्तर तन्त्रकम् गुरूणांच मतं ज्ञात्वा साधकानां तथा मतम् ॥ शुद्धबुद्धि स्वभावार्थं वक्ष्यामि मोक्षकारिणीम् ॥

तदुक्तं स्वतन्त्रे ।

क्रोधीशं विन्दुयुक्कान्ते ! त्रिमूर्त्यग्निसमायुतम् । त्रिर्लिखेत् परतो देवि ! हुंकारद्वयमेव च । मायाद्वयं समालिख्य अत्रिसंवर्त्तसूक्ष्मयुक् ॥ त्रैकालिके सप्तवर्णान् पूर्ववत् परमेश्वरि ! । स्वाहान्तेयं महाविद्या द्वाविंशत्यक्षरापरा ॥ अनया सदृशी विद्या नास्ति ज्ञानेतु मामके ॥

कुमारीतन्त्रेऽपि । भैरव उवाच ।

अतिगुह्यतरं ह्येतत् ज्ञानात्मकं सनातनम् । अतीव च सुगोप्यञ्च कथितुं नैव शक्यते ॥ अतीव च प्रियासीति कथयामि तव प्रिये ! । रूपाणि बहुसंख्यानि प्रकृतेः सन्ति भाविनि ! ॥ तेषां मध्ये महेशानि ! कालीरूपं मनोहरम् । विशेषतः कलियुगे नराणां भुक्तिमुक्तिदम् । तस्यास्तुपासकाश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः । चन्द्रः सूर्य्यश्च वरुणः कुवेरोऽग्निस्तथापरः ।

कुलचूडामणि, कुमारीतंत्र, कुलार्णव, कालीकल्प, भैरवतंत्र, कालिकाकुलसद्भाव, उत्तरतंत्र, एवं गुरुवर्ग और साधकगणोंका मत यह सब विशेष जानकर शुद्ध बुद्धि स्वभावार्थ यह मोक्ष जनक संहिता कीर्त्तन करूंगा ॥

कुमारीतंत्र में भैरवने कहा है कि काली का विषय अत्यन्त गुह्यतर है । यह अतीव गुप्त रक्खे । किसीके निकट न कहै, तुम मेरी अत्यन्त प्रियहो, इसकारण तुम्हारे निकट कहता हूं ॥

हे भाविनि ! प्रकृति के बहु संख्यक रूपहै तिनमें हे महेश्वरि ! कालीरूपही मनोहर है । विशेषतः कलियुगमें यह काली रूपही संपूर्ण लोकको भुक्ति मुक्ति प्रदान करताहै । ब्रह्मा, विष्णु, और शिवादि ईश्वरगण और चन्द्र. सूर्य, वरुण,

दुर्वासाश्च वशिष्ठश्च दत्तात्रेयो बृहस्पतिः । बहुना किमिहोक्तेन सर्वे देवा उपासकाः ॥ कालिकायाः प्रसादेन भुक्तिमुक्तिःकरेस्थिता ॥ तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि यतो रक्षेद्युगत्रयम् । ककारं वह्निसंयुक्तं रतिविन्दुसमान्वितम् ॥ त्रिगुणंच ततः कूर्चं युग्मं लज्जायुगं तथा । दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववीजानि वेष्टयेत् ॥ वह्निजायावधिः प्रोक्तः कालिकाया मनुर्मतः । न सुसिध्याद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ॥

श्रुतिरपि–अथहैनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमाप्नोति सुभगां त्रिगुणयुक्तां कामरेफेन्दिरां विन्दुमेलनरूपां एतात्रि गुणितामादौ तदनु कूर्चद्वयम् । कूर्चवीजञ्ज–व्योमषष्ठस्वर बिन्दुमेलनरूपम् । तदेव द्विरुच्चार्य्य भुवनां द्वयम् । भुवना तु व्योमज्वलनेन्दिरा शून्यमेलनरूपा । तदुक्तं–दक्षिणे का-

---

कुबेर, अग्नि दुर्वासा, वशिष्ठ, दत्तात्रेय, बृहस्पति, अथवा अधिक कहनेसे क्याहै ? समस्त देवताभी उसी के वशीभूत हैं । कालिकाके प्रसाद से भुक्ति मुक्ति करस्थ होती है । उसका मंत्र कहता हूं । ककारको वह्नि संयुक्त और रति विन्दु समन्वित करके त्रिगुणित करै फिर कुर्चयुग्म और लज्जायुग्म ग्रहण करके " दक्षिणे कालिके" यह पद मिलाय संपूर्ण पूर्व वीज वेष्टन करने चाहिये । अंतमें वह्निजाया संयुक्त करै इसकोही कालीमंत्र कहते हैं ॥ *

इसमंत्र में किसीप्रकार सुसिद्धादि की अपेक्षा नहीं है । अरिमित्रादि दूषणभीनहींहै इसके मननमात्रसेही पुरुषशिवमय होसक्ताहै और संपूर्णसिद्धियों का ईश्वरत्व लाभ होताहै । इसमें किसी प्रकारका परिश्रम करना नहीं होता

---

* इसका सन्निवेश इस प्रकार है । क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा । वह्नि शब्द में र, रतिविन्दु शब्द में दीर्घईकार का परचन्द्र विन्दु है, तो क × ^ × ी + ँ = ह्रीं इस प्रकार हुआ । इस को त्रिगुणित करने से क्रीं क्रीं क्रीं होता है । कूर्च शब्द में हूं > लज्जा शब्द में ह्रीं ^ वह्नि जाया शब्द में स्वाहा ॥

लिके तवाभिमुख्यता । तदनु वीजसप्तकमुच्चार्य्य बृहद्भानुजायामुच्चरेत् । मत्वा शिवमयो भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । गतिस्तस्यास्ति नान्यस्य स तु नारीश्वरः स तु दैत्येश्वरः स तु सर्वेश्वर इति ॥

भैरव उवाच।

नात्र चिन्ताविशुद्धिर्वा नारिमित्रादिदूषणम् । न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ॥ देवैर्देवत्वविषये सिद्धैः खेचरसिद्धये । पन्नगैराक्षसैर्वन्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ॥ कामिभिर्धर्मिभिश्चार्थलिप्सु भिः सेवितां पराम् । न चित्तव्ययवाहुल्यं कायक्लेशकरं न च ॥ तत्र यश्चिन्तयेन्मन्त्री सर्वं सिद्धिसमृद्धिदाम् ॥ तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः । गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥ तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः । राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः । वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः॥

समय असमयकी भी अपेक्षा नहीं है । देवगण देवत्व सिद्धिके लिये सिद्ध गण खेचर सिद्ध के लिये, कामीगण धर्मिगण, और द्रव्य की इच्छा करने वाले मनुष्य अपने अपने अभिप्राय सिद्धिके लिये इस भगवती कालिकाकी परिचर्या करते हैं । इस में वित्तव्यय (धनकाव्यय) वा काय क्लेश स्वीकार करना नहीं होता है । देवी कालिका सर्वविध सिद्ध और संपूर्ण समृद्धि प्रदान करती है । जो मत्र शील पुरुष इनकी चिन्ता करताहै, समस्त सिद्धि सर्वदा उसके हस्तगत् रहती है इस विषय में संदेह नहीं है । अधिक क्या सभामें उसके मुखसे गद्य पद्य मयीवाणी प्रादुर्भूत होती है । उसको देखते ही वादीगण तत्काल निष्प्रभ (प्रभाहीन) होते हैं । अन्यकी बात क्या कहूं स्वयं नरपतिगणभी उसका दासत्व करते हैं । वह व्यक्ति अग्निको भी शीतल जलको भी स्तम्भित सूर्यकी गतिको भी अवरुद्ध, दिनको भी रात्रि

दिवारात्रिव्यत्ययञ्च वशीकर्त्तुं क्षमो भवेत् । सर्वस्यैव जनस्यैव वल्लभः कीर्त्तिवर्द्धनः ॥ अन्ते च भजते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरैः । चन्द्रसूर्य्यसमो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि । न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् यः स्मरेत् घोरदक्षिणाम् ॥

अथास्याः सपर्य्याविधिर्लिख्यते—ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थायबद्ध पद्मासनः शिरः स्थाधोमुखशुक्लवर्ण—सहस्रदलकमलकर्णिकास्थ—शशहीनशरदिन्दुसुन्दर—चन्द्रमण्डलांतर्गतहंसपीठे निजगुरुं ध्यायेत् ॥ यथा—शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुद्धक्षौमविराजितम् । गन्धानुलेपनं शान्तं वराभयकराम्बुजम् ॥ मन्दस्मितं निजगुरुं कारुण्येनावलोकिनम् । वामोरुशक्तिसंयुक्तं शुक्लाभरणभूषितम् ॥ स्वशक्त्या दक्षहस्तेन धृतचारुकलेवरम् । वामे धृतोत्पलायाश्च सुरक्तायाः सुशोभनम् ॥ परानन्दरसोल्लासलोचनद्वय पङ्कजम् ॥

और रात्रिको भी दिन करके सबको वशीभूत करने में समर्थ होता है शत्रुमित्र आत्मपर (अपना पराया) सब लोकोंका वल्लभ और कीर्त्ति बंधन होता है शरीर छोडकर चरम में देवीका सुदुर्लभगणत्व लाभ करताहै चन्द्र सूर्यकी समान होकर अयुतकल्प (दशकल्प) स्वर्ग में अवस्थित करता है । फलतः जो व्यक्ति दक्षिण कालिका और श्मशान कालिका का स्मरण करता है उसको कुछभी दुर्लभ नहीं रहता ॥

अब देवीकी पूजाविधि लिखतेहैं। ब्राह्ममुहूर्तमें उठ, बद्ध पद्मासनहो मस्तक व अधोमुखमें संस्थित शुक्लवर्ण सहस्रदल कमल कर्णिका में अधिष्ठित शरत्कालीन शशहीन चन्द्रमाकी समान सुन्दर चन्द्रमण्डलके अन्तर्गत हंस पीठमें निज गुरु का ध्यान करे । यथा वह शुद्ध स्फटिक सान्निभ, शुद्ध क्षौम बिराजित, गंधानुलिप्त, शमगुण विशिष्ट, वराभयकर—पद्म समन्वित, मृदुहास्य समलंकृत, सकरुण दृष्टि संपन्न और इनके वामऊरू में शक्ति विराजमान् है । उनके समस्त आभरण शुक्ल वर्ण हैं, स्वकीय शक्ति दक्षिणहस्त में तदीय सुचारु कलेवर धारण किया है और उत्पल हस्त में होने से उन का वाम भाग शोभा पाता है तिसके द्वारा उनकी परम शोभा का संचार हुआ है

इति ध्यात्वा दिव्याभिषेकेण गुरुणा संप्रदायानुगतकृतनामपूर्वकंमानसैरुपचारैराराध्य ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रेंहसक्षमलवरयुं हसखफ्रें श्रीअमुकानन्दाथीय श्रीअमुकदेवशर्मा श्रीगुरु पादुकां पूजयामि । इति गुरुपादुकां नत्वा दशधा जपसमर्पणं कृत्वा प्रणमेद् यथा–

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अथ सारदाटीकाकारश्रीराघवभट्टमतेन तुशक्तिविषयेगुरोर्ध्यानम् । शुक्लवर्णमेव न गौरम् । तदितरविषये शुक्लमेवेति निश्चितं वचनद्वयदर्शनात् । तद्यथा–

श्वेताम्बरधरं गौरं श्वेताभरणभूषितम् । अपिच–रक्तमाल्याम्बरधरं सुरक्तं पद्मविस्तरम् ॥

इति तु असमीचीनम् । श्वेतवर्णे गुरोर्ध्यानान्तरं भवति शक्तिविषये तु तथा दर्शनात् । यथा ज्ञानार्णवे ।

ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कर्पूरधवलो गुरुः । तस्मात् सम्प्रदायानु गत्वा गुरोर्ध्यानं कुर्य्यात् ॥ इति शेषः ।

अथ गुरोराज्ञां गृहीत्वा मूलाधारपद्मकर्णिकास्थत्रिकोणान्तर्गत–स्वयम्भू लिङ्गवेष्टनीं प्रसुतभुजगाकारां सार्द्धत्रि·

उनके नेत्र कमल परमानंद रासोल्लास में विकसित हैं । अनन्तर गुरुकी पादु का पूजा पुरःसर उसमें दशवार नमस्कार करके जप समर्पणान्तर प्रणाम करै । यथा–जो ज्ञानरूप अंजन शलाकाकी सहायतासे अज्ञान तिमिरमें अंधीभूत (अंधे) लोकोंके चक्षु उन्मीलित करतेहैं, उन्हीं श्रीगुरुको नमस्कार है ।

अनन्तर श्री गुरुकी आज्ञा ग्रहण कर, मूलाधार पद्म कार्णिका स्थित त्रिकोण—मध्यगत स्वयम्भू लिंगको जिन्हों ने वेष्टन किया है, जिनका आकार प्रसुप्त (सोते हुए) भुजंग (सर्प) की समान है, जो सार्द्ध त्रिवलय परिमित और विद्युत् पुंजप्रभा और नीरांश शूकर की समान तनुमा·

वलयां विद्युत्पुञ्जप्रभां नीवारशूकतन्वीं कुलकुण्डलिनीं इष्ट देवतास्वरूपां हुंकारेण हंसइति मनुना वधे वनदहनयोगात् सचैतन्यां विधाय ब्रह्मवर्त्मना परमशिवे नीत्वा चन्द्रमण्डले कुलगुरून् ध्यायेत् । तदुक्तं कालिकास्मृतौ ।

मूलाधारे स्मरेद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् । तस्याग्निरेखामानीय अध-ऊर्द्ध व्यवस्थिताम् ॥ नीलतोयदमध्यस्थतड़िल्लेखेव भासुरम् । नीवारशूकतन्वञ्च सुपीतां भास्करोपमाम् ॥ तस्याः शिखाया मध्येच परमोर्द्ध व्यवस्थिताम् । स ब्रह्मा स स्वरःशान्तःस शिवःपरमस्वराट् । स एव विष्णुःस प्राणःस कलाग्निःस चन्द्रमाः ॥ इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्व पापैःप्रमुच्यते । स महापातकेभ्यश्च पूतो भवति । सर्वसिद्धिं कृत्वा भैरवो भवति ।

वापन्न है उन्ही इष्ट देवता स्वरूप कुल कुण्डलिनी को हुंकार सहित हंस इत्यादि मंत्रमें जागारितकर ब्रह्मवर्त्म योग व परम शिवमें लाकर उसमें संयुक्त करै । अनन्तर उनके सहित कुल गुरु इत्यादि सबका एकत्र ध्यान करै ।

कालिका स्मृति में भी कहा है कि मूलाधार में जो तेजोनिधि दिव्य त्रिकोण विराजमान है उसको स्मरण कर, उस में अग्नि रेखा आनयनपूर्वक उस शिखाके मध्य अध- ऊर्द्धमें जो अवस्थिति करतीहै, जो नीलतो यद मध्यस्थ तडिल्लेखा (बिजलीके रेख) की समान परम विकटस्वर भावयुक्तहै जो नीवार शूकरकी समान अतिसूक्ष्म स्वरूप संपन्नहै जो सुंदर पीतवर्ण और भास्करसदृशीहैं उन्हीं परम ऊर्द्धमें व्यवस्थिता कुलकुण्डलिनीका ध्यानकरै । क्योंकि वही ब्रह्मा, वही विष्णु, वही स्वर्ग. वही परम–स्वप्रकाश शिव. वही प्राण वही कालाग्नि और वही चन्द्रमा हैं । इसप्रकार कुल कुण्डलिनीका ध्यान करनेसे सर्व प्रकार के पाप दूरहोतेहैं । वही क्या संपूर्ण महा पातकों सेभी परम विशुद्धि प्राप्त होतीहै और सर्व विध–सिद्धि संग्रह सहित भैरवत्व लाभ होताहै ।

अथ कुलगुरून् ध्यायेत् यथा—कुलचूड़ामणौ । मूलादिब्रह्म रन्ध्रान्तं गुरुं ध्यात्वा गुरुं स्मरेत् । प्रह्लादानन्दनाथाख्यं सकलानन्दमेवच ॥ कुमारानन्दनाथाख्यं वशिष्ठानन्दनाथकम् । क्रोधानन्दसुखानन्दौ ध्यानानन्दं ततःपरम् ॥ बोधानन्दं तत्रैव ध्यायेत् कुलसुखोपरि । महारसरसोल्लास हृदयाघूर्ण लोचनाः ॥ कुलालिङ्गनसंभिन्ना घूर्णिताशेषमानसाः । कुल शिष्टैःपरिवृत्ता पूर्णान्तःकरणोद्यताः ॥ वराभययुताःसर्वे कुल तन्त्रार्थवादिनः ।

एवं कुलगुरून्नत्वा विसृज्य कुलमातृकाम् ॥ कुल- स्थाने समानीय स्नानार्थं तीर्थमाश्रयेत् । शाक्तं कुलगुरुं वत्स ! स्मृतं कुलसुखावहम् ॥ रहस्यमद्भुतं प्रोक्तं गोपत्व्यंपशु शङ्कटे । कुलनाथं परित्यज्य ये शाक्ताः परसेविन । तेषां शिक्षा च यागश्च अभिचाराय कल्पते । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन

कुल चूडामणि में सब कुल गुरुओं का निर्देश कियाहै । यथा मूलादि ब्रह्म रन्ध्रान्त काध्यान करके गुरुका स्मरण करे । प्रथम प्रह्लादा नन्दनाथ फिर यथा क्रमसे सकलानद नाथ, कुमारानन्दनाथ, वशिष्ठा नंद नाथ, क्रोधानन्द नाथ, सुखानन्दनाथ ध्यानानन्द नाथ, बोधानन्द नाथ, इनका ध्यान करे । यह सब कुल गुरु पद वाच्यहैं । इनका हृदय परमानंद रसमें उल्ल सित. लोचन घूर्णित और अन्त करण पूर्णभाव युक्त है । कुल शिष्य गणों ने इनको वेष्टन कर रक्खा है, यह सभी वरा भय सपन्न एवं सभी कुल और तंत्रार्थ वादी है ।

इसप्रकार कुल गुरु गणोंको प्रणामकर विदादे· कुल मातृकाको कुल स्थान में लाकर स्नानार्थतीर्थका आश्रयकरे शाक्तकुल गुरुही कुल सुख देनेवाले कह कर निर्दिष्ट हुएहैं । इस विषयमें जो अद्भुत रहस्य कथित हुआहै उसको पशु संकट में गायन करे। जो शाक्त कुलनाथको परित्यागकर अपर (दूसरे) की सेवाकरते हैं, उनकी शिक्षा और याग समस्तही अभिचार में परिकल्पित होते हैं । इसी कारण सर्व प्रयत्न से कुलीन गुरुका आश्रय ग्रहण करे ।

कुलीनं गुरुमाश्रयेत् ॥ कुलीनःसर्वविद्यानामधिकारीति गीयते । दीक्षागुरुः स एवात्मा सर्वमन्त्रस्य नापरः ॥

अन्यच्च श्रुतौ ।

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् । अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥ इति । अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् । सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत् ॥ प्रातःकृत्यमवश्यमेव नित्यं करणीयम् । प्रातःकृत्यमकृत्वा तु यो देवीं भक्तितोऽर्चयेत् । तस्य पूजा च विफला शौचहीना यथाक्रिया ॥

अथ नद्यादौ गत्वा कालिकारूपं सर्वं विभाव्य सुवर्ण रजतात्मकं कुलगर्भमनामातर्जनीषु धृत्वा आचम्य मूलं स्मरन् । मलापकर्षकं कृत्वा आचम्य ॐ अद्येत्यादि कुलदेवताप्रीतिकामो मन्त्रस्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य जले त्रिकोण

कुलीन गुरुही सर्व विद्या के अधिकारी कहकर परिगणित हैं । वही दीक्षा गुरू हैं । क्योंकि वही सब मंत्रोंकी आत्मा हैं, अन्य कोई नहीं ॥

श्रुतिमें भी कहा है, जो प्रथम प्रयाण में प्रकाशमान, प्रति प्रयाण में अमृतायमान् और अन्त पदवी में अनुसञ्चरण करती हैं, उन्ही आनन्द रूपिणी अबला की शरण ग्रहण करता हूं । तथाहिमैंही देवमैं अन्य कोई नहीं । मैंही ब्रह्म । सुतरां किसी कालमेंही मुझको शोक भोगकरना नहीं होता । मैंही सच्चिदानंद विग्रह । आत्मा को इसरूपमें भावनाकरै । नित्य अवश्यही प्रातःकृत्य करना चाहिये । जो व्यक्ति प्रातः कृत्य न करके भक्ति सहित देवीकी अर्चना करताहै, उसकी वह पूजा शौच हीन क्रियाकी समान विफल होतीहै ।

अनन्तर नद्यादि में गमन और सर्वतो भाव में कालिका के रूपकी चिन्ता कर, अनामा और तर्जनीमें सुवर्ण रजतात्मक कुलगर्भ धारण पूर्वक आचमन सहित मूल मंत्र स्मरणान्तर अघ मर्षण करै । तदनन्तर आचमन करके " ॐ अद्य त्यादि" कह संकल्प कर जलमें त्रिकोण चक्र निर्माण और

चक्रं कृत्वा सूर्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया तीर्थमावाह्य . मूलान्ते ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा विद्यातत्त्वायस्वाहा । शिवतत्त्वाय स्वाहा । इति आचामेत् अथवा ॐ ह्रीं स्वाहा । इत्यनेन त्रिराचम्यात्मानं त्रिःसंप्रोक्ष्य मूलेन मृत्तिकया अङ्गलेपनं कृत्वा मूलं पठन् कुम्भमुद्रया स्वमूर्ध्नि त्रिर्जलमभिषिच्यांगुलीभिः श्रवणादीनि सप्तच्छिद्राणि संरुध्य त्रिर्निमज्जेत्। तदुक्तं कुमारीतन्त्रे–

वेदाद्यश्च तथा माया स्वाहेत्याचमनं मतम्।नीलतन्त्रेऽपि–

मृत्कुशानपि संगृह्य गत्वा जलान्तिकं ततः ॥ मलापकर्षं कृत्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत् । विद्यया त्रिर्निमज्यैव आचामेत् पयसा पुनः ॥

कुलचूडामणौ ।

कृष्णरक्तहरिन्नीला विविधा मम मूर्त्तयः । तत्र यत्कुल

अंकुश मुद्राकी सहायतासे सूर्य मण्डलसे तीर्थ आवाहन पुरः सर मूल मंत्र जपके अन्तमें" ॐआत्म तत्वाय इत्यादि कहकर आचमन करना चाहिये। अथवा ॐ ह्रीं स्वाहा इत्यादि विधानसे तीन वार आचमन और तीनवार आत्मा को संप्रोक्षण पूर्वक मूलमंत्र जपकी सहायतासे मृतिका ग्रहण और उससे अंग लेपन कर मूल मत्रका पाठकरै । पाठ के अन्त में कुम्भ मुद्राकी सहायता से अपने मस्तक में तीनवार जल सेचन (माँथे से तीन वार जल गिराना) कर संपूर्ण अंगुलियों के साहचर्य कहीं २ में श्रवणादि सप्तछिद्र संरूद्ध करके तीनवार निमग्न होवै ।

कुमारीतंत्रमें कहाहै कि,वेदादि माया और स्वाहा इत्यादिही आचमन कह कर परिगणितहैं । नीलतन्त्रमें भी कहाहै कि, मृत्तिका और कुशग्रहण पूर्वक जलान्ति (बावड़ी) को गमन और अघमर्पण करके मंत्रस्नान करै । विद्या तत्वकी सहायतासे तीनवार अवगाहन कर पुनर्वार जल ग्रहणपूर्वक आचमन करनाचाहिये । कुल चूडामणि में कहा है कि, मेरी समस्त मूर्त्ति कृष्ण, रक्त, हरित् और पीत इत्यादि भेद से नाना प्रकार हैं । तिनमें जो कुलशिष्य है

शिष्यश्च स तद्रूपं परामृशन् ॥ दिवं सर्वामथोर्वींश्च पाताल भूतसम्भवाम्। आचान्तःकुलदर्भेण स दर्भःकुलपुत्रकः ॥ कुलपात्रे तु दूर्वांश्च सतिलं सजलं ततः। गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत्॥ कृतसङ्कल्प एवादौ कुलचक्रं जले न्य सेत्। जलस्थानात् समानीय कुलमुद्रांकुशेन च ॥ कुलतीर्थानि तत्रैव समावाह्य शिवात्मकं । तत्वोपञ्च त्रिधापीत्वा त्रिधाच प्रोक्षणं मनोः ॥

अथ अंकुशमुद्रा । यथा ज्ञानार्णवे—

दत्तमुष्टिं विधायाथ तर्जन्यंकुशरूपिणी। अंकुशाख्या महामुद्रा त्रैलोक्याकर्षणक्षमा ॥

तीर्थावाहनमन्त्रो यथा । श्रीक्रमसंहितायां—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

अथ स्वतन्त्रेऽपि ।

मूलं पठन् मूर्ध्नि तोयं मुद्रया कुम्भसंज्ञया । क्षिप्त्वा

वह वैसीही परामर्श पूर्वक आचमन और कुलपात्र में दूर्वा एवं तिल सहित जल ग्रहण करके कुलदेवकी प्रीतिके लिये स्नान करै। अनन्तर संकल्प कर, जल में कुल चक्र निक्षेपपूर्वक जल स्थान से आय, उस स्थानमें ही कुल मुद्रांकुश द्वारा संपूर्ण कुल तीर्थोंका आवाहन कर वह शिवात्मक जल तीनवार पान और तीनवार मंत्रका प्रोक्षण करै ।

अंकुशमुद्रा ? यथा?—ज्ञानार्णवमें दश मुष्टि विधान पूर्वक तर्जनी को अंकुश रूपिणी करे । इसकाही नाम अंकुशाख्य महामुद्राहै । इसके द्वारा त्रैलोक्य आकर्षण कर सकताहै । तीर्थावाहनमंत्र यथा?—श्री क्रम संहिता में गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा सिन्धु, कावेरी तुम संपूर्ण जलमें, सन्निहित (स्थित) होओ । स्वतन्त्रमें भी कहा है, यथा—साधकाग्र गण्य पुरुष मूल मंत्र पाठकरके कुम्भ मुद्रा द्वारा मस्तकमें जलका छींटादे तीन वार

वारत्रयं देवि ! आचामेत् साधकाग्रणीः । आत्मविद्याशिवै-स्तत्त्वैस्ततो यागगृहं विशेत् ॥

कुम्भमुद्रा यथा गुप्तार्णवे ।

दक्षांगुष्ठे परांगुष्ठं क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु । सावकाशाञ्चैव मुष्टिं कुम्भमुद्रां विदुर्बुधाः ! सप्तच्छिद्राणि संरुध्य ततो मज्जे त्रिधा सुधीः॥ आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचामेत् साधकाग्रणीः। वह्निजायां ततो दत्त्वा शुद्धेन पयसा प्रिये !॥

ॐ मानध्वनि वज्रिणि महाप्रतिशरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा । इति शिखाबन्धनम् । मूलेन तिलकं कृत्वा पूर्ववदाचम्य वैदिकीं सन्ध्यां विधाय तांन्त्रिकीं सन्ध्यां कुर्य्यात् । तदुक्तं कुमारीकल्पे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मानान्ते च ध्वनीति च । वज्रिणीतिपदं प्रोक्तं महाप्रतिशरे तथा ॥ रक्षद्वयं हुं फट् स्वाहा इति च तदनन्तरम् । । अनेनैव च मन्त्रेण रक्षा कुर्य्याद्विचक्षणः ॥

रक्षामिति शिखाबन्धनरूपेण वस्त्राञ्चले ग्रन्थिबन्धनरूपेण वा कुर्य्यादित्यर्थः । सारदाटीकायाञ्च—

उक्तेनैव विधानेन कृत्वा स्नानञ्च तान्त्रिकम् । वैदिकीं तान्त्रिकीं सन्ध्यां कृत्वा तर्पणमाचरेत् ॥

आचमन करे । अनन्तर आत्मतत्व, विद्यातत्व, और शिवतत्व सहित याग गृहमें प्रविष्टहोवे । कम्भ मुद्राका नियम यहीहैकि दक्षिण हाथके अगूठेमें बायें हाथका अंगूठा—निक्षेप करके दोनों हाथों के द्वारा परस्पर असंश्लिष्ट भावमें मुष्टिबधन (मुट्ठीबांधने) को कुभ मुद्रा कहते हैं । अनन्तर परम धीमान् साधक सप्तछिद्र सवरण (ढक) करके तीनवार अवगाहन पूर्वक आत्म तत्व, विद्या तत्व, और शिव तत्व द्वारा आचमन करे । अनन्तर निर्मल जल द्वारा वह्निजाया को दान करके "ओं मान-ध्वनि" इत्यादि मत्र से शिखा बंधन और मूल मत्र से तिलक करके पूर्ववत् आचमन सहित वैदिकी संध्या विधानान्तर तान्त्रिकी सध्या करे ॥

तान्त्रिकीसन्ध्या यथा तदुक्तं तत्रैव । पुनराचम्य विन्यस्य षड़ङ्गमपि मन्त्रवित् । वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदकविन्दुभिः ॥ सप्तधा प्रोक्षणं कृत्वा मूर्ध्नि मन्त्रं समुच्चरन् । अवशिष्टोदकं दक्ष हस्ते संगृह्य बुद्धिमान् ॥ इड़याकृष्य देहान्तः क्षालितं पापसञ्चयम् । कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनाड्या विरेचयेत् ॥ दक्षहस्ते च तन्मंत्री पापरूपं विचिन्त्य च । पुरतो वज्रपाषाणे प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रतः ॥

अन्यत्रापि ।

षड़ङ्गन्यास माचर्य वामहस्ते जलंततः । गृहीत्वा दक्षिणे चैव संपुटं कारयेत्ततः ॥ शिववायुजलपृथ्वीवह्निवीजैस्त्रिधा पुनः । अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया ॥ निक्षिपेत्तज्जलं मूर्द्धनि शेषं दक्षे विधाय च । शरीरान्तःस्थितं पापं क्षालयेत् साधकाग्रणीः ॥

तांत्रिकी संध्या यथा?—पुनर्वार आचमन और षडङ्ग विन्यास पूर्वक वाम हस्त में जल ग्रहण कर गलित उदक बिन्दु समूह में (सडे हुएजल के बूँदों में) सप्तवार प्रोक्षण और मस्तक में मंत्र समुच्चारणांतर अव शिष्ट उदक दक्षिण हाथ में संग्रह कर इडा द्वारा आकर्षण और देहान्तर्वर्त्ती पाप समूह प्रक्षालन करे। फिर कृष्ण वर्ण उस उदक को दक्षनाडी द्वारा विरेचन और दक्षिण हाथ में उस को पाप रूपसे चिन्ताकर अस्त्र मत्र में पुरोवर्त्ती वज्र पाषाण में उस जलको प्रोक्षण करे। अन्यत्र भी कहा है कि, षडङ्गन्यास करके बायें हाथ में जल ग्रहण पूर्वक दक्षिण हाथ में संपुट करना चाहिये। फिर शिव वायु, जल, पृथ्वी और वह्नि बीज की सहायता से पुनर्वार तीनवार अभिमंत्रित, और मूल मत्र में तत्व मुद्रा द्वारा सातवार वह जल मस्तक में न्यस्त करे। अवशिष्ट जल दक्षिण हाथ में लेकर शरीरान्तः स्थित पाप प्रक्षालन करे ॥

अथ प्रयोगः । पूर्ववदाचम्य षडङ्गन्यासं कृत्वा वामहस्ते जलं निधाय दक्षहस्तेनाच्छाद्य हं यं वं लं रं इति त्रिरभिमंत्र्य मूलमुच्चरन् गलितोदकविन्दुभिः तत्वमुद्रया मूर्द्धानि सप्तधा भ्युक्षणं कृत्वा शेषजलं दक्षहस्ते समादाय तेजोरूपं ध्यात्वा इड़याकृष्यं देहान्तः पापं प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं ध्यात्वा पिङ्गलया विरिच्य पुरः कल्पितवज्रशिलायां फड़िति प्रक्षिपेत् । इति तांत्रिकी सन्ध्या ॥

ततः हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य जले यन्त्रं ध्यात्वा सावरणां देवतामावाह्य ऐशाने ऐं श्री अमुकानन्दनाथभैरवस्तृप्यतामिति देवतीर्थेन त्रिः सकृद्वा शुद्धोदकेन सन्तर्प्य वह्नौ परमगुरुं नैर्ऋत्यां परापरगुरुं वायव्यां परमेष्ठिगुरुं पूर्ववत् संतर्प्य मध्ये श्रीअमुकदेवता तृप्यतामिति यथाशक्तितःसन्तर्प्य एकैकांजलिना परिवारान् सन्तर्पयेत्। अशक्तश्चेत् मूलमुच्चरन्

अत्र प्रयोग कहते हैं—पूर्ववत् आचमन तदुपरान्त यथा क्रमसे षडङ्ग न्यास, वाम हस्तमें जल ग्रहण, दक्षिण हस्तमें आच्छादन, हं, बं, इत्यादि मंत्र में अभिमंत्रण, मूल मंत्र उच्चारण, गलित उदक विन्दु द्वारा तत्त्व मुद्राकी सहायता से मस्तक में सप्तवार अभ्युक्षण, अवशिष्ट जल दक्षिण हस्त में ग्रहण, तेजो रूपमें ध्यान इडाद्वारा आकर्षण पूर्वक देहान्तवर्त्ती पाप प्रक्षालन और कृष्णवर्ण उस जलका पापरूप में ध्यान और पिंगलाद्वारा विरेचन, यह सम्पूर्ण कार्य करने के पीछे पुरः कल्पित प्रथम कल्पित बज्र शिला में अस्त्र मंत्रसे प्रक्षेप करे। यही तान्त्रिकी संध्या है। अनन्तर हस्तप्रक्षालन आचमन, जलमें मंत्र ध्यान, आवरण सहित देवता का आवाहन, ऐशान में ऐं श्री अमुकानंद इत्यादि कहकर देवतीर्थ में तीनवार वा एकवार विशुद्ध जल द्वारा तर्पण—यह संपूर्ण कार्य यथा क्रम से संपादन पूर्वक वह्नि में परम गुरु, नैर्ऋतमें परापर गुरु, वायवीमें परमेष्ठि गुरु—इनको पूर्ववत् सन्तृप्त करके मध्य में, श्री अमुक देवता तृप्त होवें, यह कहकर, यथाशक्ति उनके तर्पण सहित एक एक अंजुली द्वारा आवरण सबका तृप्ति विधान करें। अशक्त (असमर्थ) होने से मूल मंत्र उच्चारण करके आयुध,

सायुधसपरिवार–सवाहन–महाकालसहित–श्रीदक्षिणकालिकामाता तृप्यतामिति त्रिः सप्तधा वा ऋषीन् भैरवांतान् स्वकल्पोक्तविधिना स्वपित्रादीनपि सन्तर्प्य दूर्वाक्षतरक्तपुष्पादिना अर्घ्यं कृत्वा ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा इति सूर्य्याय त्रिरर्घ्यं समुत्थाय दत्त्वा सूर्य्यमण्डले देवीं ध्यात्वा दूर्वाक्षतविल्वपत्रजवापुष्पादिनाअर्घ्यं कृत्वा देवीगायत्रीमुच्चरन् महाकालसहितायै श्रीमद्दक्षिणकालिकायै इदमर्घ्यं स्वाहा इत्यर्घ्यं दत्त्वा गायत्रीं यथाशक्तितःप्रजप्य देव्यै समर्पयेत्। तदुक्तम्। तर्पणादौ प्रयुञ्जीत तृप्यतां महाकालभैरवः पिता।

मूलान्ते तर्पयामीति स्वाहान्तं तर्पणं मतम्। एवंविधिं तर्पणन्तु कृत्वा पापक्षयो भवेत्॥

कुलचूड़ामणौ च।

भैरवाय च देवाय भैरवेण च कर्त्तृणा। भैरवाख्यं प्रदात

परिवार, वाहन और महाकाल सहित श्री दक्षिण कालिका माता तृप्त होवें यह कहकर तीनबार वा सातबार भैरवान्त ऋषिगणों के और स्वकल्पोक्त विधान में अपने पित्रादिकोंका भी तर्पण करके दूर्वा, अक्षत और रक्त पुष्पादि द्वारा अर्घ्य सहित ह्रीं हंसः इत्यादि मंत्र में तीनबार सूर्य के सामने हो, अर्घ्य दे, सूर्य मण्डल में देवी का ध्यान करना चाहिये। फिर दूर्वा, अक्षत, विल्वपत्र, और जवा पुष्पादि द्वारा अर्घ्य प्रस्तुत करके देवी गायत्री उच्चारण पूर्वक श्री दक्षिण कालिका के उद्देश्य में वह अर्घ्य दे, यथा शक्ति गायत्री का जपकर देवी को समर्पण करै। जैसा कहा है तर्पण के आदि में, तृप्यतां महाभैरवः पिता इस प्रकार प्रयोग करके, फिर मूलांत में "तर्पयामि,, इस प्रकार पद संयुक्त कर, शेष में स्वाहा शब्द मिलाले। वो तर्पण होता है। इस प्रकार तर्पण करने से पाप क्षय होते हैं। कुल चूडामणि में कहा है, प्रथम मंत्रोच्चारण करके भैरव देवको भैरव कर्तृक भैरवाख्य प्रदान करै। फिर लिंगानुरूप में दाता और दान गृहीता, को एव

ठय मन्त्रमुच्चार्य्य पूर्वतः ॥ दातृदानगृहीतृंश्च ततो लिङ्गानु रूपतः । भैरवीं भैरवात्मानं भावयेत् यदशूपत. ॥ श्राद्धे विवाहे दाने च स्नानेनाङ्गप्रपूजने । एव चिन्तापरे देवः प्रसीदति न संशयः ॥

अन्यच्च ।

एवमेव विधानेन यथाशक्ति च तर्पयेत् । मार्त्तण्डभैरवायेति त्रिरर्घ्यं कल्पयेत्ततः ॥

कुलचूडामणौ च ।

कुलसूर्य्याय देवाथ त्रिरर्घ्यं तु प्रकल्प्य च । देवीं पितृनृर्षींश्चैव तर्पयेत् कुलवारिणा ॥

नन्दिकेश्वरसंहितायाञ्च ।

यावन्नदीयते चार्घ्यं भास्कराय निवेदनम् । तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरीम् दिनेशाय तु चोत्तिष्ठन् वारिणा चाञ्जलित्रयम् । अष्टोत्तरशतावृत्या गायत्रीं प्रजपेत् सुधीः॥

भैरवी और भैरवात्मा की भावना करनी चाहिये। श्राद्ध, विवाह, दान स्नान और अग पूजन में इस प्रकार भावना परायण हाने से भगवान भैरव प्रसन्न होते हैं, इसमें संदेह नहीं । और भी कहाहै, इस प्रकारके विधान में ही यथा शक्ति तर्पण करके "मार्तण्डभैरवाय,, इस प्रकार कहकर तीन बार अर्घ्य कल्पना करै ।

कुल चूडामणि में कहा है, भगवान् कुल सूर्यके उद्देश्य में तीनअर्घ्य कल्पित करके, कुल सलिल द्वारा देवी, पितृगण और देवगणों का तर्पण करना चाहिये । नन्दिकेश्वर संहिता के मतमें भास्कर को अर्घ्य निवेदन न करके विष्णु वा महादेव अथवा महश्वरी की पूजा न करै । उठकर सूर्यको तीन अंजुली जलद, विशिष्ट विधान में अष्टोत्तर शत (१०८) वार गायत्री जप करै । उस गायत्री का प्रयोग यहहै, यथा; प्रथम में "कालिकायै

कालिकायै पदं प्रोक्त्वा विद्महे तदनन्तरम् श्मशानवासिनीं ङेन्तां धीमहीति ततो वदेत् ॥ तन्न घोरे पदं प्रोच्य प्रचोदयात् पठेदिति । अस्याः प्रभावमात्रेण महापातककोटयः ॥ सद्यः प्रलयमायान्ति साधकस्य च नान्यथा । रावणस्य वधाच्चैव रामचन्द्रो विमोचितः ॥ गुरुदाराकर्षणाच्च देवश्चन्द्रो विमोचितः । मातृवधात् परशुरामो मोचितोऽस्याः प्रसादतः ॥ सुरापानाच्च श्रीकृष्णो दत्तात्रेयस्तथैव च । एवमेषा महाविद्या गोप्तव्या चैव सुन्दरि ! ॥ महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद्दशधा यदि । सत्यं सत्यं महादेवि ! मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥

अथ कुलचूड़ामणौ च ।

उत्थाय कुलवस्त्रे च परिधाय कुलेन तु । तिलकं कुलरूपञ्च कृत्वाचम्य कुलेश्वरः ॥

स्वतन्त्रेऽपि ।

मोक्षार्थी रक्तवस्त्रेण भोगार्थी श्वेतवाससा । मारणे

फिर " विद्महे " तदुपरान्त " श्मशानवासिन्ये धीमहि " तदनन्तर—"तन्नोघोरे प्रचोदयात्" यह पद संयुक्त करे । इस गायत्री के प्रभाव मात्रसे साधक के करोड़ों महा पातक शीघ्र नाश होते है, यह अन्यथा नहीं है । इस के ही प्रभाव से श्री रामचन्द्र जी रावण वध के पाप से विमुक्त हुएथे और भगवान च द्रमा गुरु पत्नी गमन करके मुक्त हुएथे । इस केही प्रसाद से परशुरामजी ने मातृ वध के पातक से छुटकारा पाया था एव श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय इस केही प्रभाव द्वारा सुरापान जनित पातक से मुक्त हुए थे हे सुन्दरी ! इस प्रकार से यह महा विद्या गुप्त रखनी चाहिये । इस का दश वार जपकरने से महा पातक करने परभी, तत्काल उद्धार होता है, यह सत्य सत्यही कहता हूं ॥

स्वतन्त्र में कहा है, मोक्षार्थी रक्तवस्त्र, भोगार्थी श्वेतवस्त्र मारणार्थी कृष्ण

कृष्णवस्त्रञ्च वश्ये रक्तं सदा गृही ॥ उच्चाटे व्याघ्रचर्माणि वृक्षत्वक् स्तम्भकर्मणि । परिधाय ततो मन्त्री यागभूमिमथो विशेत् ॥

तन्त्रान्तरे च ।

ततश्च साधकश्रेष्ठो हृदि मन्त्रं परामृशन् । अवहिर्मानसो योगी यागभूमिमथो विशेत् ॥ जलशंखं करे कृत्वा गत्वा द्वारि महेश्वरि ! । क्षालयेद्धस्तपादौ च वक्ष्यमाणेन वर्त्मना

यागस्थानानि यथा ।—फेत्कारिण्याम् ।

एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे । तत्रस्थः साधयेद् योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते । तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा ॥

मुण्डमालातन्त्रे च ।

नदीतीरे बिल्वमूले श्मशाने शून्यवेश्मनि । एकलिङ्गे पर्वते वा देवागारे चतुष्पथे ॥ शवस्योपरि मुण्डे च जले

वस्त्र, वश्यार्थी रक्तवस्त्र, उच्चाटनार्थी व्याघ्रचर्म और स्तम्भनार्थी वृक्षकी छाल पहरकर यागभूमि में प्रवेश करे। तंत्रान्तर में कहा है, अनन्तर साधक श्रेष्ठ हृदयमें मंत्र परामर्शन पूर्वक अवहिर्म्मनस्क (एकाग्र मनसे) और योग परायण होकर यागभूमिमें प्रवेश करे । हेमहेश्वरि हाथमें जल शंख धारण पूर्वक द्वार देशमे गमन करके वक्ष्यमाण विधानमें हाथ और पैर प्रक्षालन करे । फेत्कारिणीमें समस्त याग स्थान इस प्रकारसे निर्देश कियेहै । यथाः एक लिंग, श्मशान, शून्य गृह और चतुष्पथ (चौराहे) में अवस्थिति कर योगा वलम्बन सहित त्रिभुवनेश्वरी विद्याकी साधना करे । जहां पंच क्रोश (पाँचकोश) मेंभी लिङ्गान्तर लक्षितनहो, उसकोही एक लिंग कहते हैं । उस स्थान मेंही अनुत्तम सिद्धि संग्रह होतीहैं ।

मुण्डमाला तंत्रमें कहाहै, नदी तीर, बिल्व मूल, श्मशान, शून्य गृह एक लिंग, पर्वत, देवालय, चतुष्पथ, शवके ऊपर, शव मुण्ड, कण्ठ पूरित जल,

वा कण्ठपूरिते। संग्रामभूमौ योनौ वा स्थले वा विजने वने। यत्र कुत्र स्थले रम्ये यत्र वा स्यात् मनोलयः ॥

अन्यत्रापि।

ऊषरे पर्व्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे। देवागारे देवशून्ये विल्वमूले नदीतटे ॥ स्वगृहे निर्जनारामे तथा चाश्वत्थसन्निधौ। अथैतेषामेकतमं स्थानमाश्रित्य यत्नतः ॥

ओं वज्रोदके हुं फट् स्वाहा। अनेन जलं सव्येन अनीय आसनमभ्युक्ष्य उपरि उपविश्य ओं ह्रीं विशुद्धे सर्व्वपापानि शमय अशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा इति पादौ प्रक्षाल्य पूर्व्ववदाचामेत्। तदुक्तं कुमारीकल्पे।

ओं वज्रोदके हुं फट् स्वाहामन्त्रेण मन्त्रवित्। जलमानीय सव्ये तु आसनं शोधयेत्ततः ॥ प्रणवं पूर्व्वमुद्धृत्य लज्जावीजं तथैव च। ततो विशुध्यन्ते सर्व्वपापानि शमयेदथ ॥ अशेषान्ते विकल्पं स्यात् अपनयेति ततःपरम्। कूर्च्चवीजं भवेन्मन्त्रं पादप्रक्षालने प्रिये ! ॥

संग्राम भूमि योनि, स्थल, विजन, वन, इनसब स्थानों में अथवा जहां मनकालयहोसके, इसप्रकार रमणीक स्थलमें साधना करै। अन्यत्र कहाहै, उज्जट (भीमरूप) पर्व्वत, निर्जल चतुष्पथें, देवालय, विल्व मूल, नदीतट, स्वगृह, निर्जन, उपवन, पीपलके समीप, इनमें एक उत्तमस्थान आश्रय करके, यत्न पूर्व्वक "ओं वज्रोदके" इत्यादि मंत्रसे सव्यहस्तमें जललेकर आसन अभ्युक्षण और उसके ऊपर उपवेशन (बैठ) करके, ओं ह्रीं विशुद्ध इत्यादि मंत्र से पांवधोनेकेपीछे पूर्व्वकी समान आचरण करे। कुमारी कल्पमेंभी इसी प्रकार कहाहै। यथा—ओं वज्रोदके" इत्यादि मंत्रसे जललाकर आसन शोधन करै। फिर प्रथम प्रणव अर्थात् ओं उद्धार करके, तदुपरान्त लज्जावीज अर्थात् ह्रीं उद्धृत करे। अनन्तर "विशुद्ध सर्व्व पापानि शमयेत्" कहकर अशेष विकल्पं अपनय यह पद संयुक्त करे। फिर कूर्च्च वीज अर्थात् हूं शब्द संयुक्त करै। तो मंत्रका प्रयोग इसप्रकार हुआ, ओं ह्रीं विशुद्ध सर्व्व पापानि शमयेत अशेष विकल्प मप नय हुं फट् स्वाहा"। हेप्रिये ! यही पाद प्रक्षालन मंत्रहै

सिद्धार्थैस्तिल संमिश्रैः प्रोत्सार्य्य त्वासने विशेत् ॥

अन्यत्रापि ।

भूतापसर्पणं कुर्य्यात् मन्त्रेणानेन साधकः । यस्मिन् कृते स्थले भूता दूरं यान्ति सुरार्चने ॥ स्थितेषु सर्वभूतेषु नैवेद्यं मण्डलं तथा । विलुम्पति सदा लुब्धा न च गृह्णन्ति देवताः ॥ तस्माद् यत्ने न कर्त्तव्यं भूतानामपसर्पणम् ॥

कुमारीतन्त्रेऽपि ।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सर्वविघ्नांस्ततः परम् । उत्सारय ततो हुं फट् स्वाहा च तदनन्तरम् ॥ अनेनैव च मन्त्रेण विघ्नानुत्सारयेत् सुधीः । प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य रक्ष रक्ष तदन्तरम् । हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण भूमिञ्च परिशोधयेत् ॥ ततः पवित्रवज्रादौ प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् ॥ वर्मद्वयं ततश्चैव फट् स्वाहा तदनन्तरम् । अनेनैव विधानेन कुर्य्याद् भूम्यभिमन्त्रणम् ॥

अथ आसनानि यथा—तदुक्तं मत्स्यसूक्ते ।

मृदुचूड़कमासीनश्चान्येषु कोमलेषु वा । विस्तारेषु स-

संपूर्ण विघ्न परम्परा अक्षत, सिद्धार्थ और तिलकी सहायता से प्रोत्सारित (गिरकर) होकर आसनपर विराजमान होवे । अन्यत्र भी कहाहै कि साधक इस मंत्र द्वारा भूतापसर्पण करै, इस के द्वारा भूमिस्थ समस्त भूत दूर सेही भागजाते हैं जो सम्पूर्ण भूत होने से लुब्ध होकर सर्वदा नैवेद्य मण्डल विलुप्त करताहै देवगण उसको ग्रहण नहीं करते। इसीकारण यत्नसहित भूत गणों की अपसर्पणा करै । कुमारी तंत्र में भी कहा है, प्रथम ओं फिर "सर्व विघ्नान्" फिर "उत्सारय" फिर (हूं फट् स्वाहा) अर्थात् (ओं सर्वविघ्नानुतसारयस्वाहा) इत्यादि मंत्र से संपूर्ण विघ्नउत्सारित करके फिर ओं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा, इत्यादि मंत्र से भूमि शोधन और तदुपरान्त 'ओं पवित्रवज्र, इत्यादि मंत्र से भूमि का अभि मंत्रण करे ॥

अब समस्त आसन विधि लिखी जाती है । मृदुवा अचूडक अथवा को

माश्रित्य साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥ अर्वाक् षण्मासतो गर्भमृतमाहुर्मृदुं बुधाः । चूड़ोपनयनैर्हीनं मृतमचूड़कं विदुः ॥ निवृत्तचूड़को बालो हीनोपनयनः पुमान् । यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः ॥

स्वतन्त्रेऽपि ।

कम्बले लोहिते वापि कृष्णे वा व्याघ्रचर्मणि । संन्यासी ब्रह्मचारी च विशेत् कृष्णस्य चर्मणि ॥

मत्स्यसूक्तेऽपि ।

कृष्णसारद्वीपचर्म अचूड़कम्बलं तथा । पीतवस्त्रञ्च शुक्लं वा आसनाय प्रकल्पयेत् ॥

मुण्डमालातन्त्रे ।

व्याघ्राजिनं सर्वसिद्ध्यै ज्ञानसिद्ध्यै मृगाजिनम् । वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ कौषेयं पुष्टिदं प्रोक्तं कम्बलं सर्वसिद्धिदम् । शुक्लं वा यदि वा रक्तं विशेषाद्रक्तक-

---

मल और विस्तार आदि अन्यान्य आसनमें आसीन होकर । जिस भांति सिद्धि साधन में प्रवृत्तहोवे । छै महीने के अनधिक जो गर्भ में रहकर मर गया है, उसकोही पंडित गण मृदुकहते हैं । जिसका चूडा व उपनयन नहीं हुआ और उसी अवस्था में मरगया है, उस को अचुडक कहते हैं । जिस वालक का चूड़ा करण व उपनयन नहीं हुआ है, इसी अवस्था और पांचवें वर्ष में मरगया है, पंडितगण उस को कोमल कहते हैं । स्वतंत्र में भी कहा है कि लोहित (लाल) व कृष्ण (काला) कम्बल अथवा व्याघ्र चर्म वा कृष्ण चर्म इन सब आसनों में संन्यासी और ब्रह्मचारी उपवेशन करें अर्थात् वैठें । मत्स्यसूक्त में भी कहा है, कृष्ण सार और व्याघ्र चर्म, अडूचक, कम्बल, पीत वा शुक्लवस्त्र, इन सब में आसन कल्पना करें । मुण्डमाला तंत्र में कहा है व्याघ्र चर्म में सर्व सिद्धि, मृग चर्म में ज्ञान सिद्धि वस्त्राशन में रोगनाश, वेनासन में प्रीतिवर्द्धन, कौषेय आसन में पुष्टि और कम्बल में सर्व सिद्धिलाभ होती है । शुभ्र वा रक्त विशेषत: रक्त कम्बल, सग्राम

म्बलम् ॥ मृदुकोमलमास्तीर्णं संग्रामे पतितं हि यत् । ज-न्तुव्यापादितं वापि मृगं वापि वरासनम् ॥ गर्भच्युतं वा नारीणामथवा योनिजां त्वचम् । सर्वसिद्धिप्रदञ्चैव सर्व भोगसमृद्धिदम् ॥ त्वचं वा यौवनस्थानां कुर्य्याद्वीरवरासनम् । श्मशानकाष्ठघटितं पीठं वा यज्ञदारुजम् ॥ न दीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही । उदासीनवनासीनस्नातकब्रह्मचारिणः ॥ कुशाजिनाम्बरेणाढ्यं चतुरस्रं समन्ततः । एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरंगुलमुच्छ्रितम् ॥ विशुद्धे आसने कुर्य्यात् संस्कारं पूजनं बुधः ॥ इति

अत्र मृतासनमवश्यमेव प्रत्यवायश्रवणात् । कालीतन्त्रे—मृतासनं विना देवि ! यो जपेत् कालिकां नरः । तावत्कालं नारकी स्यात् यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यत्त स्वतन्त्रादौ कम्बलाद्यासनमुक्तं तन्न स्वतन्त्रासनं । किन्तु मृतकयुतमिति बोद्धव्यम् । मृताभावे विष्टरमिति । तदुक्तं—

में पतित वा जन्तु कर्तृक व्यापादित (जानवरों से घायल) मृग उत्कृष्ट आसन अथवा स्त्रियों का गर्भच्युत अथवा योनि, जात त्वक् सर्वसिद्धि प्रदान और सब प्रकार से भोग समृद्धि विधान करती है । यौवनस्थ गणों के त्वक् में भी वीर वरासन करे । श्मशानकाष्ठ का वा यज्ञ दारु की पीठ भी उत्कृष्ट आसन है । दीक्षित गृहीव्यक्ति कभी कृष्णसार के अजिन में उपवेशन न करे । उदासीन, वनासीन स्नातक यह कुश अजिन और वस्त्राढ्य, समचतुष्कोण, एकहस्त वा दो हस्त परिमिति, चार अंगुल ऊंचे आसन में उपवेशन करे कालीतंत्र में कहा है, मृतासन के विना जो व्यक्ति देवीकालिका का जप करता है, वह यावत् प्रलय नरक में वास करता है । अतएव स्वतंत्रादि में जो कम्बलादिका आसन कहा है वह स्वतंत्र आसन नहीं है मृतकयुक्त समझना चाहिये मृतके अभाव में विष्टर आसन ग्रहण करे सो कहा है यथा ? —मृताभाव में विष्टरको शवरूप में कल्पना करलेना चाहिये ।

मृताभावे विष्टरञ्च शवरूपंप्रकल्पयेत्।

अथ भूमौ त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र आधारशक्त्यादिभ्यो नमः इति संपूज्य तदुपरि विहितासनमारोप्य कृताञ्जलिः पठेत्। तदुक्तं

मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तःसुतलं छन्द ईरितम्। कूर्मोहि देवता देवि! आसनाय प्रकल्पयेत्॥ विनियोगं तु ततः कृत्वा पठेत् धृत्वा समन्ततः। पृथ्वि! त्वयाधृतालोको देवि! त्वं विष्णुना धृता॥ त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्। इति धृत्वा तु देवेशि! कुशांस्तत्रैव दापयेत्॥ मायावीजं समुच्चार्य्य आधारशक्तिमुच्चरेत्। कमलासनमालिख्य ङे नमोऽन्तं प्रपूजयेत्॥

कुमारीकल्पेऽपि।

आःकारान्तं सुरेखेच वज्ररेखे ततःपरम्। हुं फट् स्वाहेति कुर्य्यात्तु मण्डलञ्च शवासने॥ वीरासनेनोपविशेत् संपूज्यासनमेव च।

अनन्तर भूमि में त्रिकोण मंडल की रचना करके उस में [आधार शक्त्यादिभ्यो नमः] इत्यादि कह विशेष प्रकार से पूजा कर उस के ऊपर विहितासन स्थापन पूर्वक कृताञ्जलि होकर पाठ करै। सो कहा है। यथा मेरु पृष्ठऋषि, सुतलछंद, कूर्म देवता, आसन के लिये कल्पना करै। फिर इस प्रकार पाठ करै कि [हे पृथ्वी! तुम ने सब लोकों को धारण किया है, विष्णु तुमको धारण करते हैं। अतएव तुम मुझको नित्य धारण और मेरे आसनको पवित्र करो।] यह कहकर समस्त कुश, धारण और उसमें प्रदान पूर्वक माया वीज और आधार शक्ति उच्चारण और तदुपरात [कमलासनाय नम] कहकर पूजा करै। कुमारी कल्प में भी कहा है, प्रथम आः कार, फिर (सुरेख) और फिर (वज्ररेख) में [हुं फट् स्वाहा] कह कर शवासन में मण्डल की रचना करै। फिर आसन की पूजा करके वीरासन में विराजमान होवे। अनन्तर आसन के ऊपर तीन कुश डालकर (ह्रीं

अथ आसनोपरि कुशत्रयं दत्त्वा ह्रीं आधारशक्तये कमलासनाय नमः इति संपूज्य आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा इति मन्त्रेण तत्र मण्डलिकां कृत्वा तदुपरि वीरासने उपविश्य विजयां स्वीकुर्य्यात् । तदुक्तं

भावचूडामणौ ।

विना हेतुकमास्वाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः । न पूजां ममकुर्य्याच्च न ध्यानं न च चिन्तनम् ॥ तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् ।

विजयाकल्पेऽपि ।

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी । संविप्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः । कर्त्तव्या च महापूजा करणीया मुनिन्दितैः ॥

अन्यत्रापि ।

आनन्देन विना भ्रशो न च तृप्यन्ति देवताः । तस्मात् पूजादौ विजयास्वीकारः कार्य्यः । सा पुनश्चतुर्द्धा । ब्राह्मणी

आधार शक्तये कमलासनायनम) इत्यादि मंत्र से पूजा करके, फिर आः सुरेख, में 'वज्ररेख में (हु फट् स्वाहा) इत्यादि मंत्र से उस में मंडलिका करके उसके ऊपर वीरासन में बैठकर विजया स्वीकार में प्रवृत्तहोवे । भावचूडामणि में कहा है । यथा विजया स्वीकार न करने से, महेश्वर भी क्षोभ युक्त होकर मेरी पूजा, ध्यान और चिन्ता नहीं करसकते । इसी कारण भोजन और पान करके परमेश्वरी की पूजा करे । विजया कल्प में भी कहा है, सम्विद् और आसव में सविद ही श्रेष्ठ है । इसी लिये साधक प्रवर पूजादि में सम्विद् प्रयोग करे । अन्यत्र भी कहा है आनन्द अर्थात संविद् के विना पूजा खण्डित होती है, देवतागणों कोभी तृप्ति लाभ नहीं होती । इसी कारण पूजादि में विजयास्वीकार कर्त्तव्य है । यह विजया चारप्रकारहै यथा-

क्षत्रिया वैश्या शूद्राच । श्वेतरक्तकृष्णपीत प्रसूनभेदाः ।

तासां शुद्धिर्विजयाकल्पानुसारेण लिख्यते । संविदे ब्रह्म सम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे ॥ भैरवाणाञ्च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा । ओं ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा । साधयेदपरां ततः॥ इत्यनेन अभिमन्त्रणम् ।

सिद्धिमूले प्रिये ! देवि ! हीनवोधप्रवोधिनि । राजप्रजा वशङ्कारि शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि ॥ ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा शोधयेदपरां ततः। अज्ञानेन्धनदीप्ताग्ने ज्वालाग्नेज्ञानरूपिणि। आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं सम्यग्ज्ञानं प्रयच्छ मे । ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा शूद्रां संशोधयेत्ततः ॥ नमस्यामि नमस्यामि योगमार्गप्रवोधिनि। त्रैलोक्यविजये मातःसमाधिफलदाभव॥

ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा। यह श्वेत, रक्त, कृष्ण और पीतवर्ण है कुसुम भेद में इस प्रकार चारभेद कल्पित हुए हैं। विजया कल्पानुसार उस की शुद्धि लिखीजाती हैं। हे सम्बिदे ! तुम ब्रह्म से उत्पन्न हुई हो । तुम ब्रह्म की पुत्री हो। तुम सब प्रकार से पाप सम्पक हीन हो भैरवगणों को दान करने के लिये ही तुम्हारी सृष्टिहुई है। तुम सर्वदा पवित्रहो । तुम्हीं ब्राह्मणीहो । तुमको नमस्कार है । यह कह "स्वाहा" समुच्चारण पूर्वक अपरा का साधन करै । यथा—तुम सिद्धिकी मूल कारण हो । तुम सबकी परम प्रीति भाजनहो । तुम्हीं स्वप्रकाश युक्त हो । तुम्हीं बुद्धिहीन गणों को प्रबोधित करती हो । तुम्हीं राजा और प्रजा दोनों को वशीभूत करती हो । तुम्हीं शत्रु कण्ठकी त्रिशूलिनी हो । तुम्हीं क्षत्रिया हो तुमको नमस्कार है यह कह कर "स्वाहा" प्रयोग पूर्वक अपरा का साधन करै । यथा—तुम अज्ञानरूप ईंधनको पावक स्वरूप हो । तुम्हीं ज्वालाग्नि हो । तुम्हीं ज्ञान रूपिणी हो तुम मुझ को सम्यग् ज्ञान एवं प्रीति और आन्दाहुती प्रदान करो । तुम्हीं वैश्या हो, तुमको नमस्कार है यह कहकर प्रथम " श्रीं " और अन्त में स्वाहा उच्चारण करके शूद्राका साधन करै यथा—तुम योग मार्ग प्रबोधिनी हो । तुम्हीं त्रैलोक्य विजया हो । तुमको नमस्कार है, नमस्कार है । हे मातः ! तुम मेरी समाधि का फल प्रदान करो । तुम्हीं शूद्रा

ह्रीं शूद्रायै नमः स्वाहा ओं अमृते अमृतोद्भवे अमृत वर्षिणि पदं ततः ॥

अमृतमाकर्षय द्वन्द्वं सिद्धिं देहि ततःपरम् । अमुकं मे ततो ब्रूयात् वशमानय ततःपरम् । द्विठान्तोऽयं मनुः प्रोक्त श्चतुर्द्धानाञ्च शोधने ॥

उत्तरतन्त्रे च ।

मूलमन्त्रं ततो देवि ! तस्योपरि नियोजयेत् । आवाहनादिमुद्रांच धेनुयोनी ततःपरम् ॥ दिग्बन्धश्छोटिकाभिश्च तालत्रयपुरःसरः । दिव्यदृष्टया तथा पार्ष्णिघातैर्विघ्नान् विघातयेत् ॥ सप्तधा तर्पयेद् ब्रह्मरन्ध्रे मूलं जपेत् मनुम् । गुरुपद्मे सहस्रारे तथा सङ्केतमुद्रया ॥ त्रिधैव तर्पयेत् मंत्री साधकः सिद्धिमानसः । ऐं वद वद पदं ब्रूयात् वाग्वादिनि

हो, तुमको नमस्कार है । यह कह पूर्व में "ह्रीं" और अन्त में " स्वाहा " प्रयोग करके प्रथम ओं अमृते अमृतोद्भवे अमृत वर्षिणी" पद कथन पूर्वक फिर यथाक्रमसे "अमृतमाकर्षय अमृतमाकर्षय सिद्धिं देहि अमुकं मे वशमानय स्वाहा" इत्यादि पद परम्परा प्रयोजित करे इसका अर्थ यही है तुम अमृता और अमृत से उत्पन्न हुई हो एवं अमृत वर्षण करती हो । अतएव अमृत को आकर्षण करो आकर्षण करो मुझको सिद्धि प्रदान करो, अमुक को मेरे वशमें लाओ । यही मंत्र उल्लिखित चतुर्विध विजया शोधन में प्रयोजित होता है। उत्तर तंत्र में भी कहा है, यथा–हे देवि! अनन्तर उसके ऊपर मूल मंत्र नियोजित करे । फिर आवाहनी, धेनु और योनिमुद्रा का प्रयोग है, तालत्रय [तीन ताल] प्रदान सहित छोटिका द्वारा दिग्बन्धन, दिव्य दृष्टि सहकृत पार्ष्णि घात द्वारा समस्त विघ्नों को उत्सारित सातवार तर्पण और मूल मंत्र जप करना चाहिये । साधक सिद्धि की कामना से तीन बार गुरु पद्म सहस्रार में संकेत मुद्रा प्रदर्शन पूर्वक तर्पण और "ऐं वद वद,, इत्यादि मन्त्र से मुखमें आहुति प्रदान करे ।

ततःपरम् ॥ मम जिह्वाग्रे स्थिरा भव सर्वपदं ततः । सत्वर-शङ्करी स्वाहेति मंत्रेण जुहुयान्मुखे ॥

संकेतमुद्रया तत्त्वमुद्रया इत्यर्थः ।

अथ साधकः वामकर्णोर्द्ध्वे अमुकानन्दनाथश्रीभैरवगुरु-पादुकाभ्योनमः । दक्षिणकर्णोर्द्ध्वेगां गणपतिं मध्येइष्टदेवतां नमस्कृत्य सामान्योदकेन पूजस्थानादिकमभ्युक्ष्य स्वदक्षिणे गन्धपुष्पादिकं वामे सुगन्धिजलं देवतायाः पश्चिमे कुलदेवताया द्रव्याणि अन्यत् पानञ्च देवतावामे धारयेत् । तदुक्तं कुलचूड़ामणौ ।

कुलासनं ततो धृत्वा तदभ्यर्च्य यथासुखम् । कुलासनं ततो बद्ध्वा गुरुपूजाक्रमेण च ॥ आत्मशुद्धिं पीठशुद्धिं शृणु शुद्ध्यादि भैरव । कृत्वा चार्घ्यं ततो विद्वान् कुर्य्यात् कुल-विचेष्टितम् ॥ दीक्षिताभिः कुलीनाभिर्युवतीभिः कुलात्म-भिः । देवतागुरुभक्ताभिर्वाञ्छितं यागभूमिषु ॥ नानावि-

---

इस मंत्रका अर्थ यही है, तुम वाग्वादिनी हो । अतएव मेरे वाक्यस्फूर्त्ति करो । मेरी जिह्वा के अग्रमें स्थिर हो इत्यादि । यह संकेत मुद्रा शब्द में तत्त्व मुद्रा समझनी चाहिये ।

*अनन्तर साधक वाम कर्णोर्द्ध में, अमुकानंद नाथ श्री भैरव गुरूके पादु-*का युगल में नमस्कार दक्षिण कर्णोर्द्ध में गां गणपतिको नमस्कार और मध्यमें इष्ट देवताको नमस्कार करके, सामान्य उदक द्वारा पूजा स्थानादि अभ्युक्षित कर अपने दक्षिण में गंध पुष्पादि, देवता के वाम में सुगंधि जल पश्चिममें कुल देवता के सब द्रव्य और अन्यविध पान देवता के वाम में धारण करे । कुल चूड़ामणि में कहा है, यथा—अनन्तर कुलाशन धारण करके, यथा सुख में उसकी अभ्यर्चना और गुरु पूजा के क्रमसे उसका बंधन करे । अनन्तर आत्मशुद्धि और पीठ शुद्धि करके, याग भूमि में देवता, और गुरु गणों के प्रति भक्ति शालिनी, दीक्षिता, कुलीन युवती गणोंका वांछित, कुलाचार विधि बोधित अर्घ्य विधान पूर्वक विविध गंध और पुष्प

धानि पुष्पाणि गन्धयानि विविधानि च । कर्पूरजातीधूपादि वासितं पटवासितम् ॥ ताम्बूलं देयद्रव्यञ्च धूपदीपादिकञ्च यत् । सर्वालङ्कारभूषाभिर्भूषितः कौलिकेश्वरः ॥ मूलमन्त्र जप्ततोयैः प्रोक्षितं स्थापयेत्ततः । सर्वस्वं दक्षिणे स्थाप्यं वामे चार्घ्यं निवेदयेत् । पश्चिमे देवतायाश्च कुलद्रव्याणि धारयेत् ॥

पश्चिमे पृष्ठे इत्यर्थः । कालिकापुराणेऽपि—मदिरां पृष्ठतो दद्यादन्यपात्रञ्च वामतः ।

कुलार्णवेऽपि—आत्मस्थानमनु द्रव्यं देहशुद्धिस्तु पंचमी । यावन्न कुरुते देवि ! तावद्देवार्चनं कुतः ॥ मार्जनादेहशुद्धिस्तु प्राणयोगादिभिः प्रिये ! षड्ङ्गानि न्यसेन्मन्त्री आत्मशुद्धिरितीरिता ॥ गृहीत्वा मातृकावर्णमूलमन्त्राक्षराणि तु । क्रमोत्क्रमाद्द्विरावृत्तिर्मन्त्रशुद्धिरितीरिता ॥ पूजाद्रव्यादि संप्रोक्ष्य मूलास्त्राभ्यां विधानतः । धेनुमुद्रां दर्शयेच्च द्रव्यशुद्धिरितीरिता ॥ पीठे देवीं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित् ।

कर्पूर और जाती धूपादि सुवासित ताम्बूल और दीपादि देय द्रव्य मूल, मंत्र जप्त सलिलमें प्रोक्षित करके स्थापित करे । तिसकाल सर्व अलंकारादि भूषणों से भूषित होवे । सर्वस्व दक्षिण में स्थापित करके वाम में अर्घ्य निवेदन और देवताके पश्चिम मे समस्त कुल द्रव्य धारण करे यहां पश्चिम शब्द पृष्ठ वाचकहै । कालिका पुराण में भी कहा है, हे देवि ! आत्म शुद्धि स्थान शुद्धि, मंत्र शुद्धि, द्रव्य शुद्धि, और देह शुद्धि न करने से किसी प्रकार अर्चना सिद्धि नहीं होसक्ती । हे प्रिये ! प्राण योगादि द्वारा मार्जन करने से देह शुद्धि सम्पन्न होती है । मंत्रशील पुरुष षडङ्ग्न्यास करै। इसकाही नाम आत्म शुद्धि है । मातृका वर्ण और मूल मंत्रके समस्त अक्षर ग्रहण करके क्रमोत् क्रमानुसार दो बार आवृत्ति करे । इसकाही नाम मंत्रशुद्धि है । मूल और अस्त्र मंत्र में विधानानुसार पूजा द्रव्यादि भलीभांति प्रोक्षित करके धेनु मुद्रा प्रदर्शन करनेको द्रव्य शुद्धि कहते हैं । मंत्रवित् साधक देवी को पीठ

मूलमन्त्रेण दीप्तात्मा अभिभाव्योदकेन च ॥ त्रिवारं प्रोक्षयेद्विद्वान् देहशुद्धिरितीरिता । पंचशुद्धिं विधायेत्थं पश्चाद् यजनमाचरेत् ॥

अन्यत्रापि । पंचशुद्धिविहीनेन यत् कृतं न च तत् कृतम् । पंचशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ॥ आत्म शुद्धिः स्थानशुद्धिर्मन्त्रस्य शोधनं तथा । द्रव्यशुद्धिर्देहशुद्धिः पञ्चशुद्धिरितीरिता ॥

अथ कुमारीकल्पे ।

पुष्पाधिष्ठाने पुष्पस्य प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् । ततोऽभिषेकेति पदं शताभीति ततःपरम् ॥ सेकेति च पदं प्रोक्त्वा हुं फट् स्वाहा ततःपरम् । अनेन मनुना देव्याः पुष्पाधिष्ठानमेव च ॥ प्रणवं पुष्पकेतुश्च तथा राजार्हतेऽपि च । शताय सम्यगुक्त्वा च सम्बद्धाय ततश्च ओं ॥ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्प सम्भवे । पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहेति ततः परम् ॥ विशोध्य पुष्पमेतेन जलं पूर्ववदाहरेत् ॥

में प्रतिष्ठापिता और दीप्तात्मा होकर, मूल मंत्रमें अभिवादित करके उदक द्वारा तीनबार प्रोक्षण करै इसकाही नाम देह शुद्धि है । इस प्रकार पञ्चविध शुद्धि विधान करके फिर यजन कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये । अन्यत्र भी कहा है । उल्लिखित पंच शुद्धि हीन होकर जो कियाजाता है, वह न करने में ही है । पंच शुद्धिके बिना पूजा करने से वह अभिचार रूप में कल्पित होती है । आत्म शुद्धि, स्थान शुद्धि, मंत्र शुद्धि, द्रव्य शुद्धि, और देह शुद्धि इनका ही नाम पंच शुद्धि है ।

कुमारी कल्पमें भी कहाहै, पुष्पाधिष्ठान समयमें प्रथम प्रणव उद्धार करके फिर शताभिसेक पद संयुक्त कर "हुं फट् स्वाहा" प्रयोजित करै । इस में जो मंत्र हो उस के पढने पर देवीका पुष्पाधिष्ठान करके फिर प्रणवोद्धार पूर्वक "पुष्प केतु" इत्यादि पद प्रयोग सहित जो मन्त्र हो, तिसको पढ पुष्प

ओं शताभिषेक ओं शताभिषेक हुं फट् स्वाहेति मंत्रेण पुष्पमधिष्ठाय ओं पुष्पकेतु राजार्हते शताय सम्यक् सम्ब- द्धाय इति पुष्पमभिमन्त्र्य पूजाद्रव्यादिकं मूलान्ते फडित्य नेन अभ्युक्ष्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य वामपार्ष्णिघातत्रयं फ- ड़िति भूमौ कृत्वा तर्जनीमध्यमाभ्याम् ऊर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं दत्त्वा तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कुर्य्यात् ।। दि- व्यदृष्ट्या दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य्य रमिति चतुर्दिक्षु वह्नि प्राकारं ध्यात्वा मूलमन्त्रेण स्वदेहं संमार्ज्य प्रणायामं कुर्यात् । तथा मूलाधारे नमः संयोज्य दक्षिणांगुष्ठेन दक्षिणनासापुटं धृत्वा मूलमंत्रं प्रणवं वा षोड़शवारं जपन् वामेण वायुमापू- र्य्य कनिष्ठानामिकाभ्यां वामनासापुटमपि विधृत्य तमेव चतुः षष्ठि वारं जपन् वायुं कुम्भयित्वा पुनस्तं द्वात्रिंशद्वारं जपन्

शुद्धि करके पूर्ववत् सलिल आहरण करना चाहिये । "ओं शताभिषेक" इ- त्यादि मंत्रसे पुष्पाधिष्ठान करके "ओं पुष्प केतु राजार्हते" इत्यादि मंत्र से पुष्प को अभिमंत्रण और मूलके अन्त में फट् शब्द प्रयोग पूर्वक पूजा द्रव्या- दि करा अभ्युक्षण करे । अनन्तर धेनु मुद्रा द्वारा अमृती करणान्तर" फट्" शब्द पुरःसर भूमि में तीनवार वाम पादुका पार्ष्णि (बाये पैरका आघात) घात और तर्जनी मध्यमाकी सहायता से ऊर्द्धार्द्ध में तीनताल प्रदान करके तर्जनी और अंगुष्ठ द्वारा छोटिका प्रयोग सहित दशदिक् बंधन करे । फिर दिव्य दृष्टि द्वारा समस्त दिव्य विघ्न उत्सारित और" रम" इत्यादि मंत्र से चारों दिशा में वह्नि प्राकार ध्यान करके, मूल मंत्र से स्वकीय (अपनी) देह मार्जन पूर्वक प्राणायाम करे । यथा—मूलाधार में मन संयोजित और दक्षिण अंगुष्ठ में दक्षिण नासापुट धारण करके, सोलह बार प्रणव वा मूल मंत्रका जप समाधान करनेपर वाम नासाद्वारा वायु आपूरण, एवं कनिष्ठा और अनामिका द्वारा वाम नासापुट् धारण और (६४) चौसठवार प्रण- व जप पुरःसर वायुको कुम्भित करे । फिर पुनर्वार बत्तीसबार जप करके

दक्षिणेन वायुं रेचयेत् । एवं क्रमोत्क्रमेण प्राणायामत्रये कृते एकः प्रणायामः । इत्थं वारत्रयं कुर्य्यात् । तदुक्तं स्वतन्त्रे ।

पार्ष्णिघातकरास्फोटसमुदाञ्चितवक्त्रकैः । तालत्रयमथो दद्यात् सशब्दं सम्प्रदाय च ॥ ऋतुचन्द्रैर्नेत्रवासैर्वासैर्वेदाधिकैः प्रिये ! ।मात्राभिः प्रणवं जप्त्वा पूरकुम्भकरेचकैः ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं ततश्चरेत् ॥

अन्यत्रापि। मनो जीवात्मनः शुद्धिः प्राणायामेन जायते॥

कालीतंत्रेऽपि। प्राणायामत्रयं कुर्य्यान्मूलेन प्रणवेनवा ।

ज्ञानार्णवेऽपि । कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।- प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ॥

अथ गौतमीये ।

भूतशुद्धिं लिपिन्यासं विना यस्तु प्रपूजयेत् । विपरीतं फलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ॥

ततो भूतशुद्धिं कुर्य्यात् । तथा मूलाधारपद्मात् कुलकु-

दक्षिण में वायुका रेचन करे । इस प्रकार क्रमोत क्रमानुसार तीन प्राणायाम विहित होनेपर एकमात्र प्राणायाम् साधित होता है । इस प्रकार तीन बार करे । स्वतंत्र में वही कहा है । यथा—पार्ष्णिघात और कराघात द्वारा शब्द सहित तीन ताल प्रदान करे । फिर सोलहबार और बत्तीसवार प्रणव जपनेपर पूरक कुंभक और रेचक द्वारा प्राणायाम कर भूतशुद्धि करे । अन्यत्र भी कहा है, प्राणायाम द्वारा मन और जीवात्मा की शुद्धि होती है । कालीतंत्रमें भी कहा है, मूलमंत्र वा प्रणव जप सहित तीनवार प्राणायाम करे । ज्ञानार्णव में भी कहा है, कनिष्ठा और अनामिका द्वारा नासा पुट धारण करनेको प्राणायाम कहते हैं । इस में तर्जनी और मध्यमाका प्रयोग करना नहीं होता गौतमीय में कहा है, भूतशुद्धि और लिपिन्यासन करके पूजा करने से अभक्ति कृत पूजाकी समान उससे विपरीत फल लाभ होता है । फिर भूतशुद्धि करे मूलाधार पद्मसे सोतेहुए सर्प की समान आकृति

ण्डलिनीं प्रसुप्तभुजगाकारां सार्द्धत्रिवलयां स्वयम्भूलिङ्गवे-
ष्टिनीं विपतन्तुतनीयसीं ताड़ितपुञ्जप्रभां हंस इति मन्त्रेण
पृथिव्या सह स्वाधिष्ठानं समानीय तत्रस्थजले पृथिवीं वि-
लीनां विचिन्त्य तस्माज्जलेन सह मणिपूरस्थवह्नौ तज्जलं वि-
लीनं विचिन्त्य तस्मान्मणिपूरात् वह्निना सह अनाहत आ-
नीय तत्रस्थवायौ वह्निं लीनं ध्यात्वा तस्मान्मरुता जीवा-
त्मना सह विशुद्धस्थाकाशे वायुं लीनं कृत्वा तस्मादाकाशेन
सह आज्ञाचक्रस्थमनसि आकाशं लीनं विचिन्त्य मनो नादे
लीनं विधाय धरणौ ध्वनिं समर्पयेत् । ततः सहस्रदलकम-
लकर्णिकास्थचन्द्रमण्डलमध्यत्रिकोणान्तर्गतबिन्दुरूपपरम-
शिवे कुण्डलिनीं जीवात्मानञ्च नित्यैकरूपतां विभाव्य प्रा-
णायामविधिना यमिति वायुबीजं धूम्रवर्णं षोड़शवारं जपन्
पापपुरुषेण सह शरीरं संशोष्य रमिति वह्निबीजं रक्तवर्णं

शालिनी सार्द्धत्रिवल (साढतीनवल) धारिणी स्वयंभूलिंग वेष्टिनि, मृणा-
ल तन्तु की समान अतीव सूक्ष्म स्वरूपिणी तडित पुंजकी समान प्रभाशा
लिनी कुल कुण्डलिनी को हंस इति मंत्र में पृथ्वीके सहित स्वाधिष्ठान में
आनयन तत्रस्थ जलमें पृथ्वी विलीन है इस प्रकार चिन्तन, मणि पुरस्थ
अग्नि में वह जल लीन हुआ है इस प्रकार विभावन, उस मणि पुरसे वह्नि
के सहित अनाहत में आनयन और तत्रस्थ जल में अग्निलीन है इस प्रका-
र ध्यान करें । फिर उस से वायु और जीवनके सहित विशुद्धस्थ आकाश
में वायुको लीन करके उस स्थान से आकाशके सहित आज्ञा चक्रस्थ मन
में आकाशको लीन ध्यानकर मनको नादमें लीन और पृथ्वी ध्वनि समर्प-
ण करै अनन्तर सहस्र दल कमल कर्णिका में प्रतिष्ठित चन्द्र मण्डल मध्य-
वर्ती त्रिकोण के अन्तर्गत बिन्दुरूप परम शिव में कुण्डलिनी और जीवा
त्मा, इन दोनोंको नित्य एकरूपमें चिन्ता करके प्राणायाम विधानानुसार
'यम' यह धूम्रवर्ण वायुबीज षोडशवार जपकर पाप पुरुषके सहित शरीर

चतुःषष्टिवारं जपन् तं संदह्य वमिति वरुणवीजं शुक्लवर्णं द्वात्रिंशद्वारं जपन् तद्भवामृतवृष्ट्या निष्पापं शरीरम् उत्पाद्य लमिति पृथ्वीवीजेन पीतवर्णं ध्यायन् शरीरं सुदृढीकृत्य सोऽहमिति मन्त्रेण कुलकुण्डलिनीममृतलीलां पञ्चभूतजीवात्मानञ्च ब्रह्मपथेन स्वस्वस्थाने नियोजयेत् । तदा देवीरूपमात्मानं ध्यात्वा हृदि हस्तं निधाय जीवं न्यसेत् ॥

यथा—आं ह्रीं क्रों हंसः श्री दक्षिणकालिकायाः प्राणा इह प्राणा आं ह्रीं क्रों हंसः अमुष्याः जीव इह स्थित । आं ह्रीं क्रों हंस अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि आं ह्रीं क्रों हंसः अमुष्याः वांमनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । इति जीवं न्यसेत् ॥

तदुक्तं स्वतन्त्रे ।

संहारक्रमयोगेन पञ्चतत्त्वं समुद्धरेत् । शोषदाहप्लवान् कृत्वा वाय्वग्निसलिलाक्षरैः ॥ ततो न्यासं प्रकुर्वीत फेत्कारीतन्त्र ईरितम् ॥

का शोधन करै तदनन्तर 'रं' यह रक्तवर्ण वह्नि वीज चौसठवार जप और उसको दग्ध करके वम् यहशुक्लवर्ण वरुण वीज वत्तीसवार जप और उससे समुद्भूत अमृत वृष्टिके द्वारा निष्पाप शरीर समुद्भावन पूर्वक, लम, इस पीतवर्ण पृथ्वीवीजके ध्यान सहित शरीरको दृढ करैं । फिर' सोहं' मंत्रसे अमृत लोलाकुल कुण्डलिनी और पंचभूत जीवात्मा को ब्रह्मपथ योग में स्वस्वस्थान में नियोजित करै । तिसकाल देवी का रूप और आत्मा दोनों का ध्यान और हृदय में हस्तन्यस्त करके जीव न्यास करना चाहिये । यथा—आं ह्रीं क्रों' इत्यादि मंत्र से जीवन्यास करै । स्वतंत्र में, कहा है, यथा संहार क्रम योगके अनुसार पंचतत्व समुद्धार एवं वायु अग्नि और सलिलाक्षर में शोषण दाहन और प्लावन करके फेत्कारिणी तंत्रके मतसे जीवन्यास करै ।

अन्यत्रापि ।

देवीरूपं ततो ध्यायेदात्मानं कमलेक्षणे । ततो जीवं प्रविन्यस्य पाशादित्र्यक्षरेण तु ॥ प्राणमन्त्रेण मुक्तेन ततोऽमुष्याः पदं ततः । प्राणा इति पदं पश्चादिह प्राणाः पदं ततः ॥ सर्वेन्द्रियाण्यमुष्यान्ते वाङ्मनो नयनं ततः । श्रोत्रघ्राणपदात् प्राणा इहागत्य सुखं चिरम् । तिष्ठन्तु वह्निजायान्तः प्राणमन्त्रोऽयमीरितः ॥

प्रकारान्तरञ्च ज्ञानार्णवे—

विपरीतं प्राणमन्त्रं विलिखेत् पाशपूर्वकम् । प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत् ॥

अमुष्या इति पदानि बोद्धव्यानि इति साम्प्रदायिकाः । अमुष्याःस्थाने षष्ठ्यान्तं नाम प्रयोक्तव्यं तदुक्तं नारायणीये—

अमुकपदं यद्रूपं यन्त्रमन्त्रेषु दृश्यते । साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र स्थाने नियोजयेत् ॥

कुमारीकल्पेऽपि—

भूतशुद्धिं विधायेत्थं देवीरूपेण चिन्तयेत् ॥

अन्यत्रभी कहा है, यथा—हे कमलेक्षणे ! देवीरूप और आत्मा का ध्यान करके पाशादि तीन अक्षरों के सहित जीवन्यास करै । तिसका प्राणमंत्र उच्चारण करना चाहिये । उसकी विधि यही है प्रथम अमुष्या पद फिर प्राणाः अनन्तर इह प्राणाः अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनोनयन घ्राण श्रोत्रपदात् प्राणा इहागत्य सुखं चिरः तिष्ठन्तु स्वहा । इसकाही नाम प्राण मंत्र है । ज्ञानार्णव में कहा है, विपरीत प्राणमंत्र पाश पूर्वक लिखना चाहिये। इसकाही नाम प्राण प्रतिष्ठा मंत्र है । इस मंत्रके प्रभाव से संपूर्ण कर्म साधन किये जाते है । कुमारी कल्पमें भी कहा है, इस प्रकार भूतशुद्धि विधान कर

ओं आं ह्रीं क्रों फट् स्वाहा अनेन कायवाक्चित्तशोधनं कृत्वा रक्ष हुं फट् स्वाहा अनेन हृदि हस्तं दत्त्वा आत्मरक्षां विधाय स्ववामे लतां गुरुदेवतां नवयौवनगर्विता विधाय भूतशुद्धिं प्राणायामान् कारयित्वा यथोक्तमाचरेत्। तदुक्तं तत्रैव। प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य विशेषासनमेव च। हुं फट् स्वाहा मनुः प्रोक्तं कायवाक् चित्तशोधने। रक्ष हुं फट् ततः स्वाहा मन्त्रः स्यादात्मरक्षणे॥ ततः षोड़शवर्षीयां नारीमानीय मन्त्रवित्। युवतीं वा मदोन्मत्तां सुवेशां चारुहासिनीम्॥ सदा कामाभिलषितां सिन्दूराङ्कितभालिकाम्। साधके प्रेमसम्पन्नां वामे संस्थापयेत् बुधः॥ तस्याश्च भूतशुद्ध्यादीन् कृत्वा तु मातृकां न्यसेत्। प्राणायामं मातृकाञ्च कारयित्वा यथाविधि॥

अथ ऋष्यादिन्यासं कुर्य्यात्। यथा। कृताञ्जलिः भैरव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीदक्षिणकालिका देवता ह्रीं वीजं हुं

के देवी के रूपकी चिन्ता करे। और 'आं ह्रीं इत्यादि मंत्रमें काय वाक्य और चित्त शोधन करके रक्ष हुं इत्यादि मंत्रसे हृदयमें हस्तदान पूर्वक आत्म रक्षा करै फिर अपने वाम पें नव यौवन गर्विता गुरु देवता विधान करके भूतशुद्धि और प्राणायामके पीछे यथोक्त आचरण करै उसमें ही यह कहा है। यथा—प्रणव उच्चारण करके फिर हुं फट् स्वाहा उचारण करै, यही काय वाक् और चित्त शोधन मंत्र है। अनन्वर रक्ष हुं फट् इत्यादि मंत्र से आत्मरक्षा करै। तदनन्तर मंत्रवित् साधक षोडश वर्षीय, सुवेश, सुहासिनी सर्वदा कामाभिळाषिनी, सिंदूर चर्चित मस्तक, युक्त साधक के प्रतिप्रेम भाव युक्त, मदोन्मत्त युवती रमणी लाकर वाम में संस्थापन और उसकी भूत शुद्धि आदिक क्रिया सम्पादन पूर्वक मातृका न्यास करै और यथा विधि प्राणायाम एवं मातृका और निष्पादन पूर्वक ऋष्यादि न्यास में प्रवृत्त होवे। यथा कृतांजलि होकर इस प्रकार कहै, भैरव ऋषि, अनुष्टप छंद, दक्षिणा कालिका देवता, इत्यादि।

शक्तिः क्रीं कीलकं रुचार्थकाममोक्षपुरुषार्थचतुष्टयसिद्धिपूर्वकदिव्यज्ञनद्रुतकवित्वपाण्डित्यासिद्धये विनियोगः । इत्यभिलप्य पुष्पेण अनामिकया वा न्यसेत् । यथा । शिरसि भैरवऋषये नमः मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि श्रीदक्षिणकालिकायै नमः गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः पादयोः हुं शक्तये नमः सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः । तदुक्तम् ।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक्छन्द उदाहृतम् । देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजन्तु कीलकम् ॥ शक्तिस्तु कूर्चबीजं स्यादनिरुद्धसरस्वती । कवित्वार्थे विनियोगः एवमृष्यादिकल्पना ॥

कवित्वार्थे विनियोगः इत्युपलक्षणम् । यद्यस्याभिलषितं तदर्थे विनियोगः इत्यर्थः । तन्त्रे विविधश्रवणात् । तदुक्तं कालीक्रमे ।

कीलकं चाद्यबीजन्तु चतुर्वर्गार्थसिद्धये ।

कुलचूड़ामणौ ।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक्छन्द उदीरितम् ॥ दक्षिणाकालिका देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ।

अथ तन्त्रान्तरे ।

ऋषिं न्यसेन्मूर्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे ॥ देवतां हृदये चैव बीजन्तु गुह्यदेशके । शक्तिस्तु पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ॥

तन्त्रान्तर में कहा है, मस्तक में ऋषिन्यास करे । मुख पद्म में छंद हृदय में देवता, गुह्य देश में बीज, दोनों पैरों में शक्ति और सर्वाङ्ग में कीलक वि॰

गौतमीये। ऋषिश्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलभाग् भवेत्। नैर्वीर्य्यं याति मन्त्राणां विनियोग अजानताम्॥

अथ कराङ्गन्यासौ। ओं ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यंगुष्ठयोः। ओं ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इति तर्जन्योः। ओं ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट् इति मध्यमयोः। ओं ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं इति अनामिकयोः। ओं ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् इति कनिष्ठयोः। ओं ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां नमः इति करतलपृष्ठयोः इति करन्यासः। अथवा सर्वत्र नमस्कारान्तेन करन्यासः। ततः ओं ह्रां हृदयाय नमः इति हृदि तर्जनीमध्यमानामिकाभिर्न्यसेत्। ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा इति शिरसि तर्जनीमध्यमाभ्याम्। ओं ह्रूं सिखायै वषट् इति शिखायां मुष्टिकृताधोमुखांगुष्ठेन। ओं ह्रैं कवचाय हुं इति कवचे हस्तद्वयांगुलीभिः। ओं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् इति नेत्रत्रये तर्जनीमध्यमानामिकाभिः। ओं ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् इति करतलपृष्ठयोः। ततः ओं ह्रः अस्त्राय फट् इत्यनेन तर्जनीम-

---

स्त करै। गौतमीय में कहा है, ऋषि और छंद न जाननेसे मंत्र फलदायक नहीं होता और उसका विनियोग भी निर्वीर्य होता है।

अब कराङ्गन्यास लिखते हैं। "ओं ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः" इत्यादि। इस काही नाम करन्यास है। अथवा सर्वत्र नमस्कार के अन्त में करन्यास करै। अनन्तर "ओं ह्रां हृदयायनमः" यह कहकर हृदय में तर्जनी, मध्यमा और अनामिका द्वारा न्यास करै। ओं ह्रीं इत्यादि कहकर तर्जनी और मध्यमा द्वारा मस्तक में न्यास करै। ओं ह्रूं इत्यादि कहकर मुष्टिकृत अधो मुख अंगुष्ठ में शिखान्यस्त करै। 'ओं ह्रैं' इत्यादि कहकर दोनों हाथों की सब अंगुलियों से कवच में न्यास करै। 'ओं ह्रौं' इत्यादि कहकर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका द्वारा नेत्र में तीन न्यास करै। 'ओं ह्रः' इत्यादि कहकर करतल पृष्ठ में न्यास करै "ओं ह्रः अस्त्राय फट्" इत्यादि कहकर तर्जनी

ध्यमाभ्यां मूर्ध्नि ऊर्द्ध्वोर्द्ध्वं तालत्रयं दत्त्वा छोटिकाभिर्दश· दिग्वन्धनं कुर्य्यात् ॥

तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते । षड्दीर्घभाजा वीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ॥ हृदयाय नमः प्रोक्तं शिरसे वह्निवल्लभा । शिखायां वषड़ित्युक्त्वं कवचाय हुमीरितम् ॥ नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फट् प्रकीर्त्तितम् । वीजं मंत्राद्यवीजं न तु पारिभाषिकम् ॥ तन्त्रान्तरे स्मरणात् ।

स्वतन्त्रेऽपि ।

प्रणवं चाद्यवीजञ्च षड्दीर्घस्वरभाषितम् । कुर्य्यात् षड़ङ्गविन्यासं मूलखण्डत्रयेण वा ॥

अथ प्रकारः । आद्यसप्तवीजेन हृदयम् । द्वितीय खण्ड· षड़क्षरेण शीर्षम् । तृतीयखण्डनवाक्षरेण शिखायाम् । पुनराद्येन कवचम् । द्वितीयेन नेत्रत्रयम् । तृतीयखण्डेनास्त्रम् । इत्थं वा अङ्गन्यासं कुर्य्यात् ।

भैरवतन्त्रेऽपि ।

षड़ङ्गानि न्यसेन्मन्त्री त्रिः सकृद्वा यथाक्रमम् ॥

और मध्यमा द्वारा मस्तक में ऊर्द्धोर्द्ध तीन ताल प्रदान करके कनअंगुली से दशदिक् बंधन करै । काली तंत्र में कहा है, यथा अंगन्यास और कर न्यास यथावत कथित होते हैं । प्रणवादिके दीर्घ स्वरांत वीज द्वारा यथा क्रम से "हृदयायनम शिरसे स्वाहा" इत्यादि प्रयोग करै । स्वतंत्र में भी कहा है, प्रणव और दीर्घ स्वर भाषित आद्य वीज षट्क और मूल बीजके तीन खंड द्वारा षडङ्ग विन्यास करै । आद्य सप्तबीज द्वारा हृदय, द्वितीय खण्ड षडक्षर द्वारा मस्तक, तृतीय खण्ड नवाक्षर द्वारा शिखा इत्यादि क्रमसे अंगन्यास करै ।

अथ वर्णन्यासं कुर्यात्। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमो हृदि एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमो दक्षभुजे। ङं चं छं जं झं ञं। टं ठं डं ढं नमो वामभुजे। णं तं थं दं धं नं पं फं वं भं नमो दक्षजङ्घायाम्। मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमो वामजङ्घायां न्यसेत्। तदुक्तं काली तंत्रे।

एवं यथाविधि कृत्वा वर्णन्यासं समाचरेत्। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ वै हृदये न्यसेत्॥ ए ऐ ओ औ ततः अं अः क ख ग घ पुनस्ततः। उक्त्वा च दक्षिणभुजं स्पृशेत् साधकसत्तमः॥ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ तथा पुनः।

इति वामभुजेन्यस्य। ण त थ द पुनः स्मरेत्। ध न प फ ब भ दक्षिणे जङ्के न्यसेत्। म य र ल व श ष स ह क्ष वाम जङ्के। तथैतल्लिखितवर्णस्वरसात् विन्दुरहितवर्णन्यासः। विरूपाक्षमते तु सविन्दुरेव न्यासप्रमाणम्। तदुक्तं कवचे लिखिष्यामः।

ऋषिर्ब्रह्मा भवेच्छन्दोगायत्री मातृका पुनः। देवता व्यंजनं वीजंशक्तयस्तु स्वरास्ततः॥ अव्यक्तं कीलकं ज्ञेयं न्यास उक्तः क्रमेण तु।

उक्त इति पूर्वोक्तऋष्यादिक्रमवत्। क्रमेण न्यसेदित्यर्थः। षडङ्गं मातृकायाश्च साधकःकारयेत्ततः।

स्वराणां क्लीवहीनानां ऋ ॠ लृ ॡ रहितानामित्यर्थः। एवं विधिना मातृका षडङ्गं कृत्वा ध्यायेत् यथा—

---

* अनन्तर वर्णन्यास करे। यथा—अं आं इत्यादि ब्रह्मऋषि गायत्री छंद, मातृका देवता, व्यंजन वर्णवीज, समस्त स्वरशक्ति, अव्यक्त कीलक क्रमानुसार न्यास करे। अनन्तर साधक मातृका देवी का षडङ्गन्यास करे और विधि विधान से मातृका का षडङ्गन्यास करके ध्यान करे

शरत् पूर्णेन्दुशुभ्रां सकलगुणमयीं लोलरक्तत्रिनेत्रां शुक्लालङ्कारभूषां शशिमुकुटजटाटोपयुक्तां प्रसन्नाम् । पुस्तीक्षक्पूर्णकुम्भान् वरमपि दधतीं शुक्लपट्टाम्बराढ्यां वाग्देवीं पद्मवक्त्रां कुचभरनमितां चिन्तयेत् साधकेन्द्रः ॥

एवं ध्यात्वा ललाटादिक्रमेण अकारादिक्षकारान्तं क्रमेण न्यसेत् । यथा । श्रीक्रमे ।

ब्रह्मरन्ध्रे तथा वक्त्रे वेष्टने नयनद्वये । श्रुतिनासापुटद्वन्द्व गण्डोष्ठद्वयकेऽपिच ॥ दन्तयुग्मे च मूर्द्धास्ये षड्वर्णान् षोड़श न्यसेत् । दोःपत्सन्धिषु साग्रेषु पार्श्वयुग्मे न्यसेत् पुनः ॥ पृष्ठनाभिद्वये चैव जठरे विन्यसेदथ । त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थि मज्जशुक्राणि धातवः ॥ प्राणजीवौ च परमौ यकारादिषु संस्थिताः । एवं क्रमेण देवेशि न्यस्तव्या एतदात्मिकाः ॥ हृदोर्मूलेऽपि विन्यस्य तथापरगले न्यसेत् । करमूले हृदार·

यथा—शरत्काल के पूर्ण चन्द्रमा की समान शुभ्रवर्णा, नाना विध गुण युक्त चंचल और लोहितवर्ण तीननेत्र युक्त श्वेत वर्ण के भूषणों से भूषित, पुस्तक, माल्य (माला) और पूर्ण कुंभ धारिणी, श्वेतवर्ण, पट्ट वस्त्र में मण्डित देह, पद्मकी समान वदन मण्डल युक्त और कुचभरे । नमित देह वाग् देवताकी चिन्ता करै । इस प्रकारसे ध्यान करके, ललाटादिक्रमसे यथा क्रम अकार से क्षकार पर्यन्त न्यास करना चाहिये । यथा—श्रीक्रममें कहाहै, ब्रह्मरन्ध्र, वदन, वेष्टन, दो नेत्र, दो श्रवण, दो नासापुट, गण्ड और दो ओष्ठ दन्त युग्म और मस्तक, इन सबमे सोलह स्वर विन्यास करै । बाहु और पद सन्धि, दोनों पार्श्व, पृष्ठ और नाभि, जठर इन सबमें न्यास करै । त्वक, अस्थि, मांस, मेद, शोणित, मज्जा, शुक्र, सब धातु प्राण जीव, यह यकारादि में प्रतिष्ठितहै । हे देवि ! उल्लिखित क्रमानु सार वह २ समस्त वर्ण उस उस पदार्थमें न्यस्त (संयुक्त) करै । हृद मूलमें विन्यासकरके फिर अपर गलमें विन्यास करना चाहिये । अनन्तर हृदयसे आरंभकरके कर मूल

भ्य पाणिपादयुगे तथा ॥ जठराननयोर्व्याप्तिं न्यासेदित्यर्ण रूपिणीम् ॥ एवं ज्ञानार्णवे। अन्यच्च ललाटमुखवृत्ताक्षीत्यादि।

अथ प्रयोगः—ॐनमो ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे वा आं नमो मुख वृत्ते एवं क्रमेण मकारपर्य्यन्तं विन्यस्य। यं त्वगात्मनेनमः। रं असृगात्मने नमः। लं मांसात्मने नमः। रं मेदआत्मने नमः। वामांशे ककुदि वा शं असृगात्मने नमः। पं मज्जात्म ने नमः। सं शुक्रात्मने नमः। हं प्राणात्मनेनमः। लं जीवात्मने नमः। क्षं परमात्मने नमः इति विशेषः॥

पंचाशदक्षरन्यासः क्रमेणैव प्रकाशितः। ओमाद्यन्तो नमोऽन्तश्च सबिन्दुर्बिंदुवर्जितः। मायालक्ष्मीबीजपूर्वो न्यस्तव्य उच्यते बुधैः। ललाटऽनामिकामध्ये विन्यसेन्मुखवृत्तके तर्जनीमध्यमानामा वृद्धानामा च नेत्रयोः॥ अंगुष्ठं कर्णयोर्न्यस्य कनिष्ठांगुष्ठकौनसोः। मध्यास्तिस्रो गण्डयोश्च मध्य-

---

पाणि पाद युग (हाथपैर) एवं जठर और आननमें वर्ण रूपिणी व्याप्ति (व्याप्तहोनेवाली) न्यस्त करे।

अब प्रयोग वर्णित होताहै।—यथा ओं नमो ब्रह्मरन्ध्र इत्यादि क्रमसे मकार पर्यन्त विन्यस्त करके यंत्वगात्मा को नमस्कार रं,असृतात्माको नमस्कार लंमांसात्मा को नमस्कार, 'र' मेद आत्मा को नमस्कार वामस्कन्ध वा ककुद (कंधे) में शं असृगात्मा को नमस्कार पं मज्जात्माको नमस्कार सं शुक्रा त्माको नमस्कार हं प्राणात्मा को नमस्कार; ल जीवात्मा को नमस्कार, क्षं परमात्मा को नमस्कार, इत्यादि विधान में न्यास कार्य समापन करे। क्रमानुसार यह पञ्चाश दक्षर न्यास प्रकाशित हुआ। इस के आदि अन्त में ओम्, अन्त में नमः शब्द और बिंदु प्रयोग करना चाहिये। अथवा बिन्दु न देने पर भी चलता है पण्डित गण कहते हैं, प्रथममाया और लक्ष्मीबीज न्यस्त करना चाहिये। ललाट, अनामिका और मुख मण्डल में यथा क्रम से तर्जनी, मध्यमा और अनामिका, दोनों नेत्रोंमें वृद्धा, दोनों कर्णों में अंगुष्ठ नासिका के दोनों छिद्रों में कनिष्ठा और अंगुष्ठ, दोनों गंडमें मध्यत्रय (ती

मामोष्ठयोर्न्यसेत् ॥ अनामां दन्तयोर्न्यस्य मध्यमामुत्तमांगके। मुखेऽनामां मध्यमां च हस्ते पादे च पार्श्वयोः॥ कनिष्ठानामिका मध्यास्तास्तु पृष्ठे प्रविन्यसेत् । ताः सांगुष्ठा नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ च विन्यसेत् ॥ हृदये च तलं सर्वमंसयोश्च ककुत्स्थले। हृत्पूर्वं हस्तपत्कुक्षिमुखेषु तलमेव हि ॥ एतास्तु मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्त्तिताः । अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः ॥

अथ श्रीकण्ठन्यासो यथा ।

विन्यसेन्मातृकास्थाने श्रीकण्ठादीन्यथाक्रमम् । पूर्णोदर्यादिभिः सार्द्धं मातृकार्णसमन्वितान् ॥ श्रीकंठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्त्तिरमरेश्वरः । अर्घीशो भारभूतिश्चातिथीशः स्थाणुको हरः ॥ झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः । अक्रूरश्च महाशैलः षोड्श स्वरमूर्त्तयः ॥ पश्चात्

नों के बीच में) दोनों ओष्ठ में मध्यमा, दोनों दंत पंक्ति में अनामा, उत्तमांग में मध्यमा, मुख में अनामा, हस्त में मध्यमा, पाद और दोनों पार्श्व में कनिष्ठा और अनामिका, और पृष्ठ में तत्तत् अंगुली न्यस्त करके नाभि में उसके सहित अंगुष्ठ और कुक्षि में वह सब विन्यस्त करे। अनन्तर हृदय में दोनों अंशमें, ककुत् [कंधा] प्रदेश में हस्त, पद, कुक्षि और मुख में वह सब विन्यस्त करे । यह सम्पूर्ण मातृका मुद्रा यथा क्रम से कही गई । इन को न जान कर विन्यास करने से वह न्यास सर्वदा निष्फल होता है ।

अब श्री कंठन्यास कहते हैं । यथा मातृका स्थान में पूर्णोदरी प्रभृति के सहित मातृका वर्ण युक्त श्रीकण्ठादि यथा क्रम से न्यस्त करे। श्री कंठ अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्त्ति अमरेश्वर, अर्धीश, भार भूतिश अतिथीश, स्थाणुक हर, झिण्टीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर, महाशैल, और महादेव, यह सोलह स्वरकी मूर्त्ति हैं । इन कोही श्री कण्ठादि कहते हैं ।

क्रोधीशचण्डेशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः । अथैकरुद्रकूर्मैकनेत्रा र्द्धचतुराननाः ॥ अजेशः सर्वसोमेशस्तथा लांगलिदारुको । अर्द्धनारी श्वरश्चोमाकान्तश्चापाढिदंडिनौ ॥ स्युरत्रिमीनमेषाख्या लोहितश्च शिखी तथा । छगलांडदुरंडेशौ समहाकालवालिनौ । भुजङ्गश पिनाकीश खड्गेशाख्यावकेश्वरः॥श्वेत भृग्वीशन कुलिशिवाः समवर्त्तकः स्मृतः॥ एते रुद्राः स्मृता रक्ताधृतशूलकपालकाः । पूर्णोदरी स्याद्विजया शाल्मली तदनन्तरम् ॥ लोलाक्षी वर्त्तुलाक्षी च दीर्घघोणा समीरिता। सुदीर्घमुखी गोमुख्यौ दीर्घजंघा तथैवच ॥ कुम्भोदर्य्यूर्द्ध्व केशी च तथा विकृतमुख्यपि । ज्वालामुखी ततो ज्ञेया पश्चादुल्कामुखी तथा ॥ चुल्लीमुखी विद्यामुखी चैताः षोड़श शक्तयः । महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते ॥ गौरी त्रैलोक्यविद्याच मन्त्रशक्तिस्ततः परम् । आत्मशक्तिर्भूतमाता तथा लम्बोदरी मता ॥ द्राविणी नागरी भूयः खेचरी चैव मंजरी । रूपिणी वीरणी पश्चात् काकोदर्य्यपि पूतना॥

और क्रोधीश, चण्डेश, पंचात्मक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, अर्द्ध चतुरानन, अजेश, सर्व सोमेश, लांगल, दारक, अर्द्धनारीश्वर, उमाकांत आषाढी, दंडी, अत्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, छागलण्ड, द्विरण्डश, महाकालवाली, भुजंगश, पिनाकीश; खड्गेश, बकेश्वर, श्वेतभृग्वीश, नकुली, शिव, सम्वर्त्तक, इन को रुद्र कहते हैं। यह सबरक्त वर्ण और सभी शूल एवं कपाल धारी हैं। और पूर्णोदरी, विजया, शाल्मली लोलाक्षी, वर्त्तुलाक्षी, दीर्घ घोणा, दीर्घ मुखी, गोमुखी, दीर्घ जंघा, कुम्भोदरी, ऊर्द्ध केशी, विकृतमुखी, ज्वालामुखी, उल्कामुखी, चुल्लीमुखी, विद्यामुखी, यह सोलह शक्ति हैं। महाकाली, सरस्वती, गौरी, त्रैलोक्यविद्या, मंत्रशक्ति, आत्मशक्ति, भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, वारिणी, काकोदरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शंखिनी, गर्जिनी, कालरा-

स्याद्रुद्रकाली योगिन्यौ शंखिनी गर्जिनी तथा । सकालरात्रिकुब्जिन्यौ कपर्दिन्यपि वज्रिणी ॥ जया च सुमुखी प्रोक्ता रेवती माधवी तथा वारुणी वायवी प्रोक्ता पश्चाद्रक्षो विदारिणी ॥ ततश्च सहजालक्ष्मीव्यापिनी माययान्विता । एता रुद्राङ्कपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः । रक्तो त्पलकपालाढ्या अलंकृतकराम्बुजाः ॥

अथ प्रयोगः यथा । अं श्रीकण्ठपूर्णोदरीभ्यां नमः इति ललाटे । आं अनन्तवीजाभ्यां नमः इति मुखवृत्ते । एवं क्रमेण सर्वं कुर्य्यात् ।

अथ षोढान्यासः । तदुक्तं वीरतन्त्रे ।

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसंपुटाम् । मातृकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तमः ॥

ओं अं ओं एवं तथैव मातृकापुटितं एवं कामपुटितं तत् पुटितं कामम् । शक्तिपुटितं ततपुटितां शक्तिम् । लज्जापुटितं तत्पुटितां लज्जाम् । मन्त्रपुटितात् तत्पुटितं मन्त्रम् । पुनः

त्रि, कुब्जिनी, कपर्दिनी, वज्रिणी, जया, सुमुखेश्वरी, रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षोविदारिणी, सहजा, लक्ष्मी और माया, यह रुद्रगणों की अङ्क पीठस्थ और सभी सिंदूर की समान लोहित शरीर सभी रक्तोत्पल और कपाल हस्ता और समस्तही अलंकृत कराम्बुज हैं । इन का प्रयोग । यथा— ऊँ श्रीं कण्ठपूर्णोदरी दोनों को नमस्कार है । यह कहकर ललाट में न्यास करे । इत्यादि ।

अब सोढान्यास कथित होता है । वीर तंत्र में कहा है, केवल मातृका विधान पूर्वक प्रणव पुटित मातृका और मातृका पुटित प्रणव विन्यस्त करे । यथा 'ओं अं ओं' इस प्रकार मातृका पुटित और काम पुटित एवं तत्पुटित काम इत्यादि । पुनर्वार अनुलोम और बिलोम क्रम से मातृका स्थान

लोमविलोमतः केवलमन्त्रं मातृकास्थाने न्यस्य अष्टोत्तरशतेन व्यापकं कुर्य्यात् ।

इति गुप्तेन दुर्गाया अङ्गषोढ़ा प्रकीर्त्तिता । तारायाः कालिकायाश्च तन्मुख्याश्च तथापि वा ॥ कृतेऽस्मिन्न्यासवर्य्ये तु सर्वं पापं प्रणश्यति । विषापमृत्युहरणं ग्रहरोगादिनाशनम् ॥ दुष्टसत्वा विनश्यन्ति शत्रवोयान्ति मित्रताम् कविता लहरी तस्य द्राक्षारस परम्परा ॥ अणिमाद्यष्टसिद्धिस्तु तस्य हस्ते व्यवस्थिता । कायिकं वाचिकं वापि मानसञ्चापि दुस्कृतम् ॥ सर्वं तस्य विनाशत्वं याति न्यासस्य चिन्तनात् । पुरस्कृत्य क्षयं याति यत्किञ्चिदुपपातकम् यद्रूपं दृश्यते योहि स तद्रूप ञ्च गच्छति यं नमन्ति महेशानि ! षोढ़ापुटतिविग्रहाः । अल्पायुः स भवेत् सद्यो देवता कम्पतेभिया ॥

अथ तत्वन्यासः । मूलविद्या स्वतन्त्रे ।

आत्मविद्या शिवैस्तत्त्वैस्तत्त्वन्यासं समाचरेत् ॥

में केवल मंत्र न्यास करके अष्टोत्तर शत द्वारा व्यापक विधान करै । इसकाही नाम दुर्गा और कालिका का अंग षोढा है । इस षोढ़ा विधान करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते है । विष और अपमृत्यु दूर होती है, गृहरोगादि दूर होते हैं, दुष्ट सत्व विनाशित होते है शत्रुओं में मित्रता होती है मुखसे द्राक्षारसधारा की समान रसमयी कविता लहरी निर्गत होती है, अणिमादिक आठ सिद्धि हस्तगत होती हैं, कायिक, वाचिक और मानसिक पाप सम्पूर्ण इस न्यासके चिंतामात्र से ही तत्काल दूर होते हैं, और जो कुछ उपपातक हैं, वहभी इसी प्रकार नष्ट होते है, हे महेशानि ! षोढा पुटित विग्रह व्यक्ति गण जिसको नमस्कार करते है, वह व्यक्ति शीघ्र अल्पायु होता है और देवतागण भी उसके भयसे कम्पित होते है ।

अब तत्व न्यास कथित होताहै । स्वतन्त्र में कहा है, आत्म तत्व, विद्या तत्व; और शिवतत्व द्वारा तत्व न्यास करैं । फिर जीव न्यास करै । जैसा

अथ जीवन्यासं कुर्य्यात् । यथा कुमारीतन्त्रे ।

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके । गुह्ये वक्त्रे तु सर्वांगे सप्तबीजान् क्रमान् न्यसेत् ॥

अथ प्रयोगः—आद्यबीजमुच्चार्य्य नमो ब्रह्मरन्ध्रे एवं द्वितीयबीजं भ्रुवि । तृतीयं भाले चतुर्थं नाभौ पंचमं गुह्ये षष्ठं वक्त्रे । सप्तमं सर्वांगे न्यसेत् । ततः प्रणवपुटितमूलेन व्यापकन्यासं कुर्य्यात् नवधा सप्तधा पंचधा वा मस्तकादिपादपर्य्यंतं पादादिमस्तकांतं न्यसेत् । तदुक्तं भैरवतन्त्रे—

पंचधा नवधा वापि मूलेन सप्तधा तथा ॥
व्यापकं कुर्य्यादित्यादि । स्वतन्त्रेऽपि,—
मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेत् प्रिये ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते श्यामारहस्येन्यासांतविवरणंनामप्रथमःपरिच्छेदः ।

कि कुमारी तन्त्र में कहा है, ब्रह्मरन्ध्र, भ्रू, ललाट, नाभिदेश, गुह्य, वक्त्र (मुख) और सर्वांग में यथाक्रम से सप्तबीज न्यस्त करे ।

प्रयोग यथा—आद्यबीज उच्चारण करके ब्रह्मरन्ध्र में नमः इस प्रकार करे फिर द्वितीय बीज भ्रू में, तृतीय बीज ललाट में, चतुर्थ बीज नाभिमें, पंचम बीज गुह्य में, षष्ठ बीज वक्त्र में और सप्तम बीज सर्वांग में न्यस्त करे । फिर प्रणव पुटित मूल मन्त्र में व्यापक न्यास करके नव (९) बार, सात बार, वा पांचबार मस्तकादि पद पर्यंत और पादादि मस्तक पर्यंत न्यास करे । भैरव तंत्रमें इसी प्रकार कहा है,—यथा पांचबार, नवबार, अथवा सातबार मूलकी सहायतासे व्यापकन्यास करे, इत्यादि । स्वतंत्र में भी कहा है, हे प्रिये ! मूलकी सहायता से नौ बार व्यापक न्यास करना चाहिये ॥

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित श्यामारहस्य भाषाटीकासहित न्यासान्त विवरण नाम प्रथमपरिच्छेद ॥ १ ॥



अथ द्वितीयः परिच्छेदः ।

वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम् । गुरुध्यानं प्रकु-
यथा पूर्वं विशालधीः ॥ स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करेहृ-
बिन्दुतीर्थेन वा स्नायात् पुनर्जन्म न विद्यते ॥
शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णेऽथ ततः शरीरे ।
स्नाति तयोः सदा यः किं तस्य गाङ्गैरपिपुष्करैर्वा ।
स्नानम् ॥

समायोगो यस्मिन् काले प्रजायते । सा सन्ध्या
समाधिस्थैः प्रतीयते ॥ इति सन्ध्योपासनम् ॥
अथ मूलधारात् कुलकुण्डलीं सोमसूर्य्याग्निरूपिणीं समु-
परबिन्दुं निर्भिद्य देहदेवतां तर्पयेत् । तदुक्तं—
चन्द्रार्कानलसंजुष्टाकुलितं यत् परामृतम् । तेनामृतेन
तर्पयेत्तेन देवताम् ॥ इति तर्पणम् ।

जिसके द्वारा दृष्ट अदृष्ट फल प्राप्त होता है इससमय वही अन्तर्यजन कहते । विशाल बुद्धि पुरुष पूर्वकी समान यथाविधानसे गुरुका ध्यान करै और विमल पुष्कर तीर्थ में अथवा बिन्दु तीर्थ में स्नान करै, तौ पुनर्ज- नहीं होता । इडा और सुषुम्ना इन दोनों को शिव तीर्थ कहते हैं । यह जलसे पूर्ण हैं । जो व्यक्ति ब्रह्म सलिलमें अर्थात् इन दोनों तीर्थ में स्नान करता है उसको गंगाजल अथवा पुष्करके जलमें स्नान करने कोई आवश्यकता नहीं है । यह स्नान वर्णित हुआ । जिस समय शिव शक्ति इन दोनों का मिलाप होता है कुल निष्ठगणों की वही संध्या है परायण होनेपर उसकी प्रतीत होसक्ती है । संध्योपासन वर्णित हुई । अनन्तर मूलाधार से सोम सूर्याग्नि रूपिणी कुल कुण्डलिनी को समुत्था- पित (उठाना) और परबिन्दु को निर्भेद करके देह देवताका तर्पण करै । वही कहा है, यथा—जो परमामृत चन्द्र सूर्य और अग्नि से संजुष्ट (मिलित) और आकुलित है, उसी दिव्य अमृतसे देवताका तर्पण करै । यह तर्पण

ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चांद्रं पात्रमुत्तमम् । कलासाधनं संपूर्य्य तर्पयेत्तेन खेचरीम् ॥ इत्यर्घ्य साधनम् ।

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे द्वेपत्रे षोड़शारे द्विदशदशदले द्वादशार्द्धे चतुष्के । वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वरांश्च । हक्षौ कोदण्डमध्ये न्यसतु विमलधीर्न्यास सम्पत्तिसिद्ध्यै ॥ इति मातृकार्णान् कण्ठच्छदक्रमेण ध्यायेत् ।

अथ षडंगन्यासः । तदुक्तं गौतमीये ।

इज्यमानहृदर्थोऽयं हृदये स्याच्चिदात्मकः । क्रियते तत्परत्वेन हृन्मन्त्रेण ततः परम् ॥ सर्वज्ञादिगुणोत्तुंगे संविद्रूपे परात्मनि । क्रियते विषयाहारः शिरो मन्त्रेण देशिकः ॥ हृच्छिरोरूपासिद्धौ नियता भावनादृढा । क्रियते निजदेहस्याशिखामन्त्रेण देशिकः ॥ मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा । सर्वतो धर्ममंत्रेण अहन्यहनि संवृतिः ॥

वर्णित हुआ । ब्रह्मरन्ध्र के अधोभाग में, जो चंद्र संबंधीय पात्र हैं, उसको कलासाधन की सहायता से पूरण करके उसके द्वारा खेचरीका तर्पण करे। इसकाही नाम अर्घ्य साधन है । निमल बुद्धि साधक आधार में, लिंगनाभि में, हृदय सरोज में, तालु मूल में, ललाट में, षोड़शारमें, द्विदश दशदल में, षड़ दल पद्ममें, चतुर्दल में वा सान्त में और बाल में एवं ड क, फ, ड, ठ, सहित कण्ठदेश में और कोदण्ड में न्यास सम्पत्ति सिद्धिके लिये ह, उ, क्ष, और संपूर्ण स्वर संयुक्त करे । इस प्रकार से कण्ठच्छद क्रमानुसार समस्त मातृका वर्णका ध्यान करे ॥

अथ षडङ्गन्यास कीर्त्तन किया जाता है । गौतमीय में कहा है, हृदयमें जो चिदात्मक वस्तु है, वह सबकोही साधनीय है अर्थात् सबकोही उसका साधन करना चाहिये । इसी कारण तत्पर होकर हृन्मंत्र द्वारा उसकी साधना करे । सम्वित् साक्षात परमात्मा का रूप है । सर्वज्ञादि गुण परम्परा की सहायतासे उस परमात्मा ने संसार में सबकी भांति उच्चस्वरूप लाभ

इति अहिंसनीयवह्निलक्षणम् । यत्र क्षणे हिंसाणांहिंसोपाया न प्रवर्त्तते इत्यर्थः ।

यो ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि । हृदयादिमयं तेजः स्यादेतन्मैत्रसंज्ञितम् ॥ आध्यात्मिकादिरूपं यत् साधकस्य विनाशयेत् । अविद्याशतमंत्रं तत्परं धाम समीरितम् ॥

इति षड़ङ्गन्यासं विधाय ध्यानं कुर्य्यात् । यथा उदयाकरपद्धत्यां ।

शक्तिद्वयपुटांतस्थं लक्षद्वयसुसंस्थितम् । ज्योतिस्तत्त्वमयं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ॥

अथवा—शृङ्गाटद्वयमध्यस्थं शक्तिद्वयपुटीकृतम् । सदा समरसं ध्यायेत् कालं तत्कुलयोगिनाम् ॥

अन्यच्च—किरणस्थं तदग्निस्थं चंद्रभास्करमध्यगम् ॥ महाशून्येन यत्कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ॥

महाशून्य इति सर्वोपाधिविनिर्मुक्ते । पूर्णे इति सर्वोपाधिविनिर्मोक्षात् विभागविरहात् पूर्ण एव भवतीति । अथवा निरालम्बपदे शून्ये यत्तेज उपपद्यते । तद्धर्ममभ्यसेन्नित्यं ध्यानं तत्कुलयोगिनाम् ॥

किया है । साधक शिरो मंत्रकी सहायतासे उस में उल्लिखित चिदात्मक वस्तु की साधना करते हैं इसकाही नाम अहिंसनीय वह्नि लक्षण है । इस प्रकार षडङ्गन्यास विधान पूर्वक ध्यान करना चाहिये । जैसे—उदयाकर पद्धति में कहा है—कुलाकुल नियोजन सहित ज्योतिस्तत्वमय ध्यान करे । अथवा शृङ्गाटद्वितय (भाल मध्य में) मध्यस्थित और दो शक्ति पुटित समरस ध्यान करे । अन्यत्रभी कहा है, उपाधि शून्य, आलम्बन शून्य ब्रह्मपदमें जो तेज उत्पन्न होता है, उसी अन्तःकरणस्थ तेजका बारम्बार ध्यान करे । यही कुल योगी गणों का ध्यान है ।

तद्गर्भमिति अन्तःकरणस्थं अभ्यसेदिति वारंवारं कुर्या-दित्यर्थः ॥ इति ध्यानम् ॥

अर्चयन् विषयैःपुष्पैस्तत्क्षणात्तन्मयो भवेत् । न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहम्भावेन पूजयेत् ॥

तन्मयेति तदेवात्मतत्त्वज्ञानम् । सोऽहमिति तत्त्वम्पदबोधनार्थं परिचिन्तनमात्रम् । विषयपुष्पाणि यथा—

अमायमनहङ्कारमवादमपदं तथा । अमोहकमदम्भञ्च तत्त्वेर्ष्याक्षोभकं तथा ॥ अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पविदुर्बुधाः अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम् ॥ दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम् । इत्यष्टसप्तभिः पुष्पैः पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ इति पूजनम् ॥

माला पंचाशिका प्रोक्ता सूत्रं शक्तिशिवात्मकम् । ग्रथिता कुंडलीशक्तिः कल्पान्ते मेरु संस्थिता ॥

एवं विधिना वर्णमालामुपस्कृत्य चमेरुरूपं कृत्वा अका-

भली भांति पुष्प की सहायता से पूजा करने पर तत्काल साधक तन्मय होता है । तन्मयता बुद्धि का नाम न्यास है । सोह—भाव में पूजा करनी चाहिये । यहा तन्मयता शब्द में आत्मतत्व ज्ञान है । सोह शब्द में तत्व, पद शोधनार्थ, परिचिन्तन मात्र पूजा का उपकरण, यही भावार्थ है । विषय पुष्प शब्द में अमाया, अन अहकार, अमोह, अमद, अमात्सर्य अलोभ, इत्यादि समझना चाहिये । इसके अतिरिक्त,अहिंसा इन्द्रिय निग्रह, दया, क्षमा और ज्ञान, इन पांचको भी पुष्प कहतेहैं । इन सब पुष्पों में परमेश्वरी की पूजा करनी चाहिये । इसकाही नाम पूजा है ।

पञ्चाशत (पचास) वर्णकी माला एवं शिव और शक्तिको सूत्र कहते हैं । इस प्रकार विधान से वर्ण माला उपस्कृत (बनाय) कर, अकार से

कम् ॥ प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च । सुधाम्बुधिं
मणिद्वीपं चिंतामणिगृहं तथा ॥ श्मशानं पारिजातञ्च तन्मू
ले रत्नवेदिकाम् । तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत् साधकसत्तमः॥
चतुर्दिच्चु मुनीन् देवान् शिवांश्च शवमुण्डकान्। धर्मांश्चैवाप्य
धर्मांश्च पादगात्र चतुष्टये ॥

पादगात्र चतुष्टयन्तु—दक्षांस-क्षमुख-दक्षजङ्घा-दक्षपार्श्वा
दिकम् ॥

हृदि कन्दं तथा पद्मं सूर्यं सोमं महेश्वरि।वैश्वानरं तथा
सत्त्वं रजश्चैव तमस्तथा ॥ आत्मानञ्चैव विन्यस्य शक्तिं हृत्प
द्मके न्यसेत् ।

आत्मानमिति आत्मशब्देनात्मचतुष्टयमुच्यते।शक्तिर्यथा-

इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामदा कामदायिनी । रतीरति
प्रियानंदा तथैव च मनोन्मनी ॥ वाग्भवं प्रथमं चोक्त्वा प-
रायै तदनंतरम् । अपरायै द्विरूपायै हेसौ वाच्यावतःपरम् ॥
सदाशिव महाप्रेत ङेंतं पद्मासनं तथा । नम इत्येव मंत्रोऽयं
पीठन्यास उदाहृतः । एवं पीठे देहमये चिंतयेदिष्टदेवताम् ॥

अथादौ कामकलारूपमात्मानं विभाव्य मूलाधारात् कुंडलिनीं परमशिवांतं ध्यात्वा चंद्रामृतेन संप्लाव्य करकच्छपिकया पुष्पं गृहीत्वा सुषुम्नया आवाह्य हृदयाष्ट दलरक्त पद्ममध्ये ध्यायेत् । तदुक्तं स्वतंत्रे ॥

अतः कामकला ध्यानमावाह्य कालिकां शिवाम् । कूर्मारुयमुद्रया पुष्पैश्चक्रमध्ये निधापयेत् ॥.

अथ कामकला यथा ।

मुखं विंदुवदाकारं तदधः कुचयुग्मकम् । सर्वविद्या मृता पूर्णं सर्ववाग्विभव प्रदम् ॥ सर्वार्थसाधकं देवि सर्वरंजन कारकम् । तदधः सपरार्द्धंच सुपरिष्कृतमण्डलम् ॥ सर्व देवादि भूतान्तःसर्वदेवनमस्कृतम् । सर्वाह्लादसुसंपूर्णं सर्ववश्यप्रश्यकम् ॥ एतत् कामकलाध्यानं सुगोप्यं साधकोत्तमैः ।

अनन्तर आदि में काम कलारूप आत्मा की विशेष प्रकार भावना कर मूलाधार से परम शिव पर्यन्त कुण्डलिनी के ध्यानान्तर चन्द्रामृत द्वारा सप्लावित और कर कच्छपिका (कछुई) द्वारा पुष्प ग्रहण पूर्वक सुषुम्ना द्वारा आवाहन करके हृदयस्थ अष्टदल रक्त पद्ममें ध्यान करना चाहिये । स्वतन्त्र में यही कहा है । यथा—अतएव काम कला का ध्यान करके परम मंगल रूपिणी कालिका को आवाहन पूर्वक कुसुम मुद्राकी सहायता से समस्त पुष्प निवेदन करके चक्र में सन्निधापित (स्थापित) करे ।

अब कामकला वर्णित होती है । यथा—मुख विन्दु की समान आकार युक्त उसके निम्न में कुच युगल । वह सर्वविध विद्यारूपी अमृत में पूर्ण है सर्वविध वाग्विभव प्रदान और सर्वविध मनोरथ समाधान और सबका मनोरंजन करती है । उसके नीचे अपरार्द्ध सुपरिष्कृत मण्डलमें अलकृत है । सम्पूर्ण देवता और भूतवर्ग उसके अन्तर्निविष्ट हैं सम्पूर्ण देवता उसको नमस्कार करते हैं वह सब प्रकार के आह्लाद में परिपूर्ण और सबकी वशीकरण स्वरूप है । इस प्रकार कामकलाका ध्यान करे । यह ध्यान अत्यन्त गु

श्रीक्रमेऽपि—

या सा मधुमती नाम्ना मायामोहनकारिणी । बाह्याभ्यन्तरयोगेन चिन्तनीयाञ्च तां शृणु ॥ त्रैलोक्यमेकरूपेण स्वात्मानमेकरूपिणम् । एकाकृतिस्वरूपेण सर्वां शान्तिं विचिन्तयेत् ॥ कामयेत् कामिनीं सर्वां देवीमीश्वररूपिणीम् । चिन्तयेत् सुन्दरीं देवीं सर्वव्यापककारिणीम् । ईकारः सर्वमन्त्रः स्यादपरं स्याच्चतुष्टयम् । विन्दुत्रयस्य देवेशि ! प्रथमे देवि ! वक्त्रके ॥ विन्दुद्वयं स्तनद्वन्द्वं हृदि स्थाने नियोजयेत् । हकारार्द्धकलां सूक्ष्मां योनिमध्ये विचिन्तयेत् ॥ तथा कामकलारूपां मदनांकुरगोचरे । उद्यदादित्यसङ्काशां सिन्दूराभां स्तनद्वये ॥ विंदुं सङ्कल्प्य वक्त्रेतु स्फुरद्दीपशिखां प्रिये । आधाराद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं तन्त्रमार्गेण भावयेत् ॥ कामविंदुरहं देवि तत्रस्थां परमेश्वरीम् । शिवशक्तिमयीदेवि तदधःस्थात् कुचद्वयम् ॥ तदधः सपरार्द्धंच चिद्रूपां परमां कलाम् । सापि

रखना चाहिये । श्री क्रममें भी कहा है, मधुमती नामक जो माया सब को मोह उत्पन्न करती है, बाहर और भीतर उसकी जिसरूपमें चिन्ता करनी चाहिये सो श्रवण करो । एकरूप में त्रैलोक्य, एकरूप में स्वी आत्मा और एकरूप में सर्वविध शान्ति की चिन्ता करनी चाहिये । उस ईश्वर रूपिणी देवी को यावतीय कामिनी रूपमें और सर्व व्यापक कारिणी सुंदरी रूपमें ध्यान करै । प्रथम देवीके वक्त्र में तीन विन्दु और हृदय में दो विन्दु स्वरू स्तन द्वन्द्व (दोनों छाती) नियोजित करके सूक्ष्म हकारार्द्ध काल योनि में चिन्ता करै । फिर मदनांकुर गोचर में कामकला रूपकी भावना करनी चाहिये । यह कामकला उदय हुए प्रभाकर (चद्रमा) की समान और सिंदूरवत् आभा युक्त है । हे प्रिये ! दोनों स्तन में विन्दु कल्पना करके वदन मण्डल में आधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यंत तत्र मार्गानुसार स्फूर्तिमती की दीप शिखारूप में चिंता करे । मैंही वह विन्दुरूप काम हूं । साक्षात् परमेश्वरी उस विंदु में विराजमान है । उसके अधोवर्त्ती दोनों कुच शिवशक्ति

कुण्डलिनी शक्तिः कामकलास्वरूपिणी ॥ सा शिखा वर्त्म गच्छन्ती भित्त्वा ग्रन्थिं चतुर्दश । प्रविश्य परमार्गन्तु सूक्ष्ममार्गस्वरूपिणी ॥ सापि च त्रिविधा सृष्टिर्ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणी । सञ्चिन्त्य साधक श्रेष्ठस्त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ एतत्ते कथितं देवि कामकलाविनिर्णयम् । गोप्तव्यं हि प्रयत्नेन यदि चेच्छेदात्मनो हितम् ॥

अथ कूर्ममुद्रा यथा । कालिकापुराणे ।

वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् । तथा दक्षिणतर्जन्यां वामांगुष्ठेन योजयेत् ॥ प्रोन्नतं दक्षिणांगुष्ठं वामस्य दक्षिणादिकाः । अंगुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्यच ॥ वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा । अधोमुखे चते कुर्य्यात् दक्षिणस्य करस्यच ॥ कूर्मपृष्ठसमं कुर्य्याद्दक्षिणस्य करस्य च । एवंविधः सर्व सिद्धिं ददाति पाणिकच्छपः । कु-

---

मय हैं उसके अधोभाग स्थित सपरार्द्ध चित् स्वरूपिणी परमा कला है । इस काही नाम कामकला स्वरूपिणी कुण्डलिनी शक्ति है । यह चौदह ग्रंथि भेद कर शिखावर्त्म में गमन और सूक्ष्ममार्ग रूप एवं परमार्थमें प्रवेश करती है। यही त्रिविधा सृष्टि और यही ब्रह्मा विष्णु स्वरूपिणी है । इसकी चिंता करने से साधक श्रेष्ठ होकर तीनों लोकोंको वशीभूत करसक्ता है । हेदेवि ! मैंने तुम्हारे निकट यह कामकलाका स्वरूप कीर्त्तन किया । अपने हित की कामना होने से इसका यत्न सहित गुप्त रखना चाहिये ।

कूर्म मुद्रा यथा—कालिका पुराण में लिखा है वाम हस्तकी तर्जनी में दक्षिण हस्तकी कनिष्ठ अंगुलि और दक्षिण हस्त की तर्जनी में वाम हस्त का अंगुष्ठ योजना (मिलाय) करके दक्षिण हस्त के अंगुष्ठ को ऊंचा कर वाम हस्त की मध्यमादि सब अंगुलि दक्षिण हस्त के क्रोड़ में, न्यस्त करे । फिर वाम हस्त की तर्जनी और अंगुष्ठ के मध्य भाग में दक्षिण हस्त की अनामिका और मध्यमा अधोमुख में संयोजित करके, दक्षिण हस्त का पृष्ठ देश कच्छपकी पीठके समान ऊंचा करना चाहिये । इसका नाम

यांतु नयनाग्रे तु निमील्य नयनद्वयम् । समं काय शिरो ग्रीवं कृत्वा स्थिरतरो बुधः । ध्यानं समारभेन्मन्त्री सर्वपाप विनाशनम् ॥

ध्यानं यथा स्वतंत्रे ।

देव्या ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वदेवोपसेविताम् । अञ्जनाद्रि निभां देवीं करालवदनां शिवाम् ॥ मुण्डमालावकीर्णांसां मुक्तकेशीं स्मिताननाम् । महाकाल हृदम्भोजे स्थितां पीन पयोधराम् ॥ विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शिवै सह । नागय ज्ञोपवीताञ्च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ॥ सर्वालङ्कारयुक्ताञ्च मुण्ड मालाविभूषिताम् । मृतहस्तसहस्रैस्तु काञ्चीवद्धां दिगम्बरीम् ॥ शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम् । रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपान प्रमत्तकाम् ॥ वह्न्यर्कशशिनेत्रान्तु वह्निविन्दुयुताननाम् । विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतं

पाणि कच्छप वा कूर्म मुद्रा है । इसके द्वारा सर्व प्रकार की सिद्धि संग्रहीत होती है । दोनों नेत्र निमीलित (बंदकर) करके नासाग्रमें इसका विधान करे एवं काय, शिर और ग्रीवा समभावमें रख, स्थिर तरहो ध्यानमें प्रवृत्त होवे । तो समस्त पाप नष्ट होते हैं ।

ध्यान यथा—स्वतंत्र में कहाहै, संपूर्ण देवता जिसकी सेवा करते हैं, उसी देवीका ध्यान कहता हूं । वह अंजन पर्वत सन्निभा, स्वप्रकाश युक्त, कराल वदना; परम मंगल स्वरूपिणी मुक्तिकेशी, स्मेरानना, मुण्डमाला; समलंकृत गलदेश युक्त, महाकालके हृत पद्ममें अधिष्ठिता पीन पयोधरा, विपरीत रतासक्त, शिवागणमें परिवेष्टता भयंकर दंष्ट्रा संपन्न सर्प यज्ञोपवीत में अलंकृता अर्द्धचंद्रकृत शेखर शालिनी सर्वालंकार भूषित, मुण्डमाला में अलंकृत, सहस्र सहस्र मृत हस्तिके काञ्ची दाम में विमण्डित, दिगम्बरा, शिवा कोटि सहस्र की समाभि व्याहारिणी योगिनियों से परिवारिता, रक्तपूर्ण मुखपद्मसे सुशोभिता, मद्यपान में मत्त भावापन्न, सूर्य, सोम और अग्निरूप तीन नेत्रमें विमण्डित हैं । उसका वदन मंडल शोणित संसर्ग. से

कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम् ॥ कर्णावतंसता नीतशवयुग्मभयानकाम् । घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नत पयोधराम् ॥ शवानां करसंघातैः कृतकांचीं हसन्मुखीम् । सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराभिः स्फुरिताननाम् ॥ घोररूपां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् । दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ॥ शवरूप महादेव हृदयोपरि संस्थिताम् । शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ॥ महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् । भजेत्रिजगतां धात्रीं स्मेराननसरोरुहाम् एवं संचिन्तयेत् कालीं धर्मकामार्थसिद्धिदाम् ॥

अथानयोरेकतरेण देवीं ध्यात्वा मानसोपचारैराराध्य पूर्व वज्जपहोमं कृत्वा नमस्कारं स्तोत्रपाठं च कुर्यात् ॥ यंत्र निर्माणार्थं पात्राणि यथा मुंडमालातंत्रे—

श्यामा और दिगम्बरी है। उसके कंठमें मुण्डमाला दोलायमान है। गिरती हुई रुधिर धारा में उसका कलेवर चर्चित होता है। उसके कर्ण में शव युग्मका भूषण है। उससे वह भयानक हुई है। उसके दंष्ट्रा घोर भावापन्नहैं पयोधर पीनोन्नत हैं। शव समूहके कर समूह में उसकी काञ्ची (कोंधनी) निर्मितहुई है। उसका वदन मण्डल सहास्य है। उसके दोनों सृक (गल्फू) से जो रुधिर धारा गिरती है जिसके द्वारा उसका आनन प्रस्फुरित (खिला) हुआ है। वह घोर रूपा, एवं रौद्र प्रकृति और श्मशान में वास करती है। वह शवरूप महादेव के हृदयोपरि अवस्थिति करती है। शिवागण भयंकर स्वर से उसके चारों ओर चीतकार करती है। वह महाकालके संग विपरीत रतमें मत्त है। वह त्रिजगत् की धात्री है। उसका वदन सरोरुह मृदु मंद हास्य में अलंकृत है। धर्म, कामार्थ सिद्धि दायिनी कालिका को इस रूप में चिंता करे। इन दोनों के एकतर ध्यान द्वारा देवीका ध्यान करके, मानस उपचार समूह में आराधना कर पूर्वकी समान जप होम सहित नमस्कार स्तोत्र पाठ करे।

ताम्रपात्रे कपालेवा श्मशाने काष्ठ निर्मिते । शनि भौम दिने वापि शरीरे मृतसम्भवे ॥ स्वर्णरौप्ये च लौहेवा चक्रमभ्यर्च्य यत्नतः ॥

स्वतन्त्रेऽपि ।

इत्थं विन्यस्तदेहः सन् चक्रराजं समालिखेत् ॥ सुवर्णे रजते ताम्रे पाषाणे वाष्टधातुषु ॥ इति ॥

अथ वहिः पूजार्थं वक्ष्यमाणगन्धाष्टकलिप्ते स्वर्णादिकुण्डगोलस्वयम्भू कुसुमागुरुलिप्ते वा स्वर्णरजतताम्र शलाकया विन्दुकण्ठकेन पुष्पेण वा मन्त्रमुच्चरणन् । विन्दुमाया युत त्रिकोणपंचवृत्ताष्टदलपद्मचतुरस्रं चतुर्द्वारात्मकम् यन्त्रराजं लिखेदिति सत्सम्प्रदाया वदन्ति । तथाच कालीतंत्रे—

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत् । ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥ ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः । वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेत् नूपुर युग्मकम् ॥

यंत्र निर्माणार्थ सम्पूर्ण पात्र यथा—मुंडमालातंत्रे—ताम्रपात्र में, कपाल में, श्मशान काष्ठ निर्मित पात्र में, शनिवा मंगलवार में मृत व्यक्ति के देह में सुवर्ण चांदी वा लोहे के पात्र में यत्न सहित यंत्रकी अभ्यर्चना करे । स्वतंत्र में भी कहा है इस प्रकार अंगन्यास करके सुवर्ण, रजत, ताम्र, पाषाण, अथवा अष्टधातु में यंत्रराज अंकित करे ॥

अनंतर वहिः [बाहिरी] पूजा के लिये निम्न लिखित अष्टविध गंध से विलिप्त प्रदेश में सुवर्ण, रजत (चांदी) वाताम्र निर्मित शलाका अथवा विंदु कण्टक पुष्पद्वारा मंत्रोच्चारण सहित विंदु और मायावीज युक्त त्रिकोण पंचवृत्त अष्टदल पद्म चतुरस्र और चतुर्द्वार युक्त यंत्रराज अंकित करे । सत् संप्रदायगण इसप्रकार कहते हैं । तथा कालीतंत्र में भी लिखा है, आदि में त्रिकोण विन्यस्तकरके उसके बाहर त्रिकोण विन्यस्त करना चाहिये । अनंतर उत्कृष्ट विधान से तीन त्रिकोण अंकित करे । तदनंतर गोलाकार लिखकर अष्टदल लिखना चाहिये । विहित विधान में वृत्त अंकितकर दो नूपुर

स्वतन्त्रेऽपि ।

स्वयम्भू कुसुमं कुण्डगोलोत्थं रोचनागुरु । काश्मीरमृगनाभी च शिह्लञ्च चन्दनद्वयम् ॥ एष गन्धः समाख्यातः सर्वदा चण्डिकाप्रियः । एतेन गन्धयोगेन योनिचक्रं समालिखेत् ॥ योनिद्वयं ततः कुर्य्यात् कोणषट्कं ततः प्रिये ! । ततश्चाष्टदलं भूमिं चतुर्द्वारैः समन्विताम् ॥ एतत्ते कथितं चक्रमत्र पुष्पाञ्जलिं किरेत् ॥

कुमारीकल्पेऽपि ।

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत् । वहिस्त्रिकोणमालिख्य कोणषट्कं लिखेद्बहिः ॥ मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम् । षट्कोणात् तु वहिर्वृत्तं ततोऽष्टदलकं लिखेत् ॥ वहिर्वृत्तेन संयुक्तं नूपुरैकेण संयुतम् । ज्ञात्वैवं मुक्तिमाप्नोति यन्त्रराजं न संशयः ॥ एतत् तु विलिखेत्ताम्रे कुण्डगोलविलेपिते । स्वयम्भू कुसुमैर्युक्ते कुंकुमागुरुसेविते ॥

(पृथ्वीपर) लिखे स्वतन्त्र में भी इसीप्रकार लिखा है, यथा—स्वयम्भू कुसुम गोरोचन, अगरु काश्मीर (केशर) मृगनाभि, शिह्ल (सिह्लोजय) रक्त चंदन और श्वेत चदन, *इनकाही नाम गध है । यही सर्वदा चंडिका को* प्रिय है । इस गधयोग मेंही योनिचक्र लिखना चाहिये । फिर दो योनि लिखकर कोणषटक् पातन करै । अनंतर अष्टदल और चतुर्द्वार समन्वित भूमि लिखै । तुम्हारे निकट यह चक्र वर्णन किया । इस चक्रमेंही पुष्पाजलि विकरण करे । *कुमारी कल्प में भी कहा है, प्रथम त्रिकोण अंकित करके* उसके बाहर त्रिकोण अंकित करै । वाहिरी त्रिकोण लिखकर वाहिरकोण षटक् संयुक्त करना चाहिये । मध्य में बीज और माया विभूषित बिंदुचक्र लिखकर षट्कोण से वाहिरे अष्टदल और वृत्त संयुक्त करना चाहिये । इस प्रकार वहिर्वृत्त और भू पुरैक समन्वित यन्त्रराज जानसकने से निसंदेह मुक्ति लाभ होती है । स्वयम्भु कुसुम सहित कुंकुम और अगर स-

ननु उक्तं पञ्चदशकोणं कथमुक्तं स्वतन्त्रादि तन्त्रवि-रोधात् । न च वाच्यं कालीतन्त्रमतमिति तत्रैव-पूजार्थं षट्कोणपदश्रुतेः । तद्यथा ।

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् । विप्र-चित्तान्तु संपूज्य वाहिः षट्कोणके बुधः ॥

इति वहिरुपादानं व्यर्थमेव । अन्तः षट्कोणा भावात् वचनान्तरदर्शनाच्च । तथा कालीतन्त्रे ।

पंचशक्तिं समालिख्य-अधोवक्त्रां सुलक्षणाम् ॥

कालिकाश्रुतौ च ।

त्रिकोणं त्रिकोणं नवकोणं पद्मम् ।

कुलसम्भवेऽपि ।

त्रिकोणं विन्यसेत् पद्मे पुनश्चापि त्रिकोणकम् नवकोणं पुनस्तत्र तन्मध्ये स्थापयेत् शिवाम् ॥

तस्मात् षट्कोणमत्र शक्त्यात्मकामिति । ननु एवं त्रिकोण

मन्वित एव कुण्ड गोल विलिप्त ताम्रपात्र में उल्लिखित यंत्र राज लिखना चाहिये । यदि कहो कि यहांपर किस प्रकार से पन्द्रह कोण का उल्लेख किया है ? इसमें स्वतंत्रादि के सहित विरोध होता है । तो यह कालीतंत्र का मत है । इस प्रकार नहीं कहसकते । क्यों कि कालीतंत्र में ही पूजा के समय षट्कोण शब्द प्रयोजित हुआ है। यथा–ज्ञानवान् साधक बाहरके षट्कोण में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, और विप्रचित्ताकी पूजा करके, इत्यादि । प्रस्तावित स्थल में वहिस्थ समस्त उपादान व्यर्थहुआजाता है । क्योंकि अंत षट्कोण का अभाव और वचनांतर भी दिखाई देता है । कुलसंभव में भी कहा है त्रिकोण त्रिकोण नवकोण इत्यादि । पद्म में त्रिकोण विन्यस्त करके पुनर्वार त्रिकोण अंकित करना चाहिये । पुनर्वार नवकोण पद्म इत्यादि लिखकर तिसमें शिवा का स्थापन करे । इसीकारण इस स्थान में षट्कोण शक्त्यात्मक समझना चाहिये यदि

इयान्तर्गतभैरवीचक्रवत् नवकोणं मतान्तरं स्यात् नैवं तदा तत्रैव पूजायां महाविरोधः । तद्यथा कुलसंभवे ।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् । विप्रचित्तां न्यसेच्चैव वहिः षट्कोणके बुधः ॥ उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां पर-त्रिकोणके न्यसेत् । नीलां घनां वलाकाञ्च तथैवापरके त्रिके ॥ मात्रां मुद्रां मिताञ्चैव परत्रिकोणके बुधः ॥

एतदुक्तं भवति षट्कोणावरणांते अपरत्रिकोणके त्रया वरणम् तथापरे त्रिकोणत्रयं अपरं त्रयं यजेदित्यस्य अर्थो भवन्मते तु त्रिकोणं नास्त्येव त्रिकोणशब्दस्य केवल त्रिकोणात्मके शृङ्गाटके शक्तित्वात् । न च वाच्यं नवयोनेर्वाह्यकोणाष्टकस्यैकैककोणपदशक्तिरिति । तत्रिपञ्चारपीठानुपपत्तेः समग्रचक्र पूजाभावाच्च । तस्मात् नवयोन्यात्मकमिति भावः । वस्तुतस्तुस्वतन्त्रादितंत्रभेदात् षट्कोणांतर्गतत्रिकोणात्मकमपि यन्त्रान्तरं भवति । यतः षट्कोणशब्दस्यपारिभाषिके शक्तिरन्यत्र लक्षणा । नहि कोऽपि दृष्ट

यहहै, तो दो त्रिकोणके अन्तर्गत भैरवी चक्रकी समान नवकोण मतान्तर हुआजाताहै । किन्तु यह नहींहै क्योंकि इस प्रकार होनेसे पूजाके अन्तमें महाविरोधि उपस्थित होताहै । यथा–कुल सम्भवमें कहाहै, बुद्धिमान साधक वहिः षट कोणको काली, कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला, विरोधिनी और विप्रचिन्ताको न्यस्त करके अपर त्रिकोणमें उग्रा, उग्रप्रभा, और दीप्ताको एवं अन्यतर त्रिकोण मेंनीला, घना, वलाका, और अपर त्रिकोणमें मात्रा, मुद्रा और मिताको विन्यस्त करै । तो कहा जायगाकि षट् कोणके आवरणांतमें अपर त्रिकोण तीन आवरणमालहैं । जोहो, यहां नव योन्यात्मक समझना चाहिये । वस्तुगत्या, स्वतंत्रादि तन्त्रभेद में इस प्रकार कहा है षट् कोण के अन्तर्गत त्रिकोणात्मक यन्त्रान्तर भी होसकता है । क्योंकि षट्कोण शब्द का अर्थ अपरिभाषक--अर्थ शक्ति है । अन्यत्र लक्षणा समझनी

परिकल्पनां विहाय अदृष्टं कल्पयति यत् तु कालीतन्त्रे षट्कोणमुक्तं तत् तु तन्मते बोद्धव्यम् । अन्यत्र कल्पने माना भावात् । न चैकदैवतमन्त्रे यन्त्रद्वयकल्पने विरोध इति वाच्यम्।

तारा तन्त्रे ।

एकदैवतमन्त्रस्य विविधयन्त्रदर्शनात् । एतत्तु तस्याः पूजायामग्रे लिखिष्यामः ।

अथ स्वर्णादिसिंहासने पुरतो यथोक्तयन्त्रं संस्थाप्य तदुपरि पूजयेत् यथा। ह्रीं आधारशक्तये नमः ओं प्रकृत्यै नमः। ओं कूर्माय नमः। ओं अनन्ताय नमः । लं पृथिव्यै नमः । ओं सुधाम्बुधये । ओं मणिद्वीपाय । ओं चिन्तामणि गृहाय। ओं श्मशानाय । ओं पारिजाताय । ओं रत्नवेदिकायै । ओं मणिपीठाय । दिक्षु ओं नमो देवेभ्यः परितः ओं वहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यः ओं शवमुण्डेभ्यः । पूर्वादिचतुर्दिक्षु ओं धर्माय ओं ज्ञानाय ओं वैराग्याय ओं ऐश्वर्य्याय । वह्न्यदि दिक्षु ओं अधर्माय ओं अज्ञानाय ओं अवैराग्याय ओं अनैश्वर्य्याय । मध्ये ओं अनन्ताय ओं पद्माय अं अर्कमण्डलाय उं सोममण्डलाय मं वह्निमण्डलाय सं सत्वाय रं रजसे तं तमसे आं आत्मने अं अन्तरात्मने पं परमात्मने ह्रीं ज्ञा-

---

चाहिये । कोई व्यक्ति भी दृष्टपरि कल्पना त्याग करके अदृष्ट कल्पना में प्रवृत्त नहीं होता । कालीतंत्र में जो षणकोण शब्द लिखागया है, वह उसकाही मत समझना चाहिये । अन्यत्र कल्पना करने से मानाभाव संघटित होता है । एक दैवत मंत्र में दो यंत्र कल्पना करने से विरोध होती है यह भी नहीं कहसक्ते । क्योंकि तारातंत्र में एक दैवतयंत्र के अनेकयंत्र लिखेगये हैं, यह विषय उसकी पूजा में पीछे लिखाजायगा ॥

अनन्तर सुवर्णादि सिंहासन के पुरोभाग में यथा शक्ति यंत्र स्थापन करके उसके ऊपर पूजा करनी चाहिये । यथा—ह्रीं आधार शक्तिको नम-

नारमने। पत्रमूले पूर्वादितः ओं इच्छायै ओं ज्ञानायै ओं क्रियायै ओं कामिन्यै ओं कामदायै ओं रत्यै ओं रतिप्रियायै ओं आनन्दायै। कर्णिकायां ओं मनोन्मन्यै। मध्ये ऐं परायै ऐं अपरायै ऐं परापरायै ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। इति पीठपूजां कुर्य्यात्। नमोऽन्तेन सर्वत्र। ततः कलसस्थापनं कुर्य्यात्। तत्र लक्षणमाह तन्त्रान्तरे

कलाकलां गृहीत्वा तु देवानां विश्वकर्मणा। निर्मितोऽयं सुरैर्यस्मात् कलसस्तेन उच्यते॥

पद्मपादाचार्य्यास्तु कला सेवते इति कलसः।

सौवर्णं राजतं वापि मार्त्तिकं वा यथोदितम्। क्षालयेदस्त्रमंत्रेण कुम्भं सम्यक् सुरेश्वरि! इति स्वतंत्रे।

अथ प्रयोगः स्ववामे बिंदुषट्कोणचतुरस्रं कृत्वा सामान्योदकेनाभ्युक्ष्य तत्र आधारशक्तये नमः इति पूजयेत् ततो नम इति क्षालिताधारं तत्र निधाय मं वह्निमण्डलाय दश

स्कार है। ओं प्रकृतिको नमस्कार है। ओं कूर्मको नमस्कार है इत्यादि विधान से पीठ पूजा करनी चाहिये। सर्वत्रही नमस्कार शब्द प्रयोग करना चाहिये। फिर कलस स्थापन करे। तंत्रान्तरमें उसका लक्षण निर्देश किया है यथा—विश्वकर्मा देवताकी कला ग्रहण करके यह निर्माण किया है इसीलिये इसका नाम कलस हुआ है। पद्म पादाचार्य के मत में कला सेवन करती है, इस अर्थ में कलस है। सुवर्ण, चांदी अथवा मृत्तिका का निर्मित कलस यथोक्त विधान से ग्रहण करके "हे सुरेश्वरि!" अस्त्र मंत्र में प्रक्षालित करे॥

प्रयोग यथा—अपने वामभाग में विन्दु षट्कोण चतुरस्र (चारोंओर) लिखकर सामान्य जल द्वारा अभ्युक्षित पूर्वक उसमें आधार शक्तिको नमस्कार है इसप्रकार कहकर पूजा करे। अनन्तर नमः शब्द प्रयोग सहित क्षालित आधारको तिसमें स्थापन करके "मं" इत्यादि मंत्रसे विशेष प्रकार

कलात्मने नम इति संपूज्य फड़िति चालितघटं रक्तवस्त्र माल्यादिभिरलंकृतं ओं इति देवीबुद्ध्या मण्डलोपरि निधाय अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम इति संपूज्य मूलमुच्चरन् कारणेन तं संपूज्य द्रव्यैः उं सोममण्डलाय षोड़शकलात्मने नम इति दत्त्वा फड़िति दर्भैर्द्रव्यं सन्ताड्य हुं इत्यवगुण्ठ्य मूलेन वीक्ष्य नमः इत्यभ्युक्षणं कृत्वा मूलेन गन्धमादाय ओमिति मंत्रेण कुम्भे पुष्पं दत्त्वा शापमोचनं कुर्य्यात् । तदुक्तं स्वतंत्रे ।

ततश्च कारणं द्रव्यं समानीय घटेस्थितम् । वेष्टितं रक्तवस्त्रेण रक्तमाल्येन भूषितम् ॥ वामभागे महेशानि! मण्डलं चतुरस्त्रकम् । ततः संस्थापयेद्भक्त्या देवीबुद्ध्या वरानने ॥ मण्डले कलसे द्रव्ये वह्न्यर्कशशिमण्डलम् ॥ पूजयेदित्यर्थः

भावचूड़ामणौ ।

स्ववामभागे षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् । लिखित्वा

पूजा करनी चाहिये । इसके उपरांत "फट्" शब्दसे मचालित घटको रक्त वस्त्र और मालादि द्वारा अलंकृत करके ओं इति मंत्र से देवी बुद्धिमें मंडल के ऊपर स्थापन और "अर्कमण्डलाय" इत्यादि मंत्र से विशिष्ट विधानद्वारा पूजा करै, फिर मूलोच्चारण सहित कारण की सहायतासे पूजा करके "उं" इत्यादि मंत्रसे दान, फट् शब्दसे दर्भ द्वारा द्रव्य संताडन, हूं शब्दसे अवगुण्ठन (परदा) मूल मंत्र से वीक्षण "नमः" शब्द से अभ्युक्षण, और मूल की सहायता से गंध ग्रहण पूर्वक ओं इति मंत्र से कुम्भ में पुष्प दान करने के पीछे शाप मोचन करे । स्वतंत्र में कहा है, यथा—अनंतर कारण और द्रव्य आनयन पूर्वक घटको रक्तवस्त्रमें वेष्टित और रक्तमाल्य में भूषितकरके वामभाग के चतुरस्त्र मण्डल में देवी बुद्धि से भक्ति सहित स्थापन करना चाहिये । मण्डल कलस और द्रव्य इन सब में अग्नि सूर्य और चंद्र मण्डल की पूजा करै ॥

भावचूडामणि में कहा है, अपने वामभाग में षट्कोण में और तिसके म-

तत्र कुम्भं वै सौवर्णं राजतञ्च वा ॥ ताम्रं भूमिमयं वापि यद्वा लौहविवर्जितम् ।

तन्त्रान्तरे ।

आधारे स्थापयेन्मन्त्री सौवर्णं वाथ राजतम् । कांस्यजं मृण्मयं वापि घटमव्रणशालिनम् ॥ सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदं स्मृतम् । कांस्यं कान्तिकरञ्चैव मृण्मयं पुष्टिदं भवेत् ॥

अथ काव्यशापविमोचनं कुर्य्यात् तदुक्तं ।

कुमारीतन्त्रे ।

अन्यच्च शृणु देवेशि ! यथा पानादिकर्मणि । दोषो न जायते देवि ! तान् वै मन्त्रान् शृणुष्व मे ॥ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् । कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ सूर्य्यमण्डलसम्भूते ! वरुणमण्डलसम्भवे !

ध्य ब्रह्मरन्ध्र लिखकर उसमें सुवर्णमय, रजतमय, ताम्रमय अथवा मृत्तिकामय कुम्भ [घट] स्थापन करै । लोह कुंभ का त्याग करना चाहिये । तंत्रान्तर में कहा है, साधक आधार में सुवर्ण, रजत, [चांदी] कांस्य [कांसी] मृत्तिका इन सबके अन्यतर निर्मित ब्रह्महीन कलस स्थापन करै । सुवर्ण कुम्भ स्थापन में भोग लाभ होता है । रजत कुम्भ से मोक्ष होती है । कांसी के कुम्भ से कांति लाभ होती है । और मृत्तिका कुम्भसे पुष्टि विहित होती है इसके उपरान्त शुक्र शापविमोचन करना चाहिये । कुमारीतंत्र में कहा है यथा--हे देवेशि ! इस समय जिस में पानादि करके दोषोत्पत्ति नहींहोसक्ती वही सब मंत्र कहता हूं, श्रवण करो । परब्रह्म अद्वितीय स्वरूप और स्थूल सूक्ष्ममय हैं । उनका किसी काल में क्षय व ध्वन्श नहीं होता । मैं उनकी सहायतासे ही तुम्हारी कच जनित [कचको मारने]की ब्रह्महत्या दूर करूंगा । हे देवि ! तुम सूर्य्य मण्डल से उत्पन्न और वरुण मण्डल से संभूत

क्षमावीजमये देवि ! शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ देवानां प्रणवो वीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि । तेन सत्येन देवेशि ! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥एवं मन्त्रत्रयेणैव अभिमन्त्र्य सुरां शुभाम्। प्रदद्यात् कालिकायै च ततो नैवेद्यभुग्भवेत् ॥

इति मन्त्रत्रयं द्रव्योपरि त्रिर्जपेत् । ओं रां रीं रूं रैं रौं रः ब्रह्मशापविमोचनं द्रव्योपरि दशधा जपेत् । ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुराकृष्णशापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा । इति कृष्णशापविमोचनं दशधा जपेत् ।

यथोत्तरतन्त्रे—

हंसः शुचि सद्वसुरन्तरीक्षं सद्धोता वेदीषदतिथिर्दूरोनसत् नृपद्वर दृशत् सद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा आत्रिजा ऋतं बृहत् । इति ऋचा वारत्रयं द्रव्यमभिमन्त्र्य तदुपरि आनन्दभैरव्यौ ध्यायेत् । यथा

सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् । अष्टादशभुजैर्युक्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥ अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मप-

---

हुई हो । तुम्हीं क्षमा वीजमयी हो । शुक्र शाप से विमुक्त होओ। प्रणव यदि देवतागणों का ब्रह्मानन्दमय बीज है तो उसी सत्य बल से ब्रह्महत्या दूर होवे । इस प्रकार मन्त्रत्रय की सहायता से सुराका अभिमंत्रण करके वह देवी कालिका को प्रदर्शन करै । फिर नैवेद्य भोजन करना चाहिये । द्रव्यके ऊपर इस प्रकार मन्त्रत्रय जप करे । अनन्तर ओं रां इत्यादि ब्रह्मशाप, विमोचन, मंत्र द्रव्य के ऊपर दशवार जपना चाहिये। तदुपरांत "ह्रीं श्रीं" इत्यादि कृष्णशाप विमोचन मंत्र दशवार, जपकरे। जैसा कि उत्तरतंत्र में कहा है "हंसः शुचि" इत्यादि ऋक्द्वारा,तीनवार द्रव्य का अभिमंत्रण करके उसके ऊपर आनंद और भैरव का ध्यान करै । यथा जो करोड़ सूर्य की समान प्रभायुक्त और करोड चंद्रकी समान अतिशय शीतल हैं जो अष्टादश (अठारह) भुजायुक्त, पंचवदन और त्रिलोचन हैं,

ब्जोपरिस्थितम् । वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥ कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् । पाशांकुशधरं देवं गदामूषलधारिणम् ॥ खड्गखेटकपट्टीशं मुद्गरं शूलदन्तकम् । विचित्रखेटकं दण्ड वरदाभयपाणिनम् ॥ लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः ॥

एवं ध्यात्वा हस च म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वषट् इत्यानन्दभैरवं त्रिः संपूज्य आनन्दभैरवीं ध्यायेत् यथा—

भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोट्यानन्नप्रभाम् । हेमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्॥ अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम्। प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीं॥

एवं ध्यात्वा ह स च म ल व र पीं सुधादेव्यै वौषट् इति आनन्दभैरवीं संपूज्य द्रव्योपरि त्रिकोणचक्रं विलिख्य

जो अमृतसागर में विराजमान और ब्रह्मरूप पद्म के ऊपर अवस्थिति करते हैं, जो वृषभवाहन, नीलकंठ और सब प्रकार के भूषणों से भूषित हैं, जो कपाल और खट्वांग धारण एवं घंटा और डमरू बजाते हैं, जो पाश, अंकुश, गदा, मूशल, खड्ग, खेटक, पट्टिश, मुद्गर, शूल, विचित्रखेटक, दण्ड, वर, अभय यह सब धारण करते हैं, उन्हीं लोहित वर्ण देव देवेशकी भावना करे । इस प्रकार ध्यान करके तीनवार ह स इत्यादि मंत्रोच्चारण सहित आनन्द भैरवकी भली भांति पूजा करे । फिर आनन्द भैरवी का ध्यान करना चाहिये । यथा—सुधा देवीकी भावना करे उसके आनन (मुख) की प्रभा करोड करोड चंद्रमाकी समान है । उसका वर्ण हेम और कुन्दकी समान धवल भावसम्पन्न है । वह पञ्चवक्त्रा, त्रिलोचना, अष्टादश भुजा युक्त, सर्वानंद करनेमें उद्यत, हास्यमुखी विशालाक्षी और देव देवेशकी संमुखी है । इस प्रकार ध्यान और 'ह, स' आदि मंत्र में विशेष प्रकारसे पूजा करके द्रव्य के ऊपर त्रिकोण चक्र अंकित और उसमें त्रिपंक्ति क्रम से 'अ' से विसर्ग पर्यंत सोलह स्वर, क से त पर्यंत १६ ओ, थ, से स पर्यंत सोलह

तत्र त्रिपंक्तिक्रमेण आदि १६ कादि १६ थादि १६ । हं लं क्षं मध्यलसितं विलिख्य शिवशक्त्योः समायोगाद्द्रव्यमध्ये अमृतत्वं विचिन्त्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य वं इति वरुणबीजं मूलमंत्रं चाष्टधा तदुपरि जप्त्वा देवतामयं भावयेदिति द्रव्यशुद्धिः । तदुक्तं स्वतंत्रे ।

ततश्च भावयेद्द्रव्ये मध्येऽलक्तनिभं प्रिये ! । अकथादिभिस्त्रिपङ्क्त्या तु हलक्षं मध्यमण्डितम् ॥ पूर्वोक्तयोनिमुद्रायां शिवशक्त्योः समागमम् । अमृतं चिंतयेद्द्रव्यमष्टधाप्यमृतं जपेत् ॥ अष्टधा मूलमन्त्रश्च जपेद्धृत्वा घटं ततः । एतत्तु कारणं देवि ! सुरसङ्घनिषेवितम् ॥ अतएव तस्य नाम सुरेति भुवनत्रये । अस्य गन्धः केशवस्तु तेन गन्धेन कौलिकः ॥ सुरया पूजयेत् देवीं दक्षिणां कालिकां शुभाम् । ततः शंखं वीरपात्रं स्थापयेन्मध्यभागतः ॥ श्रीविद्योक्तक्रमेणैव ततः पूजां समारभेत् ॥

व्यंजन वर्ण स्थापन पूर्वक उसमें 'हं, लं, और क्षं लिखना चाहिये । फिर शिव और शक्तिके समायोग द्रव्यमें अमृतत्वकी चिन्ता कर धेनु मुद्रा द्वारा अमृती करणांतर 'वं, इति वरुण बीज के सहित मूलमंत्र आठबार उसके ऊपर जप कर देवता की भावना करै । इसका नामही द्रव्य शुद्धि है । स्वतंत्र में यही कहा है । यथा—

हे प्रिये ! अनन्तर द्रव्य में अलक्त (लाख) की समान प्रभायुक्त त्रिपंक्ति क्रम में 'अ, क, और थादि द्वारा अलंकृत मध्य मंडित " ह, ल, क्ष," की भावना करै और पूर्वोक्त योनिमुद्रा में शिव और शक्ति के समागम और द्रव्यको अमृतरूप में चिन्ता करके आठबार उसी अमृतका जप करना चाहिये । संगही संग आठबार मूलमंत्रका जपकरै हे देवि ! संपूर्ण देवतागणही इसकारण की सेवा करते हैं इसीलिये इसका नाम तीनों भुवनों में सुरा कहकर विख्यात हुआ है । स्वय केशव इसकी गंध है अनंतर मध्यभागमें शंख और वीरपात्र स्थापन करके श्रीविद्या कथित क्रमानुसार पूजा करनी चाहिये।

समयाचारेऽपि।

सामान्यार्घ्यं ततः कृत्वा पयसा साधकोत्तमः। तज्जले-मण्डलं कृत्वा पात्राणि स्थापयेदथ॥

कुमारीतन्त्रेऽपि।

ततोऽर्घ्यं कारयेन्मन्त्री तया नार्य्या सुवेशया। अर्घ्यद्रव्यमर्घ्य पात्रे निःक्षिपेद्यत्नतः सुधीः॥ कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं स्वयम्भू कुसुमं तथा। नाधर्मो जायते देवि! महामंत्रस्य साधने॥

मुण्डमालायाञ्च।

रक्तचन्दनविल्वादिजवाकुसुम वर्त्तरैः। अर्घ्यं दत्त्वा महेशानि! सर्वकामार्थसिद्धये॥ सुरया चार्घ्य दानेन योगिनीनां भवेत् प्रियः। महायोगी भवेद्देवि! पीठप्रक्षालितैर्जलैः॥ स्वयम्भू कुसुमे दत्ते भवेत् षट्कर्म भाजनः सुशीतलजलैर्वापि कस्तूरीकुंकुमान्वितैः॥ कुण्डगोलोत्थवीजैर्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्

समयाचार में भी कहा है. अनन्तर जल द्वारा सामान्य अर्घ्य प्रदान करके साधकोत्तम उस जलमें मंडल विधान पूर्वक संपूर्णपात्र स्थापनकरै। कुमारीतंत्र में भी कहा है। अनन्तर साधक उस सुंदर वेशधारिणी रमणी द्वारा अर्घ्य विहित करके यत्न पूर्वक अर्घ्यपात्र में अर्घ्य स्थापन करै। हे देवि! महामंत्र का साधन करने से कभी अधर्म संघटित नहीं होता। मुण्डमाला में भी कहा है, हे महेशानि! रक्तचंदन, विल्व, और जवादि कुसुमका अर्घ्य दान करने से सब प्रकार की कामना और अभीष्ट सिद्ध होता है। सुराअर्घ्य स्वरूपदान करने से साधक योगिनी गणों का प्रिय होता है। हे देवि! पीठ प्रक्षालित जल में महायोगी होसकता है। स्वयम्भू कुसुमदान करने से षट्कर्म भाजन होता है। कस्तूरी और कुंकुमांकित सुशीतल जल और कुंड गोल

जवादिना कृतार्घ्ये तू पूर्वशोधितद्रव्यं किञ्चित् क्षिपेत् ॥

तदुक्तं श्रीक्रमे ।

अर्घ्य विधौ । पूर्वन्तु शोधितं द्रव्यं गुते नैव तु संक्षिपेत्।

अथवा ताराप्रकरणे च ।

शंखस्थितं तोयपूर्णं जवापुष्पञ्च वर्वरम् । चन्दनं चार्ककुसुमं शुद्धाञ्चैवापराजिताम् ॥ आदानञ्च विशेषेण नित्यपूजाक्रमः स्मृतः ॥ अथात्मयन्त्रयोर्मध्ये ।

ईकारगर्भत्रिकोणकवृत्त पट्कोण चतुरस्रं विलिख्य चतुरस्रे पूं पूर्णशैलाय नमः । उं उड्डीयमानपीठायनमः जां जालन्धरपीठाय नमः कां कामरूपपीठाय नमः इति संपूज्य षट्कोणे षडङ्गानि मूलखण्डत्रयेण त्रिकोणाग्रं दक्षोत्तरं संपूज्य मध्ये आधारशक्तिं संपूज्य त्रिकोणवृत्तषट्कोणभूषिताधारं तत्र संस्थाप्य नम इति सामान्यार्घ्योदकेनाभ्युक्ष्य तत्र वह्नेर्दशकलाः पूजयेत् । यं धूमार्चिषे नमः । वं उमायै नमः । लं

समुद्भूत वीज प्रदान करने से सर्व सिद्धीश्वरत्व लाभ होता है । जवादि कुसुमसे अर्घ्य विधान करके पूर्व शोधित द्रव्य किंचित् निक्षेप करै श्रीक्रम में अर्घ्य विधि में यही कहा है । यथा, पूर्व शोधित द्रव्य गुप्तानुसारही निक्षेप करै । अथवा ताराप्रकरण में कहा है । यथा- शंख स्थित जल पूर्ण जवा पुष्प, बर्बर चन्दन, अर्ककुसुम, विशुद्ध अपराजिता [विष्णु क्रांता] यह सम्पूर्ण द्रव्य नित्य पूजा में प्रदान करै ॥

अनन्तर आत्मयंत्र में ईंकार गर्भित त्रिकोणक वृत्त पट्कोण और चतुष्कोण लिखकर उस चतुष्कोण में "पूं पूर्ण शैलाय" इत्यादि कहकर विशिष्ट विधान से पूजा करनी चाहिये। फिर मूलखंड त्रयानुसार षडंग त्रिकोणाग्र और मध्य में आधार शक्ति की पूजा करके उसमें त्रिकोणवृत्त और पट्कोण भूषित आधार स्थापनान्तर "नम„ शब्द प्रयोग सहित सामान्य अर्घ्य सलिल से अभ्युक्षण करके उसमें अग्निके दश कला की पूजा करै।

ज्वलिन्यै नमः । वं ज्वालिन्यै नमः । शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः । षं सुश्रियै नमः । सं स्वरूपायै नमः । हं कपिलायै नमः । ळं हव्यवहायै नमः । क्षं कव्यवहायै नमः इति संपूज्य मं वन्हिमण्डलाय दश कलात्मने अर्घ्य पात्रासनाय नमः । इति संपूज्य षट्कोणे षड्ङ्गं मध्ये व्यस्तमूलेन देवीम् इष्ट्वा कपालादिपात्रं फड़िति्क्षालितं तत्राधारोपरि संस्थाप्य सूर्य्यमण्डलं तत्र यजेद्यथा । कं भं तपिन्यै खं वं तापिन्यै गं फं धूम्रायै घं पं मरीच्यै ङं नं ज्वलिन्यै चं धं रुच्यै छं दं सुषुम्नायै जं थं भोगदायै झं तं विश्वायै ञं णं वोधिन्यै टं ढं धारिण्यै ठं डं क्षमायै नमोऽन्तेन संपूज्य अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्घ्य पात्राय नमः। इतीष्ट्वा त्रिकोणवृत्तषट्कोणं पात्रमध्ये विलिख्य समस्तव्यस्तमन्त्रेण त्रिकोणं संपूज्य वमिति वरुणवीजं मूलमंत्रं विलोममातृकाञ्च पठित्वा घटस्थकारणामृतेन त्रिभागमर्घ्यं संपूर्य्य शेषं जलेन पूरयेत् । ततो दूर्वाक्षतरक्तचन्दनजवार्क श्वेतापराजिताकरवीरविल्ववर्वरीकुन्दसुगन्धिद्रव्याणि शुद्धि मीनमुद्राकुण्डगोलादिकञ्च संशोध्य तत्र निःक्षिप्य सोममण्डलं

यथा-"यंधूम्रार्चिषे, इत्यादि फिर षट्कोण में षडंग और मध्य में देवीकी पूजाकरके " फट्,, शब्द से प्रक्षालित कपालादि पात्र उस आधारके ऊपर स्थापन पूर्वक उसमें सूर्यमण्डलकी पूजा करे । यथा -"कं भं तपिन्यै,, इत्यादि बिधान से पूजा करके पात्र में त्रिकोणवृत्त और षट्कोण लिखकर समस्त और व्यस्त मंत्र से त्रिकोणकी पूजा एव वरुणवीज. मूलमंत्र और बिलोम--मातृका पाठकरके घटस्थ कारणामृत द्वारा त्रिभाग्य अर्घ्य संपूरण और अवशिष्ट जल द्वारा पूर्ण करना चाहिये । अनन्तर दूर्वा, अक्षत रक्तचंदन जवा, अर्क, पुष्प, श्वेतअपराजिता, करवीर, विल्व, वर्वरी, कुन्द और संपूर्ण सुगंधि द्रव्य शुद्धि और मीन मुद्रा संशोधन और उसमें निक्षेप करके सोम

पूजयेद्यथा । अं अमृतायै नमः आं मानदायै नमः इं पुषायै नमः ईं तुष्ट्यै नमः उं पुष्ट्यै नमः ऊं रत्यै नमः ऋं धृत्यै नमः ॠं शशिन्यै नमः ऌं चन्द्रिकायै नमः ॡं कान्त्यै नमः एं ज्योत्स्नायै नमः ऐं श्रियै नमः ओं प्रीत्यै नमः औं अङ्गदायै नमः अं पूर्णायै नमः अः पूर्णामृतायै नमः उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अर्घ्यपात्रामृताय नमः इति संपूज्य पूर्ववद्यन्त्रं कारणैः लिखित्वा त्रिकोणत्रिरेखायां अं १६ कं १६ थं १६ मध्ये हं लं क्षं विलिख्य मूलखण्डत्रयेण त्रिकोणमिष्ट्वा षट्कोणे षडङ्गानि संपूज्य ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इत्यनेनांकुशमुद्रया सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य आनन्दभैरवभैरव्यौ पूर्वोक्तक्रमेण संपूज्य पूर्वादिक्रमेण पञ्चरत्नं यजेद्यथा । ग्लुं गगनमण्डलेभ्यः स्लुं स्वर्गरत्नेभ्यः प्लुं पातालरत्नेभ्यः म्लुं मर्त्यरत्नेभ्यः न्लुं नागरत्नेभ्यः इति नमोऽन्तेन पूजयेत् । अथैषां भेदोऽपि लिख्यते ।

मण्डलकी पूजा करनी चाहिये । यथा-"अं अमृताय,, इत्यादि । अनन्तर पूर्वकी समान कारण में यन्त्र लिखकर त्रिकोण त्रिरेखा में यथा क्रमसे अं १६, कं १६ थं १६ और मध्य में ह ल क्ष स्थापित करके तीन मूलखंड में त्रिकोण की पूजा करनी चाहिये । अनन्तर षडंग पूजा करके गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी इनके जलमें सन्निधि कर अंकुश मुद्राकी सहायता से सूर्य मंडल से तीर्थ आवाहन और पूर्वोक्त विधान से आनंद भैरव और भैरवी की पूजा कर पूर्वादि क्रमसे पंचरत्न का यजन करे । यथा-"ग्लुं,, इत्यादि । अब इसका भेद लिखते हैं ।

तदुक्तं यामले।

मांसन्तु त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम्। गोधा चैवाश्वमहिषवराहाजमृगोद्भवम्॥ महामांसाष्टकं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारणम्॥

मांसाभावे तदनुकल्पं निक्षिपेत्। तदुक्तं समयाचारे।

लवणार्द्रकपिण्याकगोधूममाषपञ्चमम्। लशुनञ्च महादेवि! मांसप्रतिनिधौ स्मृतम्॥ मत्स्यन्तु त्रिविधं प्रोक्तं उत्तमाधममध्यमम्। उत्तमं त्रिविधं देवि! शालपाठीनरोहितैः॥ प्रवीणं कण्टकैर्हीनं तैलाक्तं स्वादुसंयुतम्। देव्याः प्रीतिकरंचैव मध्यमं स्याच्चतुर्विधम्॥ क्षुद्राणि तानि सर्वाणि अधमान्याहुरुत्तमाः॥

मुद्रा द्विविधा यथा कुलार्णवे।

व्रैहेयं मण्डलाकारं चन्द्रविम्बनिभं शुभम्। चारुपक्कं म-

यथा यामल में कहा है यथा--जलचर, भूचर और खेचर भेद में मांस तीन प्रकार है। गोधा, अश्व, महिष, वराह, अज, मृग, गो, नर, यह आठ महामांसही देवताको प्रसन्न करते हैं। ऐसा कहा है। मांस के अभाव में उनका (उसकी सदृश) अनुकल्प निक्षेप करै। समयाचार में यह कहा है। यथा--लवण आर्द्रक (अदरख) पिन्याक गो धूम, मास, लहसन यह कई द्रव्य मांस के परिवर्तनमें प्रदान कियेजाते हैं। मत्स्य त्रिविध कहे हैं। यथा-उत्तम, अधम और मध्यम। उत्तम अन्य तीन प्रकारहै। यथा--शालीन, पाठीन और रोहित। इनमें जो प्रवीण, कंटक रहित तैलाक्त और स्वादु है वही देवी का प्रीति जनक है मध्यम भी चार प्रकार है और संपूर्ण क्षुद्र जातीय मत्स्य अधमश्रेणी में परिगणित हैं॥

मुद्रा दो प्रकार हैं। यथा--कुलार्णव में कहा है। जो व्रीह (जौ) से उत्पन्न हुईहैं औरजो मण्डलाकार और चंद्र विम्बकी समान चारुकर शोभित

नोहारि शर्कराद्यैः प्रपूरितम् ॥ पूजाकाले देवताया मुद्रैषा परिकीर्त्तिता ॥

यामलेऽपि ।

भृष्टधान्यादिकं यद्यच्चर्वणीयं च चर्वयेत् । तेषां संज्ञा कृता मुद्रा महामोदप्रवर्द्धिनी ॥

कुलकुसुमभेदं त्वग्रे लिखिष्यामः । अथैषां शुद्धिर्लिख्यते । तदुक्तं भैरवतन्त्रे ।

ओं प्रतद्विष्णु स्तरते वीर्य्येण नृगोलभीसकुचयोर्गरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वः ॥

अनया मांसमभिमन्त्र्य ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मर्त्योमृक्षीय मामृतात् ॥

इत्यनया मत्स्यं संशोध्य । ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो हिरण्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदं इति ऋचा मुद्रामभिमन्त्र्य ।

ओं विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंपतु । आसिं-

मनोहारिणी और शर्करादि परिपूरित है, देवता के पूजा काल में यहीमुद्रा कही गई है । यामल में भी कहा है । भ्रष्ट ध्यानादि जो कुछ चर्वणीय है, उसका नाम मुद्रा रक्खा गया है । क्योंकि तिसके द्वारा महामोद वर्द्धित होता है इसके उपरांत कुल कुसुम भेद लिखा जायगा, इस समय उसकी शुद्धि लिखीजाती है । भैरवतन्त्र में कहा है "ओं प्रतद्विष्णु" इत्यादि कहकर मांस का अभिमंत्रण करके "त्र्यम्बकं यजामहे" इत्यादि पदोच्चारण सहित मत्स्य का संशोधन करे । फिर "ओं तद्विष्णोः" इत्यादि कहकर मुद्राका और "ओं विष्णुर्योनि" इत्यादि के प्रयोग सहित कुण्डोद्भवादि

चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ गर्भं धेहि सिनीवालि ! गर्भं धेहि सरस्वति ! । गर्भं ते आश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥

प्लुं क्लुं म्लुं क्लुं स्वाहा अमृते अमृतोद्भवे ! अमृतवर्षिणि ! अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा । इति कुण्डोद्भवादिकमभिमंत्र्यसर्वं हुमित्यवगुण्ठ्यं धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य तालत्रयं दिग्बन्धनं च कृत्वा सर्वेषामुपरि मूलमन्त्रं सप्तधा जपेत् । इति मांसादि शोधनम् ।

ततः ऐं ह्रीं सौं ब्रह्मरससम्भूत मशेषरससम्भवम् । आपूरितं महापात्रं पीयूषरससंयुतम् ॥ अखण्डैकरसानन्दकरे पर सुधात्मनि । स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलरूपिणि । अकुलस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकरे धरे ॥ अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि । तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृत्वा ह्येतत्स्वरूपिणी ॥ भूत्वा परामृताकारं मयि चित्स्फुरणं कुरु ।

एभिर्मन्त्रैरर्घ्यमभिमन्त्र्य मध्ये कामकलां विलिख्य तत्र इष्टदेवतामावाह्य तालत्रयं दशदिग्बंधनं च कृत्वा हुमित्यवगुण्ठनमुद्रया अवगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य

का अभिमंत्रण करके सबका अवगुण्ठन (परदा) और धेनु मुद्रा द्वारा अमृती करणान्तर तीनताल प्रदान सहित दिग्बंधन और फिर सब के ऊपर सातबार मूलमंत्रका जप करना चाहिये । इति मांसादि शोधनम् ॥

अनन्तर "ऐं-ह्रीं,, इत्यादि मंत्र परम्परा से अर्घ्य का अभिमंत्रण और मध्य में कामकला लिख, उस में इष्ट देवता का आवाहन और तीन ताल सहित दश दिग्बन्धन कर के अवगुण्ठन और धेनु मुद्रा में अमृती करण करै । फिर योनिमुद्रा प्रदर्शन सहित "ह्सौनमः,, कह पूजा

योनिमुद्रां प्रदर्श्य हंसो नम इतीष्ट्वा शंखमुद्रां प्रदर्श्य षड़ङ्गेन सकलीकृत्य मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य मूलमन्त्रं तदुपरि दशधा जप्त्वा देवतारूपमर्घ्यं भावयेत् ततः ।

पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा धूपदीपौ प्रदर्शयेत् !

इति संक्षिप्तार्घ्य साधनम् ।

सम्पूर्ण प्रकारस्तु मत्कृततत्त्वानन्दतरङ्गिण्याम् अनुसन्धेयः । पूजासमाप्तिं यावत् तावदर्घ्यं न चालयेत् ॥

अथ अवगुण्ठनमुद्रायथाज्ञानार्णवे ।

सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी । अवगुण्ठनमुद्रेय मभितो भ्रमिता सती ॥ तदुक्तं तत्रैव ।

मध्यमे गुटिकाकारे तर्जन्युपरि संस्थिते । अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठके ॥ सर्वा एकत्र संयोज्य अंगुष्ठपरिपीडिताः । योनिमुद्रा समाख्याता त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका ॥

कर, शखमुद्रा प्रदर्शन और षड़ङ्गको सहायतासे सफलीकरण करे । फिर मत्स्य मुद्रा से आच्छादन और तिसके ऊपर दशवार मूलमंत्र जपकर देवता रूप में अर्घ्यकी भावना करनी चाहिये अनन्तर तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करके धूप और दीप प्रदर्शन करे । इसका नाम संक्षिप्त अर्घ्य साधन है । सब प्रकार तत्वानन्द तरंगिनी में अनु संधान करे ।

अवगुण्ठन मुद्राका प्रकार यथा—ज्ञानार्णवे । सव्यहाथ की मुट्ठी बांधकर तर्जनीको लम्ब भावसे अधोमुख कर भ्रामित (घुमाना) करने से अवगुण्ठन मुद्रा होती है । उसी ज्ञानार्णव में कहा है, दोनों मध्यमाको गुटिकाकार करके दोनों तर्जनीके ऊपर स्थापित और दोनों कनिष्ठको अनामिका के मध्यगत करके फिर सबको एकत्र संयोजित कर अंगुष्ठ द्वारा परिपीडित करे । इसकाही नाम योनिमुद्रा है यह योनिमुद्रा त्रैलोक्योत्पत्तिकी जननी

शंखमुद्रा यथा तन्त्रान्तरे ।

वाममुष्ट्यन्तरेऽङ्गुष्ठं नियोज्य सरलांगुलीः । दक्षिणस्य करस्येव वामांगुष्ठेन संस्पृशेत् ॥शंखमुद्रेयमाख्याता मन्त्रविद्भिरनुत्तमा । देवताङ्गे षडङ्गञ्च सकलीकरणंभवेत् । दक्षपाणि पृष्ठदेशे वामपाणितलं क्षिपेत् । अंगुष्ठौचालयेत् सम्यङ्मुद्रेयं मत्स्य रूपिणी ॥ ततो देव्या अर्घ्यं गृहीत्वा ॥

घटश्रीपात्रयोर्मध्ये पात्रे च स्थापयेत्ततः ।

घटसमीपे गुरुपात्रं ततो भोगपात्रं ततः शक्तिपात्रं योगिनी पात्रं वीरपात्रं वलिपात्रं पाद्याचमनीयपात्राणि सामान्यार्घ्यैः व्युत्क्रमेण स्थापयेत् । ततः शुद्धिसहितकारणेन् तत्त्वमुद्रया श्रीगुरुपादुकां स्मरन् तत्पात्रामृतेन श्रीअमुकानन्दनाथ गुरु पादुकां तर्पयामि, नमः इति त्रिःसकृद्वा मूर्ध्नि सन्तर्प्य एवं परमगुरु—परापरगुरु—परमेष्टिगुरूनपि सन्तर्पयेत् । ततः श्री

स्वरूप है । शंखमुद्रा यथा--अंगुष्ठको वाममुष्टिके अन्तर में प्रविष्ट और दक्षिण हस्त की सब अंगुलियों को सरल करके वामहस्त के अंगुष्ठ द्वारा स्पर्श करै। मंत्र विद्गण इसकोही शंखमुद्रा कहते है । दक्षिण हस्त के पृष्ठभाग में वाम हस्तकी हथेली न्यस्तकर दोनों अंगुष्ठकी चालना करै । इसका नाम मत्स्यमुद्रा है ॥

अनन्तर देवीकी आज्ञा ग्रहण करके घट और श्रीपात्र दोनों में समस्त पात्र स्थापन करै । यथा—घटके समीप में गुरुपात्र फिर भोगपात्र फिर शक्ति पात्र, योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, पाद्य और आचमनीय सब पात्र और सामान्य अर्घ विपरीत क्रम में स्थापन करै । अनन्तर शुद्धि के सहित कारण और तत्व मुद्रा द्वारा श्री गुरु की पादुका स्मरण करके उस पात्र के अमृत द्वारा "श्री अमुकानन्द „ इत्यादि कहकर तीन बार वा एकवार मस्तक में सन्तर्पण पूर्वक परम गुरु परापर गुरु और परमेष्ठी गुरु, इनका भी विशेष प्रकारसे तर्पण करै । अनन्तर यथाविधि मनो-

पात्रान् मूर्ध्नि श्रीआनन्दभैरवं तर्पयामि नमः इति मन्त्रेण त्रिः सन्तर्प्य ततो देवीं सायुधां सवाहनां सपरिवारां हृदि सन्तर्पयेत् ॥

अथ तत्त्वमुद्रा यथा । स्वतन्त्रे ।

अंगुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तस्य पार्वति । तर्पयेत कालिकां देवीं सायुधां सपरीकराम् ॥

अथ तत्त्वशुद्धिं कुर्यात् । तदुक्तं श्रुतौ ।

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ १ ॥ ओं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि मेशुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ २ ॥ ओं प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनः श्रोत्राणि मे इत्यादि ॥ ३ ॥ ओं त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवचांसि मे इत्यादि ॥ ४ ॥ ओं पाणिपादपायूपस्थशब्दा मे इत्यादि ॥ ५ ॥ ओं स्पर्शरूपगन्धाकाशानि मे इत्यादि ॥ ६ ॥ ओं वायुतेजःसलिलभूम्यात्मानोमे-शुद्ध्यंतांज्योतिरहं विरजाविपाप्माभूयासंस्वाहा ॥७॥ इति सप्तभि ऋग्भिर्विमृश्य कारणेन करतलं सम्मार्ज्य दक्षहस्ते त्रिको

च्चारण सहित श्री आनंद भैरवका तर्पण करके फिर तीनबार हृदय में आयुध वाहन और परिवारके सहित देवीके तर्पण में प्रवृत्त होना चाहिये ।

तत्त्वमुद्रा; यथा—स्वतंत्र में कहा है, वामहस्तका अंगुष्ठ और अनामिका दोनों में देवी कालिका का आयुध और परिवारके सहित तर्पण करै । फिर तत्त्वशुद्धि करनी चाहिये । श्रुति में कहा है, यथा—'ओं प्राणापान,, इत्यादि सात प्रकार ऋक् द्वारा विमर्षण (विचार) कारण द्वारा करतल संमार्जन और दक्षिण हस्त में त्रिकोण लिख यथोक्त विधान में तत्त्वशुद्धि करै । अनन्तर ऋक् वास्त्वदैवत मंत्र द्वारा श्री पात्र से वि दु स्वीकार करके श्री पात्र-

णं लिखित्वा कलायसदृशीं शुद्धिं दक्षिणवामभुजसंमुखमध्येषु निधाय वामहस्तांगुष्ठमध्यमानामायोगैरेकां गृहीत्वा मन्त्रान्ते ह्रीं श्रीं आत्मतत्त्वेन स्थूलदेहं शोधयामि । स्वाहा। अनेनअधःस्थां शुद्धिं स्वीकृत्य ह्रीं श्रीं विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहंशोधयामि स्वाहा । अनेन दक्षिणस्थां स्वीकृत्य ह्रीं श्रीं शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा । अनेन उत्तरस्थां स्वीकृत्य ह्रीं श्रीं सर्वतत्त्वेन तनुत्रयाश्रयं जीवं शोधयामि स्वाहा। अनेन वामदक्षिणमध्यस्थां स्वीकृत्य वस्त्रेण हस्तौ विशोध्य हस्ताभ्यां सर्वाङ्गं मार्जयेदिति तत्त्वशुद्धिः । विस्तृतिस्तु मत्कृततत्त्वानन्दतरङ्गिण्यामनुसन्धेया ।

ततः श्रीपात्राद्बिन्दुस्वीकारम् आर्द्रं ज्वलतीति ऋग्भिः स्वदैवत मन्त्रेण वा कृत्वा श्रीपात्रामृतेन पूजोपकरणभ्युक्षणात् सर्वं ब्रह्ममयं भवेदिति । ततः सिंहासनस्य पूर्वदक्षिण पश्चिमोत्तरेषु त्रिकोणवृत्तं विलिख्य ऐं ह्रीं हूं मण्डलाय नमः। इति मण्डलान् संपूज्य पूर्वे वां वटुकाय नमः । इति गन्धादिभिरिष्ट्वा अर्घ्यपूर्णसलिलमांसमीनमुद्रापुष्पयुतं वलिमुपस्कृत्य वलिपात्रामृतेन वामांगुष्ठानामाभ्याम् उत्सृजेत् अनेन । एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ ! कपिलजटाभारभास्कर !

स्थ अमृत द्वारा पूजाकी उपकरण अभ्युक्षित करने से संपूर्ण ब्रह्ममय होता है । तदनन्तर सिंहासनके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर गोलाकार त्रिकोण लिख समस्त मंडलकी पूजा कर पूर्व भाग में गंधादि द्वारा वटुक की पूजा करनी चाहिये । पूजाके अन्त में अर्घ्य पूर्ण जल, मांस, मीनमुद्रा और पुष्पयुक्त वलि प्रस्तुत करके वलिपात्रस्थ अमृतके सहित वाम हस्त के अंगुष्ठ और अनामिका द्वारा उत्सर्जन (छोड़ना) करै । इस का मंत्र यह है, "एह्येहि देवीपुत्र,, इत्यादि अनन्तर योगिनी गणोंकी अर्चना करकेदक्षिण

त्रिनेत्र! ज्वालामुख! सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितंबलिं गृह्ण गृह्ण स्वहा एपबलिर्वटुकाय नमः। दक्षिणे यं योगिनीभ्यो नमः इति योगिनीः समभ्यर्च्य-दक्षानामांगुष्ठाभ्यां पूर्ववद्बलिम् अनेन दद्यात्।

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा पाताले वा तले वा पवनसलिलयोर्यत्र कुत्रस्थिता वा। क्षेत्रे पीठोपपीठादिपु च कृतपदा धूपदीपादिकेन प्रीताः देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्यान्॥

सर्वयोगिनीः हूं फट् स्वाहा। एप बलिर्योगिनीभ्यो नमः। पश्चिमे क्षां क्षेत्रपालमभ्यर्च्य वाममुष्टिकृतदीर्घया तर्जन्या बलिं दद्यात् अनेन। क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपाल! धूपदीपसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्ण स्वाहा एप बलिः क्षेत्रपालायनमः। उत्तरे गां गणेशमभ्यर्च्य दण्डाकारसर्वांगुलि मध्यवृद्धयोगैर्बलिंदद्यात्। गां गीं गूं गणपतये विरोधिसर्वजनमेव संमारय स्वाहा। एप बलिर्गणपतये नमः। अथ स्ववामे पूर्ववत म-

---

हस्तकी अनामिका और अगुष्ठद्वारा पूर्ववत बलि उत्सृष्टकरै। तिस समय यह मंत्र कहना चाहिये। यथा—ब्रह्मांडके ऊर्द्धमें, स्वर्ग वा गगनतलमें, भूतल अथवा निस्तलमें, पातालमें अथवा अतलमें, अनिल (वायु) में अथवा सलिलमें, क्षेत्र में अथवा पीठ और उपपीठादि में, अथवा जहां जहां अवस्थित हों, धूप और दीपादिके सहित यह पवित्र बलिविधान करता हूं, देवीके प्रतिप्रीति वशतः वही वीरेन्द्र वंदनीय योगिनीगण मेरी रक्षा करें। इस प्रकार योगिनी गणों को बलि प्रदान पूर्वक पश्चिममें क्षेत्रपाल की पूजा करके वाम मुष्टि कृत् दीर्घ तर्जनी द्वारा उसके उद्देश में बलि प्रदान करै। अनन्तर उत्तरमें गणेशकी अर्चना करकै सब अगुलियों को दण्डाकार कर वृद्ध और मध्यम योगमें उसके उद्देशमें बलिप्रदान करनी चाहिये। फिर अपने वाम भागमें पूर्ववद्

पडलं कृत्वा ऐं ह्रीं व्यापकमण्डलाय नमः इति संपूज्य तत्र साधारणवलिं संस्थाप्य मूलेन अभिमन्त्रय गन्धपुष्पं धूपदी पादिना तं संपूज्य ओं ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्य हुं फट् नमः एष वलिः सर्व भूतेभ्यो नमः। इति तत्त्वमुद्रया उत्सृजेत्। सशक्तश्चेत् सर्वभूताय वलिमेकं दद्यात्। ततः पूर्ववत् षड़ङ्गन्यासं कृत्वा कामकलां विभाव्य तरुणदिवाकरारुणकुसुमाञ्जलिं कूर्ममुद्रया गृहीत्वा मूलाधारात् कुण्डलिनीं ब्रह्मपथे परशिवान्तं ध्यात्वा हृदयाष्टदलपीठे समानीय मूलेन मूर्त्तिं कल्पयेत्। तदुक्तं तन्त्रान्तरे।

देवीं सुषुम्नामार्गेण आनीय ब्रह्मरन्ध्रकम्। वामनासापुटे धृत्वा निर्माल्यं स्वाञ्जलिस्थितम्। पुष्पमारोप्य तत्पुष्पं प्रतिमादौ निधापयेत्॥

भैरवतन्त्रे च।

ततः पूर्वोक्तरूपां तां ध्यायेच्चैव हि दक्षिणाम्। योगिनी चक्रसंहितां महाकालसमन्विताम्॥

मण्डल रचना और उसकी पूजा करके उसमें साधारण वलि स्थापन, मूल मंत्र में अभिमंत्रण, गंध, पुष्प, धूप, और दीपादि द्वारा अर्चना करके तत्व मुद्रा द्वारा उत्सर्जन करें। समर्थ होने पर सर्वभू। को एक वलि प्रदान करे। अनन्तर पूर्वकी समान षडङ्ग न्यास, काम कला विभावन, तरुण। दिवाकर की समान अरुण वर्ण कुसुमाञ्जलि कूर्म मुद्रा द्वारा ग्रहण पूर्वक कुण्डलिनीका मूलाधार से परम शिव पर्यन्त ब्रह्म पथमें ध्यान और हृदयाष्ट दल पीठमें समानयन करके मूल मंत्र द्वारा तदीय मूर्ति कल्पना करें। तंत्रान्तरमें कहाहै। यथा—देवीको सुषुम्ना मार्ग एवं ब्रह्मरन्ध्रमें आनयन और वाम नासापुटमें ध्यान करके अपनी अंजुलिस्थ पुष्प आरोपण और वही पुष्प प्रतिमादि में स्थापन करे। भैरव तन्त्रमेंभी कहाहै, यथा—अनन्तर पूर्वोक्त रूपमें देवी दक्षिणाको योगिनी चक्रके सहित और महाकाल की समभि

कालीतन्त्रेऽपि ।

ततो हृदयपद्मान्तःस्फुरन्तीं परमां कलाम् । यन्त्रमध्ये समावाह्य न्यासजालं प्रविन्यसेत् ॥

कुमारीकल्पेऽपि ।

ततो हृदयपद्मांतः स्फुरंतींविद्युताकृतिम् । सुषुम्नावर्त्मना नीत्वा शिरःस्थाने महेश्वरीम् ॥ ततो वै हृदयासन्ने पुष्पांतरे समाह्वयेत् । नासया वा महादेवि वायुवीजेन मंत्रवित् ॥ देवेशीति च मंत्रेण विंदुनावाहयेत्सुधीः ॥

अथ पूर्वोक्तरूपं ध्यात्वा दीपाद्दीपांतरमिति च परशिवे संयोज्य यमिति वायुवीजमुच्चरन् वामनासापुटपथेन देवीं कुसुमाञ्जलावानीय मंत्रमध्ये समावाहयेत् अनेनमंत्रेण ॥

देवेशि भक्तिसुलभे ! परिवारसमन्विते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥

दे इति यन्त्रमध्ये देवीं समावाह्य महाकाल सहित श्रीद-

व्याहारिणी (कहनेवाली) चिन्ता करनी चाहिये । काली तंत्रमेंभी कहाहै, अनन्तर हृदय पद्मके अभ्यन्तर (भीतर) में दीप्यमान परमाकलाको यन्त्रमें आवाहन करके न्यास जलमें न्यस्त करै । कुमारी कल्पमें भी कहाहै, अनन्तर हृदय पद्मके अन्तरमें स्फुरमाण और सौदामिनीको समान आकार शोभना महेश्वरीको सुषुम्न वर्त्म द्वारा शिरस्थानमें लेजाकर हृदयके आसन्न पुष्पान्तरमें आवाहन करै । अनन्तर पूर्वोक्त प्रकार जप और ध्यान करके दीपसे दीपान्तर की समान परम शिवमें संयोजित कर वायु वीज उच्चारण सहित वाम नासा पुट द्वारा देवीको कुसुमाञ्जलि में आनयन और मंत्रमें आवाहन करै । तिस समय इस प्रकार मंत्र कहना चाहिये । तुम्हीं देवतागणों की ईश्वरी और सबकी शक्ति स्वरूप हो । तुमको सहज में ही प्राप्त हुआ जाता है । मैं जबतक तुम्हारी पूजा करूं, तबतक तुम सपरिवार में सुस्थिर होकर स्थिति करो । इस प्रकार यंत्र में देवी का सम्यग् प्रकार आवाहन करके

क्षिणकालिके ! इहागच्छ इहागच्छ इहतिष्ठ इहतिष्ठ इहसन्नि हिता भव इह मन्निरुद्धा भूत्वा पूजां गृहाण । इत्यावाह्य पूर्ववज्जीवन्यासं लेलिहामुद्रया कुशविष्टरेण वा कृत्वा हुं इत्यवगुण्ठ्य षड़ङ्गेन सकलीकृत्य परमीकरणं कृत्वा छोटिकाभिः दशदिग्बंधनं विधाय अमृतीकरणं च कृत्वा कृतांजलिर्देवीनामसम्बोधनांते ओं स्वागतं कुशलमिदमासनमिहास्यतामिति वदेत् ।

अथ आवाहनादिमुद्रा यथा । दक्षिणामूर्त्ति संहितायाम् ।

ऊर्द्ध्वांजलिमधःकुर्य्यादियमावाहनीभवेत् । इयन्तु विपरीता स्यात्तदा वै स्थापनी भवेत् ॥ ऊर्द्ध्वांगुलौ मुष्टियोगा तदेयं सन्निधापनी । अन्तरांगुष्ठयुगला तदेयं सन्निरोधनी ॥

अथ लेलिहामुद्रा यथा ।

तर्जनीमध्यमानामासमं कुर्य्यादधोमुखम् । अनामायां क्षिपे-

फिर श्री दक्षिणा कालिका महा कालके सहित—इस स्थान में अधिष्ठान करो, अधिष्ठान करो, सन्निहित होओ, सन्निरुद्ध होओ, मेरी पूजा ग्रहण करो, इत्यादि कहकर आवाहन और पूर्ववत् लेलिहा मुद्रा वा कुश विष्टर द्वारा जीव न्यासकर यथा क्रमसे अवगुंठन, षडङ्ग द्वारा सकलीकरण और परमीकरण एवं छोटिका द्वारा दश दिग्बन्धन और अमृतीकरण समाधान करने के अन्तमें हाथजोडकर देवीके नामसंबोधनांतमें "ओंस्वागत" इत्यादि कहे ।

आवाहनादि मुद्रा यथा--दक्षिणामूर्त्ति संहिता- में कहा है, ऊर्द्ध अंजलिको अधः करने से आवाहनी मुद्रा होती है । इसके विपरीत करनेसेही स्थापनी मुद्रा होती है । दोनों हाथकी मुट्ठी बांधकर दोनों अँगूठों को ऊंचा करने से सन्निधापिनी मुद्रा होती है । दोनों हाथ के दोनों अंगूठे अन्तः प्रविष्ट करने से सन्निरोधिनी मुद्रा होती है । तर्जनी, मध्यमा

ङ्गुत्वा मृदु कृत्वा कनिष्ठिकाम् ॥ लेलिहानामिमुद्रेयं जीव-न्यासे प्रकीर्त्तिता । अञ्जलिं चार्घ्यवत् कृत्वा परमीकरणं भवेत्॥

ततः खड्गमुण्डवराभययोनिर्दर्शयित्वा प्रतिचक्रे रश्मि वृन्ददेवतामावाहयेत् ।

तदुक्तं स्वतन्त्रे ।

ध्यात्वा देवीं समावाह्य योनिमुद्रान्तु दर्शयेत् । खड्गमुण्ड वराभीतिपरां योनिन्तु दर्शयेत् । ततश्च प्रतिचक्रेषु देवीमा-वाहयेत् सदा ॥

अथ खड्गादिमुद्रा यथा ।

कनिष्ठानामिके वध्वा स्वांगुष्ठेनैव दक्षतः । शेषांगुलीस्तु प्रसृते संपृष्ठे खड्गमुद्रिका ॥ अन्तरांगुष्ठमुष्टिश्च कृत्वा वामकर स्य च । मध्यमायां दक्षिणस्य तथालम्ब्य प्रयत्नतःमध्यमेना थ तर्जन्या अंगुष्ठाभ्यां विमृष्य च । दक्षिणं योजयेत् पाणिं वाममुष्टौ च साधकः ॥ दर्शयेद्दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमुच्यते।

और अनामिका को समभाव में अधोमुख करके अनामिका में वृद्धांगुलि निक्षेप और कनिष्ठ अंगुलिको सरलभावमें स्थापनकर । यह मुद्रा जीवन्यास में मयोग करनी चाहिये । अंजुलीको अर्घ्यवत् करनेसे परमीकरण होती है। अनंतर खड्ग, मुण्ड, वर अभय और योनि मुद्रा प्रदर्शन करके प्रतिचक्र में रश्मिवृंद देवताका आवाहन करै । स्वतंत्रमें कहा है, यथा देवीका ध्यान और सम्यग्प्रकार आवाहन करके योनिमुद्रा प्रदर्शन करावै । तिस काल खड्गमुद्रा मुण्डमुद्रा, वर मुद्रा और अभय मुद्रा प्रदर्शन करके पीछे प्रतिचक्र में देवीका आवाहन करना चाहिये ॥

खड्गादि मुद्रा यथा--दक्षिण हाथके अंगूठे से वामहस्तकी कनिष्ठा और अनामिका को बांध तर्जनी और मध्यमा को परस्पर संश्लिष्ट कर प्रसारित करने से खड्गमुद्रा होती है । वामहस्तकी मुट्ठी बांध और अंगूठेको तिस में

वरदाभयमुद्राञ्च वरदाभयवत् करे ॥ तर्जन्यनामिके मध्ये कनिष्ठादिक्रमेण तु करयोर्योजयित्वैव कनिष्ठामूलदेशतः ॥ अंगुष्ठाग्रन्तु निःक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्त्तिता ॥

अथ रश्मिवृन्ददेवता यथा। कालिकोपनिषदि।

ओं काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी। विप्रचित्ता उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता नीला घना वलाका च। मात्रा मुद्रामिता चैव दशपञ्चमकोणगा ॥ इति।

आसां ध्यानम् यथा कालीतन्त्रे।

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यश्च संविताः ॥

इति पूर्वादिपञ्चदशकोणे ध्यात्वा आवाहयेत्। तद्वच्च फेत्कारिण्याम्।

प्रवेशित कर दक्षिण हस्त की मध्यमाको यत्न सहित आलम्बित और मध्यमा के सहित तर्जनी व अंगुष्ठाग्र में संयोजित और वाममुष्टी में दक्षिण हाथ बांधकर दक्षिणभाग में प्रदर्शन करे। इसकाही नाम मुण्डमुद्रा है। दक्षिण हस्तकी सब अंगुलियों को अधोमुख में प्रसारित करनेपर वर मुद्रा होती है। वामहस्तकी सब अंगुलियोंको अर्द्धमुख करके प्रसारित करने पर अभयमुद्रा होती है। दोनों हाथकी तर्जनी, अनामिका मध्यमा और कनिष्ठाको परस्पर संयोजित करके दोनों कनिष्ठा के मूल देश में अंगुष्ठाग्र निक्षेप करने से महायोनिमुद्रा होती है॥

रश्मिवृन्द देवता। यथा—कालिकोपनिषद् में कहा है, काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विप्रचिन्ता, उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, वलाका, मात्रा, मुद्रा, अमिता, यह पंचदश [पन्द्रह] रश्मिदेवता हैं। इनका ध्यान यथा—कालीतन्त्रे—यह सभी श्यामवर्ण, सभी असिहस्त, सभी मुण्डमाला विभूषित, और सभी वामहस्त द्वारा तर्जनी धारण किये हैं, यह कहकर पूर्वादि पचदश कोण में ध्यान करके आवाहन करे। फेत्कारिणी में भी

ततः पूर्वादिकोणेषु वामावर्त्तेन विन्यसेत्
ततः पूर्वास्यस्तद्दले ब्राह्मयादिकं ध्यात्वा आवाहयेत् ।

तद्यथा कुलसम्भवे ।

महीमण्डलतश्चापि ब्राह्मी नारायणी तथा । माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता । वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ॥

आसां ध्यानं यथा ।

ब्रह्माणीं हंससंरूढां स्वर्णवर्णां चतुर्भुजाम् । चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्राञ्च ब्रह्मकूर्चञ्च पङ्कजम् ॥ दण्डपद्माक्षसूत्रंच दधतीं चारुहासिनीम् । जटाजूटधरां देवीं भावयेत् साधकोत्तमः ॥ नारायणीं महादीप्तां श्यामां गरुडवाहिनीम् । नानालङ्कारसंयुक्तां चारुकेशां चतुर्भुजाम् ॥ घण्टां शंखं कपालंच चक्रं सन्दधतीं पराम् । मधुमत्तमदोल्लोलदृष्टिं सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ माहेश्वरीं वृषारूढां शुभ्रां त्रिनयनान्विताम् । कपालं डमरुंचैव वर-

कहा है, अनंतर पूर्वादि कोणमें वामावर्त्त क्रमसे विन्यासकरै । फिर ब्राह्मी इत्यादि का ध्यान करके आवाहन करना चाहिये । यथा कुल संभव में कहा है, बाहिरी मण्डल में ब्राह्मी, नारायणी माहेश्वरी चामुण्डा, कौमारी अपराजिता, वाराही और नारसिंही की पूजा करै । इनका ध्यान । यथा, ब्रह्माणी हंसपर सवार होती । वह श्वेतवर्णा, चतुर्भुजा, चतुर्वक्त्रा, त्रिनेत्रा, ब्रह्मकुर्च [पात्रविशेष] पंकज [कमल] दण्ड और अक्ष सूत्र धारण करती है । साधक इसी चारुहासिनी जटाजूट धारिनी ब्रह्माणीकी चिंता करै । नारायणी अत्यंत दीप्ति शालिनी, श्यामवर्ण, गरुड वाहिनी, विविध अलंकार धारिणी और सुंदर केशपाश शोभिनी है उसके चार हस्त हैं । उन में घंटा, शंख, कपाल और चक्र बिराजमान रहता है । उसकी दृष्टि मधुमत्त मदलोला [मदसे चंचल] और सर्वांग सौंदर्य में पूर्ण है । माहेश्वरी वृषभ [बैल] पर आरोहण करती है । वह शुभ्रा त्रिनयना, एवं उसके हाथमें वर, अभय, शूल, कपाल, डमरु और टंक [शस्त्र विशेष] शोभा पाता है शरीर सर्वा-

दाभयशूलकम् ॥ टङ्कंच दधतीं देवीं नानाभरणभूषिताम् ॥

चामुण्डामट्टहासां प्रकटितदशनां भीमवक्त्रां त्रिनेत्रां नीलाम्भोजप्रभाभां प्रमुदितवपुषां नारमुण्डालिमालाम् । खड्गं शूलं कपालं नरशिरघटितं खेटकं धारयन्तीं प्रेतारूढां प्रमत्तां मधुमदमुदितां भावयेच्चण्डरूपाम् ॥

कौमारीं कुंकुमप्रभां त्रिनेत्रां शिखिसंस्थिताम् । चतुर्भुजां शक्तिपाशमंकुशाभयधारिणीम् ॥ नानालङ्कारसंयुक्तां प्रमत्तां परिचिन्तयेत् ॥ अपराजितांच पीताभामक्षसूत्रवरप्रदाम् । कपालं मातुलाङ्गच दधतीं परिचिन्तयेत् ॥ वाराहीं धूम्रवर्णांच वराहवदनां शुभाम् फलकखड्गमूषलहलवेदभुजैर्युताम् । नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ॥

अत्र काम्या पूर्वा दिक् न त्वन्या विशेषवचनात् । यत्र रवेरुदयः किंवा पूज्यपूजकयोरन्तरा इति । आगमे सर्वदैव त पूजने पूज्यपूजकयोरन्तर एव पूर्वा दिक् ।

लंकार में भूषितहै । चामुण्डा दांत निकालकर अट्टहास करतीहै । वह भीमवक्त्रा त्रिनेत्रा नीलोत्पलकी समानप्रभा प्रमुदित शरीर, और नृमुण्ड(नरमुण्ड)मालासे विभूषितहै । उसके हाथमें खड्ग, शूल, नरकपाल, और खेटक (आकाशमें चरने वाले ग्रह) शोभायमान् है । वह मधु मदमें प्रमुदित और प्रमत्त होकर प्रेतके ऊपर आरूढ़ होती है । उसका रूप अत्यन्त भयंकर है । साधक उसकी उक्त रूप में भावना करे । कौमारी की प्रभा—कुंकुम के समान है । उसके तीन नेत्र, शिखी (मोर) वाहन, चार भुजा, हाथों में शक्ति, पाश, अंकुश और अभय, एवं कलेवर विविध अलंकार में विभूषित है । अमृत पान करके वह अत्यन्त मत्त भावापन्न हुई है । साधक इस रूपमें उसकी चिन्ता करे । अपराजिता पीतवर्ण, अक्ष, सूत्र और वरप्रदा, कपाल एवं मातुलाङ्ग धारिणी है । इस रूप में उसकी चिन्ता करे । वाराही धूम्र वर्ण, वराह की समान वदनयुक्त और चार भुजा में फलक, खड्ग, मूशल और तूण धारण करतीहै । नारसिंही नृसिंह की समान शरीर धारिणी है ।

तदुक्तं राघव भट्टेन ।

यत्रैव भानुस्तु वियत्युदेति प्राचीति तां वेदविदो वदन्ति। अथान्तरा पूजकपूज्ययोश्च सदागमज्ञाः प्रवदन्ति तान्तु ॥ अन्यच्च । देवसाधकयोरन्तः पूर्वाशा दिगिहोच्यते ॥ अपि च। पूज्यपूजकयोरन्तः पूर्वाशैव निगद्यते ॥

तन्त्रान्तरेऽपि ।

होतुः पूर्वं पूर्वभागं प्रदिष्टं सव्यं भागं दक्षिणन्त्वागमज्ञैः। दत्तं विन्द्यादुत्तरं भागमग्र्यं प्रज्ञावाद्भिः पश्चिमं भागमुक्तम् ॥ अग्र्यमिति संमुखमित्यर्थः ॥ यत्तु ।

पुरन्दरमुखो मंत्री पूजयेत् त्रिपुरां यदि । देवीपश्चात्तदा प्राची प्रतीची त्रिपुरेश्वरः ॥

इति गुप्तार्णववचनम्, तत्त्रिपुराविषये बोद्धव्यम् । देवीमात्रविषयकल्पने अन्यथा भवेत् । अथ मूलमन्त्रांते । श्री

पूर्वदिशाही पूजादि में कामनीय है, अन्य दिशा नहीं। इस विषय में विशेष वचन हैं जिस दिशा में सूर्य का उदय होता है, अथवा पूजक का अन्तरा अर्थात् व्यवधान है, उसकोही पूर्वदिशा कहते हैं आगम में कहा है संपूर्ण देवताकी पूजा में पूजा और पूजक के अन्तरकोही पूर्वदिशा कहते हैं राघवभट्ट ने भी इसीप्रकार कहा है । यथा-जिस ओर आकाश में सूर्य उदय हो, वेद विद्वण उसकाही पूर्वदिक् शब्द में निर्देश करते हैं । आगमज्ञ व्यक्तिगण पूजा और पूजक के अन्तरकोही पूर्वदिशा कहते हैं। अन्यत्र भी कहा है, यथा-देवता और साधक इन दोनों के अन्तरको पूर्वदिशा कहते हैं । फिर भी कहा है, पूज्य और पूजक के अतरकोही पूर्वदिशा कहते हैं । तन्त्रांतर में भी लिखा है, होता के पूर्व को पूर्वभाग, सव्यको दक्षिणभाग, दक्षिणको उत्तर भाग और समुख को पश्चिमभाग कहते हैं । प्राज्ञवित् और आगमवित् व्यक्ति गणोंका इसीप्रकार मत है । तो जो गुप्तार्णव में लिखा है कि पुरंदर मुख में बिराजमान होकर त्रिपुरा देवीकी पूजा करै, उसको त्रिपुरा विषयक समझना चाहिये । अनतर मूलमंत्र के अंत में श्री महाकाल

महाकालसहितां श्री दक्षिणकालिकां तर्पयामीति त्रिःसन्तर्प्य सायुधां सपरिवारांच तर्पयेत्। ततोऽष्टादशोपचारैः षोड़शोप चारैर्दशोपचारैः पंचोपचारैर्वा देवीं पूजयेत्

तदुक्तं स्वतन्त्रे ।

आवाहयेत् प्रतिदले मूलदेवीं च तर्पयेत् । तर्पयेत् कालिकां देवीं सायुधां सपरीकराम् । पाद्यादिभिर्मूलदेविं संपूज्य तर्पयेत् पुनः ॥

अथोपचारा यथा । तदुक्तं फेत्कारिण्याम् ॥

असनावाहने चार्घ्यं पाद्यमाचमनं तथा ॥ स्नानं वासोपवीतञ्च भूषणानि च सर्वशः । गन्धपुष्पं तथा धूपदीपावन्नञ्च तर्पणम् ॥ माल्यानुलेपनञ्चैव नमस्कारविसर्जने । अष्टादशो पचारैस्तु मन्त्री पूजां समाचरेत् ॥

मन्त्ररत्नावल्यान्तु ।

पद्यार्घ्याचमनीयञ्च स्नानं वसनभूषणम् । गन्धपुष्पधूप

सहित श्रीदक्षिणा कालिका का तर्पण करता हूं यह कह तीन बार तर्पण करके आयुध और परिवार के सहित पुनर्वार तर्पण करना चाहिये । अनंतर अष्टादश (अठारह) वा षोडश (सोलह) या दश वा पच विध उपचार से देवीकी पूजा करै । स्वतंत्र में इसीप्रकार कहा है, यथा—प्रतिदल में आवाहन करके मूल देवी का भी तर्पण करै । देवी कालिका का और परिकर सहित तर्पण एवं पाद्यादि द्वारा मूल देवी की पूजा करके पुनर्वार तर्पण करना चाहिये ॥

सब उपचार । यथा—फेत्कारिणी तंत्र में कहा है । आसन, आवाहन अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वाद्य, उपवीत, समस्त भूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, तर्पण, माल्यानुलेपन, नमस्कार, विसर्जन, इन अठारह उपचार से पूजा करै । मंत्ररत्नावली में कहा है, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, आभूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल,

दीपनैवेद्याचमनं ततः ॥ ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणञ्च नमस्क्रिया । प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोड़शः अन्यच्च। अर्घ्यं पाद्यं निवेद्याथ तथैवाचमनीयकम् ॥ मधुपर्काचमनञ्चैव तथा गन्धप्रसूनके ॥ धूपदीपौ च नैवेद्यं दशोपचारकं स्मृतम् । गन्धादिका नैवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिका ॥

अथ पूजायां विधेयो यथा । कालीकल्पे ।

श्रीपदं पूर्वमुद्धृत्य पादुकापदमुद्धरेत् । पूजयामि ततः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः ॥ काल्यादयः पूजनीयाः क्रमेण परमेश्वरि ! । स्वाहा होमे तर्पणे च तर्पयामीति संस्मरेत् ॥ देवीदक्षिणे महाकलं पूजयेत् यथा । कुमारीकल्पे । देव्यास्तु दक्षिणे भागे महाकालं समर्चयेत् ॥

कालीकल्पेऽपि ।

महाकालं यजेद यत्नात् पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत् ॥

अर्चना, स्तोत्र, तर्पण, नमस्कार यह षोडश उपचार पूजाके समय प्रयोग करे । अन्यत्र भी कहा है । अर्घ्य और पाद्य निवेदन करके फिर आचमन मधुपर्क आचमनीय,, गध, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य निवेदन करे । इनकाही नाम दश विध उपचार है गध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इन कई द्रव्यको एकत्र में पच उपचार कहते हैं

पूजा का निषेध । यथा—कालीकल्प में कहा है, प्रथम श्रीपद उद्धार करके फिर पादुकापद उद्धृत करे । अनतर 'पूजयामि' पद प्रयोग करना चाहिये फिर संपूर्ण अंग देवताओं की पूजा करके यथाक्रमसे कल्पादि की पूजा करनी चाहिये। देवीके दक्षिणमें महाकालकी पूजाकरनी चाहिये। यथा कुमारी कल्प में कहा है, देवी के दक्षिण भाग में महाकाल की पूजा करे । कालीकल्प में भी कहा है, यत्न सहित महाकाळ की पूजा करके फिर देवीकी अर्चना में प्रवृत्त होवे ॥

अथ मन्त्रो यथा। ओं क्षौं यां रां लां वां क्रौं महाकाल-भैरव ! सर्वविघ्नान् नाशय नायश ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा अनेन पाद्यादिभिराराध्य त्रिस्तर्पयित्वा मूलदेवीं पूजयेत्। तथा मूलान्ते च ततः पाद्यं महाकालसहित-श्रीदक्षिणकालिकायै नम इति पादयोः पाद्यं दद्यात्। केषाञ्चिन्मते तु। महाकालसहितपदसम्वलितदेवीनामप्रयोगो न भवतीति साम्प्रदायिकाः। अथ अर्घ्यं शिरसि दद्यात्। एवम् आचमनीयं मधुपर्कञ्च। वमिति वरुणवीजान्ते मुखपङ्कजे दद्यात्। स्नानीयं नम इति स्नानीयं दत्त्वा शुद्धदुकूलेनाङ्गंप्रोन्मार्ज्य विचित्र पट्टवस्त्रकस्तूरीकुंकुमचन्दन सिन्दूरकज्ज्वलमुकुट कुण्डल ताटङ्कहारत्रय शङ्खकङ्कणाङ्गदग्रीवा भूषणकांचीनूपुर रत्नांगुरीयकाद्याभरणानि विविधपद्माादिरचितमाल्यादीनि निवेद्य केवलं पुनराचमनीयं दद्यात्। तदुक्तम्।

पाद्यञ्च पादयोर्दद्यात् नासामन्त्रेण मन्त्रवित्। शिरो-

पूजा का मंत्र। यथा—"ओं क्षौं" इत्यादि। इस मत्र से पाद्यादि द्वारा आराधना करके तीनवार तर्पण सहित मूल देवीकी पूजा करै। मूल मंत्रसे पूजाकर तदीय पदमें पाद्य निवेदन करै। किसी किसी के मतसे महाकाल सहित पद संयुक्त देवी के नाम का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। अनन्तर मस्तक में अर्घ्य दान—करै। इस प्रकार वरुण बीज सहित मुख कमल में आचमनीय, और मधुपर्क प्रदान करना चाहिये। अनन्तर स्नानीय दान और विशुद्ध दुकूल (दुपट्टा) में अंग ढककर विचित्र पट्ट वस्त्र, कस्तूरी कुंकुम, चंदन, सिंदूर, कज्जल (मुकुट) कुण्डल, ताटंक, तीन हार, शंख, कंकण, अंगद, ग्रीवाभूषण, काञ्ची, नूपुर, और रत्नांगुरीय इत्यादि समस्त आभरण और विविध पद्मादि रचित माल्यादि निवेदन पूर्वक—केवल पुनर्वार आचमनीय प्रदान करै जैसा कहा है। यथा—नासान्त के समय पाद

मन्त्रेण देवेशि ! अर्घ्यं दद्याच्छिरोपरि ॥ आचमनं मधुपर्कंच स्वधामन्त्रेण देशिकः । स्नानं गन्धं हृदा दद्यात् पुष्पाणि वौषड़ित्यपि ॥ ततो निवेदयामीति दद्यात् सर्वं महेश्वरि ! ।

स्वधामन्त्रेण वरुणमन्त्रेण इत्यर्थः ।
स्वधेत्याचमनीयंच त्रिवारं मुखपङ्कजे ॥

तन्त्रान्तरे च ।

नमः स्वाहा स्वधा चैव वौषड़िति यथाक्रमम् ।

स्वहा सन्निधिपाठाच्च आचमनीयं स्वधेति वकारमध्यपाठो युक्त एव भवति तन्न समीचीनम् । अत्रागमे प्रायः सङ्केतेनैव मन्त्रोद्धारः क्रियते एकमन्त्रोद्धारेऽपि कुत्रापि तत्तदक्षरेण कुत्रापि पर्य्यायशब्देनापि तत्तन्मन्त्रोद्धारो दृष्ट इति उकारमध्यपाठो युक्तः न तु वकारमध्यः अन्यथा राघवभट्ट धृतवचनविरोधापत्तेः । तद्यथा ।

मधुपर्कं मुखे दद्यात् जलमन्त्रेण देशिकः । किंच वारुणेन

युगल में पाद्य निवेदन करके शिरोमंत्रसे शिरके ऊपर अर्घ्य, स्वधा मंत्रसे आचमन और मधुपर्क, गन्ध हृन्मंत्र से स्नान, और वौषट् इत्यादि मंत्र से समस्त पुष्प निवेदन करे ॥

यहां स्वधा मंत्र शब्द में वरुण मंत्र समझना चाहिये । क्योंकि तन्त्रान्तर में कहा है, स्वधा मंत्रसे तीनवार मुख पंकज में आचमनीय प्रदान करै । फिर कहा है, नमः स्वाहा स्वधा और वौषट् यथा क्रमसे इत्यादि । इस स्थान में स्वधा, यह वकार मध्य पाठ-किसी क्रमसे ठीक नहीं है । इस आगम प्राय संकेत में मंत्रोद्धार किया गया है । एक विधमंत्र के उद्धार में भी कहीं उसी उस मंत्र द्वारा, और पर्य्याय शब्दद्वारा भी तत्तत् मंत्रका उद्धार किया गया है । यह देखा जाता है सुतरां वकार मध्य पाठही युक्त है, वकार मध्य पाठ संगत नहीं है । अन्यथा राघवभट्ट धृत वचन के सहित विरोध संघटित होता है । यथा—जल मंत्र से मुख में मधुपर्क प्रदान करे ।

तु मन्त्रेण मधुपर्कं मुखाम्बुजे ॥ इति न च वाच्यं मधुपर्क विषयमेवेदं वचनमिति ।

मधुपर्काचमनयोरेकमन्त्रेण दानात् सुधेति पाठो युक्तः एवेति निश्चितम् । ततो मध्यमानामिकांगुष्ठे गन्धं नम इति गन्धम् अंगुष्ठतर्जनीभ्यां पुष्पाणि वौषड़िति पुष्पैः संपूज्य साक्षतं स्वयम्भू कुसुमादिकञ्च वौषड़िति मन्त्रेण दत्त्वा धूप पात्रं फड़िति संप्रोक्ष्य नम इति इष्ट्वा पुरतो निधाय वाम तर्जन्या संस्पृशन् धूपं निवेदयामीतिं श्रीपात्रामृतेन उत्सृज्य गजध्वनि मन्त्रमातः स्वाहेति घण्टां संपूज्य वामहस्तेन तां वादयन् मध्यमानामिकांगुष्ठैर्धूपंदत्त्वा देवतागायत्रीं मूलमंन्त्रंच जप्त्वा त्रिधा उत्तोलनं कृत्वा देवीं धूपयेत् । अथ सम्मुखे दीपभाजनं संस्थाप्य पूर्ववत् प्रोक्षणपूजने कृत्वा वाममध्यमया दीपपात्रं स्पृशन् दीपं निवेदयामीति निवेद्य घण्टां पूर्ववत् वादयन् मध्यमानामिकामध्ये दीपपात्रमंगुष्ठाग्रे

किंच वारुण मंत्र से मुख पद्म में मधुपर्क इत्यादि । यह वचन मधुपर्क विषयक है, इसप्रकार नहीं कहसक्ते । क्योंकि मधुपर्क और आचमन दोनों के एक मंत्रयोग में प्रदान वशतः स्वधा के परिवर्त्त में 'स्वधा' यह पाठही युक्ति युक्त होता है । यही स्थिर किया सिद्धांत है ॥

अनंतर यथोक्त मंत्रोच्चारण सहित गंध और पुष्प द्वारा पूजा करके वौषट् मंत्रसे अक्षत सहित स्वयम्भू कुसुमप्रदान फट्मंत्र से धूपपात्र प्रोक्षण, पूजन सम्मुख में स्थापन और वाम तर्जनी द्वारा स्पर्श करना चाहिये । फिर घंटा की पूजा और वामहस्त द्वारा उसका वादन, मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ द्वारा धूपदान, देवता, गायत्री और मूलमंत्र जप और तीनवार उत्तोलन करके देवीको धूपित करै । अनंतर सम्मुख में दीपपात्र स्थापन एवं पूर्ववत् प्रोक्षण और पूजन निष्पादन करके वामहस्त की मध्यमा द्वारा दीपपात्र स्पर्श, दीप निवेदन, पूर्ववत् घंटा वादन, एवं पूर्ववत् मध्यमा और अनामिका के मध्य में अंगुष्ठाग्र द्वारा दीपपात्र धारण करके प्रदर्शन

ण धृत्वा दर्शयेत् । ततो मधुद्रव्यं सम्मुखे कृत्वा ओं कालि ! कालि ! महाकालि ! हूं हूं अमृतमासवं विधिवत् कुरु कुरु स्वाहा इति मन्त्रेण सप्तधा अभिमन्त्र्य च ग्रासमुद्रया पात्रमादाय दक्षिणपाणिना शुध्यादिकं गृहीत्वा कराभ्यां संयोज्य मूलमन्त्रान्ते शुद्ध्यादिसहितमासवं निवेदयामीति दद्यात् । ततो नैवेद्यं स्वर्णादिपात्रे कृत्वा त्रिकोणमण्डलोपरि पुरतः संस्थाप्य हुमित्यवगुण्ठ्य यमिति वायुबीजेन संशोध्य रमिति वह्निबीजेन संदह्य वमिति वरुणबीजेन धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य तदुपरि मूलं सप्तधा प्रजप्य वामांगुष्ठेन नैवेद्यपात्रं स्पृशन् नैवेद्यं निवेदयामीति दक्षिणहस्तं तत्त्वमुद्रया उत्सृजेत् । ततो जलगण्डूषं दत्त्वा प्राणादिपञ्चमुद्रां दर्शयन् वामहस्ते ग्रासमुद्रां दर्शयेत् । ततः पुनराचमनीयं दत्त्वा कर्पूरादियुक्तताम्बूलं वामांगुष्ठेन धृत्वा ताम्बूलं निवेदयामीति दद्यात् । सर्वमर्घ्यजलेन उत्सृजेत् । ततस्तन्त्रमुद्रया

कर तदुपरांत मधु द्रव्य सन्मुख करके 'ओं कालिकालि' इत्यादि मंत्रसे सात वार अभिमंत्रित करने के पीछे ग्रास मुद्रा द्वारा पात्र ग्रहण, दक्षिणहस्त द्वारा शुध्यादि संग्रह और दोनों हाथों से मिलापकर मूलमंत्र के अंत में शुध्यादि सहित आसव निवेदन करना चाहिये । अनंतर सुवर्णादिपात्र में नैवेद्य करके त्रिकोण मण्डल के ऊपर सन्मुख स्थापन, कूर्च मंत्र से अवगुण्ठन वायुबीज की सहायता से संशोधन वह्नि बीज द्वारा संदहन, वरुणबीज की सहायता से धेनुमुद्रा योग में अमृतीकरण, उसके ऊपर सातवार मूलमन्त्र जप, और वाम अंगुष्ठ से पात्रको स्पर्श करतत्व मुद्रा द्वारा उत्सर्जन करै । फिर जलगण्डूष प्राणादि पंचमुद्रा प्रदर्शन करने के पीछे वाम हस्त में ग्रास मुद्रा दिखानी चाहिये । तदनंतर पुनर्वार आचमनीय प्रदान करके बांये हाथ के अंगूठे से कर्पूरादि युक्त ताम्बूल ग्रहण कर उसको निवेदन और समस्त अर्घ्य जल के सहित उत्सर्जन करै । अनंतर तत्त्वमुद्रा सहित अर्घ्यामृत द्वारा

अर्घ्यामृतेन देवीं त्रिः संतर्प्य योनिमुद्रां दर्शयेत् ॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

मध्यमानामिकाभ्यान्तु अंगुष्ठाग्रेणपार्वति ! । दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ अंगुष्ठतर्जनीभ्यान्तु चक्रे पुष्पं निवेदयेत् । यथा गन्धं तथा देवि ! धूपं दद्याद्विचक्षणः ॥ मध्यमानामिकाभ्यान्तु मध्यपर्वणि देशिकः । अंगुष्ठाग्रेण देवेशि ! धृत्वा दीपं निवेदयेत् ॥ उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूलयोगितः । तत्त्वाख्यमुद्रया देवि ! नैवेद्यंच निवेदयेत् ॥

मूलेन आचमनं ताम्बूलं तेन मुद्रया दद्यात् ।

सारदाटीकायाञ्च ।

धूपभाजनमंत्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य हृदात्मना । मन्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन् गुग्गुलं दहेत् ॥

अन्यत्रापि ।

गजध्वनि ततो मन्त्रमातः स्वाहेत्युदीर्य्य च । अभ्यर्च्य वादयन् घण्टां सधूपैर्धूपयेत्ततः ॥

तन्त्रांतरे च ।

ततः समर्पयेत् धूपं घण्टावादनसंयुतम् । एवं दीपदाने घंटा वादनमिति साम्प्रदायिकाः ॥

देवीको तीनवार तृप्त करके योनिमुद्रा दिखावै । तंत्रातर में कहा है यथा—मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठाग्र द्वारा मूलमंत्र की सहायता से विमलगंध दान करनी चाहिये । अंगुष्ठ और तर्जनी द्वारा चक्र में पुष्प निवेदन एवं गंध और धूप दान करै । मध्यमा, अनामिका, और अंगुष्ठाग्र द्वारा मध्यपर्व में दीप धारण करके निवेदन और मूलमंत्र से तीनवार गायत्रीको उत्तोलन करके तत्वाख्य मुद्रा प्रदर्शन करने के पीछे नैवेद्य निवेदन करै । शारदाटीके में कहा है, धूप भाजन मंत्र में प्रोक्षण, हृन्मंत्र में अभ्यर्चन (पूजा) और 'फट्' की सहायता से पूजित घंटा बजायकर गुग्गुल जलाना चाहिये । तन्त्रांतर में कहा है, अनंतर घंटा बजाने के संग धूप निवेदन करै । साम्प-

अथ गन्धादिनिवेदनस्थानम् यथा यामले ।

निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पंच भूषणम् । दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो न तु वामतः ॥ वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे । नैवेद्यं दक्षिणे चापि पुरतो न तु पृष्ठतः ॥

दीपमिति घृतयुक्तश्चेत् दक्षिणे तैलयुक्तंचेद्वामे इति साम्प्रदायिकाः । एवं सिता वर्त्तिश्चेत् दक्षिणतः रक्ताचेद्वामतः संमुखे तु न नियमः । नैवेद्यमिति सिद्धान्नं चेत् देवतावामे आमान्न चेद्दक्षिणे इत्यपि बोद्धव्यम् ।

अथ पुष्पनियमो यथा मुण्डमालायाम् ।

पुष्पाण्यपि तथा दद्यात् रक्तकृष्णसितानि च । श्वेतं रक्तं जवापुष्पं करवीरं तथा प्रिये ! ॥ टगरं मल्लिका जाती मालती यूथिका तथा धुस्तूराशोकवकुलं श्वेतकृष्णापराजिता ॥

दायिक गणोंने दीपदान में भी इसीप्रकार घंटा बजाने की विधि निर्देश की है । गंधादि निवेदन के स्थान यथा—यामल में कहा है,। पुरोभाग में गंध, पुष्प और भूषण, दक्षिण में दीप, वाम में धूप और दक्षिण में नैवेद्य प्रदान करै । दीप कभी सन्मुख वा वाम में न दे । और नैवेद्य भी कभी सन्मुख वा पीछे से निवेदन न करे । साम्प्रदायिक मतसे घृतयुक्त प्रदीप दक्षिण में और तैल युक्त दीप वाम में निवेदन करे । इसप्रकार श्वेतवर्त्ति (सफेदवर्त्ती) दक्षिण में और रक्तवर्त्ती वाम में प्रदान करनी चाहिये । सन्मुख नहीं नैवेद्य सिद्धान्न होने से देवता के वाम में और आसन्न होने से दक्षिण में, यह समझना चाहिये ।

पुष्प नियम । यथा-मुण्डमाला तंत्र में कहा है; रक्त, कृष्ण और श्वेत वर्ण समस्त पुष्प प्रदर्शन करे । श्वेत और रक्त भेद में द्विविध जवा और द्विविध करवीर, टगर (सुहागा) मल्लिका, जाती (चमेली) मालती, यूथी, धुस्तर, अशोक, वकुल, शुक्ल और कृष्ण भेद में दो प्रकार की अ-

वकपुष्पं विल्वपत्रं चम्पकं नागकेशरम् । मल्लिका झिरिण्टका कांची रक्तं यत् परिकीर्त्तितम् ॥ अर्कपुष्पं जवापुष्पं वर्वरंच प्रियं भवेत् । अष्टम्यांच विशेषेण तुष्टा भवति पार्वती ॥ पद्म पुष्पेण रक्तेन सन्तुष्टाः सर्वदेवताः कृष्णं वा यदि वा रक्तं कालिका वरदा भवेत् ॥ श्मशानधूस्तुरेणैव तुष्टा स्वभावती परा । अन्यपुष्पैश्च विविधैः सन्तुष्टा देवि ! पार्वती ॥ आमलक्यास्तु पत्रेण तुष्टा भवति पार्वती । अष्टम्यांच चतुर्दश्यां नानापुष्पैः समर्चयेत् ॥ श्मशाने रात्रिशेषे वा शनिभौमदिने तथा ।

मत्स्यसूक्ते ।

सुगन्धिश्वेतलोहित कुसुमैरर्चयेद्दलैः ॥ विल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः । ओड्रपुष्पैर्विशेषेण वज्रपुष्पेण मिश्रितम् ॥ सर्वं पुष्पं प्रदातव्यं भक्तियुक्तेन चेतसा । देवानामित्युपलक्षणं देवीनामिति वोद्धव्यम् ॥

पराजिता (विष्णुकान्ता) वक पुष्प, विल्वपत्र, चंपक, नागकेशर, मल्लिका पीलीकटसरैया कांची (तरी चोंटली) और अर्क पुष्प (आकका फूल) यह सब देवीको प्रिय हैं । विशेष करके अष्टमी में यह सब प्रदान करने से पार्वती तुष्ट होती हैं । रक्तवर्ण पद्म पुष्प प्रदान करने से संपूर्ण देवता संतुष्ट होते हैं । कृष्ण वा रक्तवर्ण जो कोई पुष्पप्रदान कियाजाय उससे कालिका वरप्रदान करती है । स्वभावती श्मशान धुस्तूर (श्मशान का धतूरा) सेही संतुष्ट होती है । अन्यान्य विहित पुष्प और आमलकी के पत्र प्रदान करने से, पार्वती प्रसन्न होती हैं। अष्टमी और चतुर्दशी में शनि और मंगलवार में, श्मशान में वा रात्रिके शेष में, विविध पुष्प दान सहित अर्चना करे । मत्स्य सूक्त में कहा है, सुंदर गंधयुक्त श्वेत और लोहित, वर्ण कुसुम(पुष्प) विल्व, मरुवक विशेषतः ओड्र पुष्प [गुड़हर पुष्प] और वज्र पुष्प मिश्रित समस्त पुष्प भक्तियुक्तचित्तसे प्रदानकरै,तुलसी प्रदान न करै । तन्त्रान्तरमें

तदुक्तं तन्त्रांतरे ।

देवीपूजा सदा कार्य्या जलजैः स्थलजैरपि। विहितैर्वा निषिद्धैर्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ पूजनीया सदा भक्त्या नृणां शीघ्रफलाप्तये ॥

अथ पुष्पदानविधानम् यथा तदुक्तं सारदाटीकायां ।

पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् । दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् ॥ अधोमुखं फलं नेष्टं पुष्पांजलिविधौ न तत् ।

अथ नैवेद्यं यथा । तदुक्तं मत्स्यसूक्ते ।

पायसं कृपरं दद्यात् शर्करागुड़संयुतम् । गव्यं मुखे मधुपयस्तथान्यानि निवेदयेत् ॥ शालमत्स्यञ्च पाठीनं गोधामांसमनुत्तमम् । अन्नञ्च मधुना युक्तं यत्नाद्दद्याच्च मन्त्रवित् ॥

कृपरं तिलतण्डुलमित्यर्थः । पाठीनं वोयालाख्यमत्स्यमित्यर्थः ।

कहा है विहित हों अथवा निषिद्ध हों, जलज और स्थलज पुष्पों के द्वारा भक्ति युक्त चित्त से सर्वदा देवी की पूजा करने से शीघ्रफल लाभ होगा।

पुष्प विधान । यथा—शारदा टीका में कहा है पुष्प वा फल अथवा पत्र अधोमुख होकर न दे, इससे दुःखं उपस्थित होता है । जिस रूप में वह सब उत्पन्न हुए हैं उसीभावमें अर्पणकरै। पुष्पांजलि प्रदान करनेके समय अधोमुख होकर फलदान की विधि विहित नहीं है । अब नैवेद्य दानकी विधि लिखी जाती है मत्स्यसूक्त में कहाहै पायस (खीर) शर्करा गुड समेत कृपर गव्य दुग्ध [गायका दुग्ध] मधु और अन्यान्य समस्त द्रव्य निवेदनकरै । मंत्रवित् साधक यत्न पूर्वक शालमत्स्य, पाठीन, गोधामांस और मधुयुक्त अन्न प्रदान करै । इस स्थलमें कृपर शब्दमें तिल, तंडुलहों । पाठीन शब्दमें बोदाल मत्स्य

अन्यत्रापि ।

कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं घृतसंयुक्तपायसम् मनःप्रियंच नैवेद्यं दद्यादैव्यै पुनः पुनः ॥

कन्दुपक्वं भृष्टतण्डुलपृथुकादिकम् स्नेहपक्वं लड्डुकादि ॥

कुमारीकल्पेऽपि ।

ताम्बूलंच सकर्पूरं नारिकेलं सशर्करम् । पायसं सघृतंचैव आर्द्रकं सगुडं तथा ॥ सतण्डुलं तिलंचैव दधि चैव सशर्करम् । जम्बीरं पनसंचैव आम्रातकफलं तथा ॥ कदलीं तिन्तिडींचैव श्रीफलं फलमुत्तमम् । करंजं वकुलंचैव तालं खर्जूरमेव च ॥ अन्यानि च सुगन्धीनि स्वादूनि च फलानि च ॥

मुण्डमालायामपि ।

दधि क्षीरं गुड़श्चान्नं पायसं शर्करान्वितम् । पायसं क्षौद्रमांसंच नारिकेलं समोदकम् ॥ शशकं मेषकंचैव आर्द्रकंच सशर्करम् । शालमत्स्यंच पाठीनं शकुलं गड़कं तथा ॥ मद्गुरं चेलिपं दद्यात् मांसं माहिषमेव च । पक्षिमांसं वरा-

समझना चाहिये। अन्यत्र भी कहाहै । यथा–कन्दपक्क, स्नेहपक्क घृतसम्यक्त पायस और इच्छानुसार मनकी प्रियनैवेद्य बारम्बार प्रदानकरै कन्दपक्क शब्दमें भ्रष्ट तण्डुल पृथूकादि जानना स्नेह पक्क शब्दमें लड्डूकादि। कुमारीकल्पमेंभी कहा है । यथा कर्पूर सहित ताम्बूल शर्करा के संग नारिकेल [नारियल], घृत सहित खीर गुड सहित अदरख तण्डुल सहित तिल शर्करा सहित दधि, जम्बीर, [नींबू] पनस [कटहर] आम्रतक [अम्बाडा] कदली तिन्तिडी [विपाविल] श्रीफल, करञ्ज, वकुल, ताल, खजूर एवं अन्यान्य सुस्वाद और सुगन्धित सम्पूर्ण फल प्रदान करै । मुण्डमाला में कहा है दधि, दूध, गुड सहित पायस, क्षौद्रमांस, नारिकेल, मोदक, अन्न, खरगोश, मेष [भेड] शर्करा सहित अदरख, शाल, पाठीनमत्स्य, शकुल, गडक, मद्गुर, इलिप, भैंसे का मांस, पक्षीमांस, नानासम्भूत, डिम्बकालाबकरा, महामांस, गोधिका हरिणी

रोहे ! डिम्बं नानासमुद्भवम् ॥ कृष्णच्छागं महामांसं गोधिकां हरिणीं तथा । जलजे मत्स्यमांसे च गण्डकीमांस मेव च ॥ नानाव्यञ्जनदुग्धानि व्यञ्जनानि वहूनि च ॥

नैवेद्यपात्रं यथा । यामले ।

तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा । ताम्रे वा प्रस्तरे वापि पद्मपत्रेऽथवा पुनः । यज्ञदारुमये वापि नैवेद्यं कल्पयेत् बुधः। सर्वाभावे तु माहेशि ! स्वहस्तघटितं यदि ॥ यद्योग्यमर्घ्य पात्रे तु तद्विधाय निवेदयेत् । अन्यैस्तैर्यैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यं पात्र स्थितंच यत् ॥ न गृह्णाति महादेवी दत्तं विधिशतैरपि ।

अथ कृताञ्जलिः ! श्रीदक्षिणकालिके ! आवरणं ते पूजयामीति आज्ञां गृहीत्वा अग्नीशासुरवायव्यसंमुखे दिक्षु च देव्याः षड्ङ्गे वा षड्ङ्गदेवतां ध्यात्वा न्यासोक्तमन्त्रेण यजेत् ।

तदुक्तं कुलार्णवे ।

अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनम् । इति ।

मांस, गण्डकी मांस एवं अनेक व्यञ्जन और दूध प्रदान करे । नैवेद्य पात्र यथा—यामले विविध तैजस पात्र में अथवा सुवर्ण के पात्र में वा चांदीके पात्र में या तांवे के पात्र में किम्वा पत्थर और पद्मपत्र में अथवा यज्ञदारुमय पात्र में नैवेद्य कल्पना करे । हे महेशानि ! इन सबका अभाव होनेसे स्वहस्त गठित उपयुक्त अर्घ्यपात्र में नैवेद्य निवेदन करे । इनके बिना अन्यपात्र में शत शत विधि अनुसारभी प्रदान करनेसे महादेवी उसको ग्रहणनहीं करती । अनन्तर हाथ जोड़कर "श्री दक्षिणकालिके" इत्यादि कह, आज्ञाग्रहण कर अग्निकोण, वायुकोण, नैर्ऋतकोण और ईशान कोण के, सम्मुख एवं दिक् समूह अथवा देवीके षडंग में षडंग देवता का ध्यान करता हुआ न्यासोक्त मंत्र से पूजा करे । कुलार्णव में कहा है यथा—अग्निकोणादि चतुष्कोण मध्य भाग और दिशाओंमें अङ्ग पूजा करनी चाहिये । तन्त्रान्तर में भी कहा है

तन्त्रान्तरे च।

इष्ट्वा हृदयमाग्नेय्यामैशान्यान्तु शिरो यजेत् नैर्ऋत्याञ्च शिखा पूज्या वायव्यां कवचं यजेत्॥ अभ्यर्च्य पुरतो नित्यं दिक्षु वास्त्रमथार्चयेत्। अपिच। वन्ह्यादिदिक्षु वा पूज्या तत्तदङ्गेषु च क्रमात्॥

ध्यानं यथा।

तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः। वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवस्त्रियः॥ अथ गुरुपंक्तित्रयं पूजयेत्।

तदुक्तं सारदाटीकायाम्।

वायव्यादीशपर्य्यन्तं गुरुपंक्तिं समर्चयेत्। तदशक्तौ गुरुचतुष्टयं तदशक्तौ गुरुत्रयम्॥

तद्वैवत ऋषिमात्रं वा। अथ गुरुपंक्तिर्यथा। तदुक्तं भावचूड़ामणौ।

भैरव उवाच।

मातर्देवि! महामाये! बन्धमोक्षप्रवर्त्तिनि!। इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुरुक्रममनुत्तमम्॥

अग्निकोण में हृदय की पूजा करके ईशानकोण में मस्तक, नैर्ऋतकोण में शिखा और वायुकोण में कवच की पूजा करनी चाहिये। पूजा के अन्त में सम्मुख सब ओर अस्त्रकी पूजा करनी चाहिये। फिर कहा है, अग्नि इत्यादि दिशाओं में उन उन सब अङ्गों सहित यथा क्रमसे देवीकी पूजा करे। ध्यान यथा—तुषार इत्यादि। अनन्तर तीन गुरु पंक्तियों की पूजा करनी होती है। सारदा टीका में कहा है। यथा—वायुकोण से ईशानकोण पर्य्यन्त गुरु पंक्तिकी पूजा करे। इस में असमर्थ होने से गुरु चतुष्टय और इसमें भी असमर्थ होने से गुरुत्रय अथवा तद्वैवत ऋषि मात्रकी पूजा करनी चाहिये॥

अब गुरु पंक्ति लिखी जाती है। भाव चूड़ामणि में कहा है, यथा,—भैरव ने कहा है मातः देवि महामाये! तुम बन्धन और मुक्तिकी हेतु हो अब गुरु

देव्युवाच ।

गुरुक्रमस्तु बहुधा मन्त्रविस्तारगौरवात् । कालीनामप्यनादित्वात् तत् कथं कथयामि ते ॥ न ज्ञात्वा गुरुकुलं ह्येव नष्टमार्गो भविष्यसि । नष्टमार्गा नात्र विद्ये न तादृक् फलगोचरम् ॥ गुरूणां शिष्यभूतानां नास्ति चेत् सन्ततिक्रमः मन्त्रतन्त्राश्च विद्याश्च निष्फला नात्र संशयः ॥ विंशतिं पुरुषान् वापि नवसप्तत्रयोऽपि वा । अज्ञात्वा गुरुवंशानां शिष्यश्च नष्टसन्ततिः ॥ स्ववंशादधिकं ज्ञेयं गुरुवंशं महाशुभम् । जनकादधिको ज्ञेयो मन्त्रदश्च महेश्वर ! ॥ तस्मात् सर्वत्र देवेश ! संक्षेपात् श्रृण तान् गुरून् । आदौ सर्वत्र देवेश ! मन्त्रदः परमोगुरुः ॥

परापरगुरुस्त्वं हि परमेष्ठिरहं ततः । सर्वतन्त्रेषु विद्यासु स्वयं प्रकृतिरूपिणी ॥ ततः पुरुषरूपश्च ततः स्वगुरुसन्ततिः । तेनैव हि मदंशाश्च मद्भक्ताश्च विशेषतः ॥ शैवमन्त्रेषु पुरतः सर्वत्रसिद्धि दायिकः । दिव्यौघा गुरवो देव ! सिद्धौघा गुर

क्रम श्रवण करने की मेरी इच्छा है देवी ने कहा भगवती काली अनादि हैं । उनके मंत्रभी अनेक प्रकार हैं इसलिये गुरु क्रमभी अनेक विधि में विच्छिन्न है अतएव किस प्रकार उसका वर्णन करूं ? हे देव ! कुल गुरुको न जानने से नष्ट मार्ग होना होता है । नष्ट मार्गकी विद्या साधन में किसी प्रकार का फल उत्पन्न नहीं होता गुरुके वंशको अपने वंशकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ जानना चाहिये । हे महेश्वर ! जो मंत्र देता है उसको पिताकी अपेक्षा भी अधिक जानना चाहिये । अतएव हे देवेश ! संक्षेप से गुरु गणों का विषय श्रवण करो । प्रथम सर्व्वत्र मंत्र दाता गुरुही सब से श्रेष्ठ हैं । तुम परापर गुरु और मैं परमेष्ठी गुरु हूं सम्पूर्ण तंत्र और विद्या में मैंही स्वयम प्रकृति और तिसके पीछे अपने गुरुकी सन्तति है उसमें भी विशेष करके मदीय भक्तगण मेरे अंश स्वरूप हैं । हे देव ! दिव्यौघ, सिद्धौघ, और मान

बस्तथा ॥ मानवौघाः समासेन कथयामि तवाग्रतः । तत्रादौ कालिका देवी तस्याः शृणु गुरुक्रमम् ॥ महादेवी महादेव स्त्रिपुरा चैव भैरवः । दिव्यौघाः गुरवः प्रोक्ताः सिद्धौघान् कथयामिते ॥ ब्रह्मानन्दः पूर्णदेवश्चलश्चित्तश्च लोचनः । कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः ॥ माया मायावती चैव मानवौघान् शृणु प्रिये ! ॥ विमनः कुशलश्चैव भीमः शूरः सुधाकरः । मीनो गोरचकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः ॥ मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ । समरानन्दसन्तोषौ कालिकागुरवः स्मृताः ॥

अथ देवीं प्रति भैरववाक्यम् ।

तदुक्तं तन्त्रार्णवे ।

दिव्या वसन्ति ये नित्यं सिद्धभूमाविहापि च ॥ मानवौघा मानवेषु मम रूपधराः सदा । आनन्दनाथशब्दान्ता गुरवः सर्वसिद्धिदाः ॥ स्त्रियोऽपि गुरुरूपाश्च अम्बान्ताः परि

बौघ भेद से गुरु तीन प्रकार हैं संक्षेप से तुम्हारे निकट इनका वृत्तान्त कहती हूं । तिनमें देवी कालिका प्रथम है । तिनका गुरु क्रम श्रवण करो । महादेवी और महादेव एवं त्रिपुरा और भैरव यह दिव्यौघ गुरु हैं । सिद्धौघ गुरु का वृत्तान्त कहती हूं, श्रवण करो । ब्रह्मानंद, पूर्णदेव, चलचित्त, लोचन, कुमार, क्रोधन, वरद, स्मरदीपन, माया, मायावती, यह मानवौघ गुरू हैं । और विमल, कुशल, भीम, शूर, सुधाकर, मीन, गोरक्षक, भोजदेव, प्रजापति, मूलदेव, रन्तिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, समरानन्द, सन्तोष, यह कालिका गुरु हैं ॥

देवीके प्रति भैरववाक्य । यथा—तन्त्रार्णवे—जो मेरारूप धारण पूर्वक मनुष्यगण सिद्ध भूमि में और इस लोक में वास करते हैं वह दिव्यस्वरूप गुरुगण मानवौघ नाम से परिगणित हैं उनको आनंदनाथ कहते हैं वह सर्व विध सिद्धि विधान करते हैं । इनमें गुरुरूपिणी स्त्रियों को अम्बा शब्द में

कीर्त्तिताः । मानवौघान्तिके देवि ! स्वगुरुं परिपूजयेत् ॥

अथवा प्रातःकृत्येषु यत्सामान्यगुरुकुलमुक्तं तदेवार्चयेत्।

तद्यथा भावचूड़ामणौ ।

अथवा सर्व शास्त्रेषु गुरवः पूर्वसूचिताः ।

कुलचूड़ामणौ च ।

एकचित्तमना भूत्वा शृणु वत्स ! समाहितः । येषु येषु च मन्त्रेषु ये ये ऋषिगणाः स्मृताः ॥ ते ते पूज्याः सपर्य्यादौ संक्षेपाद्गदितं यया अज्ञात्वा गुरुकुलं वा गुरुत्रितयमर्चयेत् ॥ चतुष्टयं वा सङ्कोचो न च कार्य्यस्ततः परम्। गुरुःपरम गुरुश्चैव परापरगुरुस्तथा ॥ परमेष्ठि गुरुश्चैव कथिता गुरवस्तव । गुरुपूजां विना वत्स ! यदि पूजां समाचरेत् ॥ निष्फला मम सा पूजा ज्ञातव्या साधकोत्तमैः । निर्गुणं तत्तदेव स्यात् सगुणं कुलपूजनम् ॥ कुलावलोकनं चेत् स्यात् कुतः प्रोक्षणमार्जनम् । क्व च स्थानं क्व वा शुद्धिः क्व च न्या-

---

निर्देश करते हैं । हे देवि ! मानवौघ गुरु के अन्तिक में अपने गुरुकी पूजा करे । अथवा प्रातकृत्य में जिन सामान्य कुलगुरु का उल्लेख है, तिनकी अर्चना करनी चाहिये । भाव चुडामणिमें कहा है । यथा—अथवा संपूर्ण शास्त्रोंमेही गुरुगण पूर्व सूचित हुए हैं । कुल चूडामणि में कहा है. हे वत्स ! एक चित्त, एक मना और सावधान होकर श्रवण करो । जिस जिस मंत्र के जो जो ऋषि हैं, पूजाके प्रथमही उनकी पूजा करनी चाहिये । कुलगुरु के न जानने से गुरु त्रितियवाचतुष्टयकी पूजा करै । इसमें किसी प्रकार का संकोच न करै । गुरु, परमगुरु, और परापर गुरु इन सबका वृत्तान्त तुम्हारे निकट वर्णन किया । हे वत्स ! गुरुकी पूजा न करके जो पूजा करीजाती है उस दोष की शांति के लिये कुल पूजा करै । जिस स्थान में जो त्रिगुण है, इसप्रकार पूजा करने से वह सगुण होती है । यदि कुलकी दृष्टिगत हो, तो

सविशोधनम् ॥ दीक्षाप्रभुः कुलीनः स्यात् कुलात्मा बटुकेश्वरः। स्वगेहे गुरुमानीय कुलरूपं गुरुं स्मरेत् ॥ गुरुक्रमञ्च कथितं गोपनीयं प्रयत्नतः॥ न देयं यत्र कुत्रापि योगभ्रष्टे च शिष्यके। वैष्णवे शाक्ति तन्त्रेवा गाणपत्येऽथवा पुनः। निजं गुरुं परं ध्यात्वा ततो गुरु चतुष्टयम् ॥ पूजयित्वा यजेद्देवं न च संकोचमाचरेत् ॥

श्रीमहादेव्यम्बायाः श्री पादुकां पूजयामि नमः इति संपूज्य गुरुपात्रामृतेन त्रिः सकृद्वा तर्पयेत्। एवं महादेवानन्दनाथ गुरुपादुकां पूजयामि नम इति संपूज्य पूर्ववत् पूजयेत्। एवं क्रमेण गुरुपंक्तित्रयं संपूज्य मानवोघान्त स्वगुरुं गुरो गुरुं तद्गुरुं च पूजयेत् तर्पयेच्च। ततो रश्मिवृन्ददेवताःपूजयेत् यथा वाह्ये त्रिकोणस्य सम्मुखे ओं कालिकायाः श्रीपादुकां

प्रोक्षण और मार्जन का फिर क्या प्रयोजन है? इसके अतिरिक्त स्थान शुद्धि और न्यास शोधन की भी क्या आवश्यकता है? कुली नहीं दीक्षा का प्रभु और कुलात्माही साक्षात् बटुकेश्वर है। इसकारण गृह में गुरु को लाकर कुलगुरु रूप में भावना करे। तुम्हारे निकट गुरुक्रम का वर्णन किया। अत्यन्त यत्न सहित इसको गुप्त रक्खै। जिस किसी को प्रदान न करे। वैष्णव, शक्तितन्त्र अथवा गाणपत्य में अपने गुरुका ध्यान करके फिर गुरु चतुष्टय की पूजा करके देवयजन में प्रवृत्त होना चाहिये। किसी प्रकार भी संकोच न करे नमस्कार करने के पीछे श्रीमहादेवी अम्बाकी श्री पादुका पूजकर गुरुपात्र स्थित अमृत से तीनवार वा एकवार तर्पण करे। इसप्रकार महादेवानंद नाथ गुरुकी पादुका में नमस्कार पूर्वक पूजा करके पूर्ववत् देव पूजा और तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार क्रमानुसार विधि से गुरु पंक्ति त्रयकी पूजा करके, मान वौघान्तस्थ गुरु, गुरुके गुरु और तिसके गुरुकी पूजा करनी कर्त्तव्य है। पूर्ववत् तर्पण भी करे। फिर रश्मिवृंद देवताओं की पूजा में प्रवृत्त होना चाहिये। यथा—वाह्य में त्रिकोण के सन्मुख ओंकार

पूजयामि नमः । इति पाद्यादिभिः संपूज्य योगिनीपात्रामृतेन तत्त्वमुद्रया तर्पयेत् । एवं देव्या वामे ओं कपालिनीं दक्षे कुल्लां तदन्तास्त्रिकोणे ॐ कुरुकुल्लां ॐ विरोधिनीं ॐ विप्रचित्ताम् । तस्यान्तस्त्रिकोणे ॐ उग्रां ॐ उग्रप्रभां ओं दीप्तां तदन्तस्त्रिकोणे ओं मात्रां ओं मुद्रां ओं मितां पाद्यादिना त्रिः संपूज्य पूर्ववत्तर्पयेत् । ततोऽष्टदलपद्मे पूर्वादिक्रमेणाष्टशक्तीः पूजयेत् । यथा ओं आं ब्रह्माण्याः श्रीपादुकां पूजयामि नम इति पाद्यादिभिः संपूज्य तर्पयेत् । अग्नौ ओं ईं नारायणीं दक्षिणे ओं ऊं माहेश्वरीं नैर्ऋत्यां ओं ॠं चामुण्डां वारुणे ओं ॡं कौमारीं वायौ ओं ऐं अपराजिताम् उत्तरे ओं औं वाराहीम् ईशे अं अः नारसिंहीम् पूर्ववत् संपूज्य तर्पयेच्च तदुक्तं श्रुतौ द्वितीयचतुःषष्ठ्यष्टादशद्वादशचतुर्दशषोड़शस्वरभेदेन प्रथममेव प्रणवेण आवाहनञ्च तेनैव पूजनं विदुः ।

कुमारीकल्पेऽपि ।

ब्रह्माद्याः पूजयेत् पत्रे पत्राग्रे भैरवान् यजेत् । लोकपालांस्तथा वाह्ये तदस्त्राणि च तद्वहिः ॥

उच्चारण करके कालीकी श्रीपादुका पूजताहूं नमस्कार' कह इसप्रकार पाद्यादि द्वारा पूजाकर तत्वमुद्रा की सहायता से योगिनी पात्रस्थ अमृत द्वारा तर्पण करै इसप्रकार देवीके वाममें कपालिनी, दक्षिणमें कुल्ला, तदन्तर्वर्त्ती त्रिकोण में कुरुकुल्ला, विरोधिनी और विप्रचित्ता, तिसके अन्तस्थ त्रिकोण में उग्रा उग्रप्रभा और दीप्ता तिसके अन्तस्थ त्रिकोण में मात्रा मुद्रा और मिता, इन सब देवियोंकी पाद्यादिसहित ओंकार समुच्चारण करनेके पीछे पूर्ववत् तर्पणमें प्रवृत्त होना चाहिये । अनन्तर अष्टदल पद्ममें पूर्वादि क्रमसे अष्टशक्तिकी पूजा करे । यथा—'ओं आं ब्रह्माणी इत्यादि' श्रुति में भी कहा है—दो, तीन, चार, छै, आठ, दश, बारह, चौदह वा सोलह स्वर—भेद से प्रथमही प्रणव द्वारा आवाहन और पूजा करनी चाहिये । कुमारीकल्पमें भी कहाहै, पत्र में ब्रह्मादि की, पत्रके अग्रमें भैरवादिकी, बाहर समस्त लोकपालोंकी और उसके बाहर उनके सब अस्त्रोंकी पूजा करनी चाहिये ॥

अथ भैरवाः। यथा ज्ञानार्णवे।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधश्चोन्मत्तभैरवः। कपाली भीषण श्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः॥

एषां मंत्रो यथा।

ह्रस्वार्णा विन्दुसंयुक्ता वाङ्मायापूर्वभूषिता। इति। अत्र प्रयोगः। पूर्वादिशामावर्त्तेन ऐं ह्रीं अं असिताङ्ग भैरव श्रीपादुकां पूजयामि नमः ऐं ह्रीं इं रुरुभैरव ऐं ह्रीं उं चण्ड भैरव ऐं ह्रीं ऋं क्रोधभैरव ऐं ह्रीं लृं उन्मत्तभैरव ऐं ह्रीं ए क-पालिभैरव ऐं ह्रीं ओं भीषणभैरव ऐं ह्रीं अं संहारभैरव पूज येत्तर्पयेच्च। ततो भूपुरे इन्द्रादिलोकपालान् यथा पूर्वादितः नां इन्द्र श्रीपादुकां एवं वां वह्नि यां यम क्षां निर्ऋति वां वरुण यां वायु शां कुवेर हां ईशाननिर्ऋति वरुणयोर्मध्ये ह्रीं अनन्त इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणः श्रीपादुकामित्यादि। तद्बहिः तदस्त्राणि पूजयेत्तर्पयेच्च। तथा वं वज्र श्रीपादुकाम्। एवं शं शक्ति। दं दण्ड। खं खड्ग। पां पाश। अं अंकुश। गं ग दा। शूं शूल। पं पद्म। चं चक्र श्रीपादुकामित्यादि अथैवं

अब भैरव गणों का वृत्तान्त लिखा जाता है। ज्ञानार्णव में कहा है, अ-सिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उत्तम, कपाली, भीषण, और संहार, यह आठ भैरव हैं, इनका मंत्र यथा—प्रथम वाग् वीज अर्थात् 'ऐं' और माया वीज अर्थात् "ह्रीं" प्रयोग करके फिर विन्दु अर्थात् अनुस्वार युक्त ह्रस्व वर्ण अ-र्थात् अ ई, इत्यादि संयुक्त करे, प्रयोग यथा—पूर्व्वादि वामा वर्त्तमें "ऐं ह्रीं अ" इत्यादि विधान से समस्त भैरव की पूजा और तर्पण करके भूपुरमें इन्द्रादि समस्त लोक पालोंकी पूजा करे। यथा—"नां इन्द्र श्रीपादुका इ-त्यादि"। अनन्तर उनके सब अस्त्रोंकी पूजा करै। यथा—"वं वज्र श्री-पादुकां इत्यादि"। अनन्तर इस प्रकार क्रमानुसार अनुलेपन, गन्ध, पुष्प,

क्रमेण सर्वाहृति देवतानुलेपनगन्धपुष्पधूपदीपद्रव्यादिभिः संपूज्य त्रिः सकृद्वा पूजयेत् तर्पयेच्च ।

तदुक्तं कुलार्णवे ।

त्रिवारं तर्पयेद्वापि सकृद्वापि यथेच्छया ।

कालीतन्त्रे ।

सर्वासामपि दातव्या बलिपूजा तथैव च ।

अनुलेपनकं गन्धं धूपदीपौ च पालकम् । त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्त्तव्या सर्वासामपि साधकैः ॥

अतएव सर्वासां बलीनां शक्तीनां पूजने त्रिवारमवश्यमेव दर्शयेत् । ततो देव्या अस्त्रं पूजयेद् यथा । देवीवामोर्द्ध्वे हस्ते खं खड्गम् अधो मुं मुण्डं दक्षोर्द्ध्वे अं अभयम् अधोवं वरं पूजये त्तर्पयेच्च । ततः षड़ङ्ग विन्यस्य पूर्ववद्देवीं ध्यात्वा गन्धपुष्पाक्षतकुसुमधूपदीपं दत्त्वा पूर्ववद्घण्टां वादयन् धूपं दीपं दर्शयेत् । ततः पानीयादिद्रव्यं दत्त्वा पूर्ववन्नैवेद्यादिकं निवेद्य त्रिस्तर्पयेत् । योन्यादिमुद्रां दर्शयेत् । ततः पुष्पा-

धूप, दीप, और द्रव्यादि द्वारा सब आहूति देवताओं की पूजा करके तीन वार वा एक वार पूजा और तर्पण करै । कुलार्णव में इसी प्रकार कहा है । यथा—तीन वार वा एक वार जैसी इच्छा हो तर्पण करे । काली तंत्र में कहा है सब को वलि, पूजा, अनुलेपन, गन्ध, धूप, और दीप प्रदान एवं तीन तीन वार पूजा करे । अनन्तर देवीके अस्त्रकी पूजा करनी चाहिये । यथा—देवीके वाम और ऊर्द्ध हस्त में "खं" होने से खड्गकी, अधोभाग में 'मुं' होनेसे मुण्ड की, दक्षिणहस्त के ऊर्द्ध में 'अं' होने से अभय की और अधोभाग में 'वं' होने से वरकी पूजा और तर्पण करै । फिर षडङ्गविन्यास करके पूर्वकी समान देवी का ध्यान, गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुसुम, धूप और दीपदान एवं पूर्ववत् घण्टा बजाकर धूप, दीप दिखानी चाहिये । अनंतर पानी आदि द्रव्यदान करके

ञ्जलित्रयेण पञ्चभिर्वा देवीं सायुधसपरिवारमहाकालसहित-श्रीपादुकां पूजयामि नम इति संपूज्य त्रिस्तर्पयेदिति।

कालीतन्त्रेऽपि।

एवं पूजां पुरा कृत्वा मूलेनैव यथाविधि। नैवेद्यादीन् यथाशक्त्या दद्याद्देव्यै पुनः पुनः॥ ततो वै दशवारन्तु दीपं दत्त्वा च साधकः। पुष्पादिकं पुनर्दद्यान्मूलेनैव यथाविधि॥

कुमारीकल्पेऽपि।

ततो नीराजनं कुर्य्यात् दशवारं प्रदीपकैः।

अस्यार्थः आरात्रिकविधिना दीपान् प्रज्वाल्य देवतामस्तकान्तं नीत्वा परिभ्राम्य नीराजनं कुर्य्यादित्थं दशधा। अरात्रिकविधानन्तु श्रीतत्त्वचिन्तामणावनुसन्धेयम्। अथ पञ्चमाद्यैर्देवीं परितोषयेत्। तदुक्तम्।

पूजयेच्च महादेवीं सुरामांसझसादिभिः। अन्नैर्नानाविधैश्चापि तोषयेत् साधकोत्तमः॥

अथ मुण्डमालातन्त्रे। सुरादानप्रशंसा।

सुरादानेन देवेशि! महायोगीश्वरो भवेत्। सुरा तु त्रि-

पूर्ववत् नैवेद्य इत्यादि निवेदन और तीनवार तर्पण करे तिस काल में योन्यादि मुद्रा दिखानी चाहिये। अनन्तर तीन वा पांचवार पुष्पाञ्जलि दे देवीकी यथोक्त विधान से पूजाकर तीनवार तर्पण करे काली तंत्र में भी कहा है, इस प्रकार पूजा करके मूलमंत्रसे यथाविधि देवीके उद्देश में यथा शक्ति नैवेद्यादि वारम्वार निवेदन करे। अनन्तर दशवार दीपदान करके मूलमंत्रानुसार ही यथाविधि पुष्पादि प्रदान करे। कुमारी कल्पमें भी कहा है, अनन्तर प्रदीप द्वारा नीराजन करना चाहिये। तदनन्तर पंच मकारादि द्वारा देवी का परितोष करे। जैसा कहा है। यथा—हे देवि! महादेवी पार्व्वतीकी मद्यमांस और मत्स्यादि अनेक प्रकार अन्न द्वारा पूजा और उन को संतुष्ट करके इत्यादि। मुण्डमाला तंत्रमें सुरादानकी प्रशंसा करी है।

विधा देवि ! स्फाटिकी डाकिनी तथा ॥ काञ्जिकी-स्फाटिकीदाने धनवृद्धिरनुत्तमा । डाकिनीदानमात्रेण वैश्यः सर्वो भवेत् ध्रुवम् ॥ काञ्जिकीसुरया देवि ! योऽर्चयेत् परमेश्वरीम् । गुटिकाञ्जनसम्भारिमारणोच्चाटनादिभिः ॥ महासिद्धीश्वरो भूत्वा वशेत् कल्पायुतं दिवि । अर्घ्ये दत्ते महेशानि ! महासिद्धिरनुत्तमा ॥

अथोत्तरे त्रिकोणमालिख्य मांसतिलरक्तपुष्पभक्तानि एकीकृत्य तत्र संस्थाप्य ओं ह्रीं श्रीं दक्षिणायै कालिकायै स्वाहा एष बलिर्नम इति उत्सृज्य नैर्ऋत्यां धारयेत् ।

तदुक्तम् । पूजान्ते भोजनादौ वा बलिंदद्याच्च साधकः इति। बलिमुत्थाप्य नैवेद्यं नैर्ऋत्यां दिशि धारयेत् ॥

ततः प्राणायामादिकं कृत्वा काम कलां विभाव्य शिरसि गुरुं ध्यात्वा हृदि देवीं भावयन् मनसा अष्टोत्तरसहस्रं

यथा—हे देवेशि ! सुरादान करने से महा योगीश्वर होता है । हे देवि ! सुरा तीन प्रकार है यथा स्फाटिकी, डाकिनी और काञ्जिकी, स्फाटिकी सुरादान करने से अनुत्तम धन वृद्धि और डाकिनी दान करने से समस्त वशीभूत होते हैं जो व्यक्ति काञ्जिकी सुरा द्वारा परमेश्वरि की पूजा करता है, वह महा सिद्धीश्वर होकर अयुतकल्प स्वर्ग में वास करता है हे महेशानि ! अर्घ्यदान करने से अनुत्तम महासिद्धि लाभ होती है । अनन्तर उत्तर में त्रिकोण लिखकर मांस, तिल, रक्तपुष्प, भक्त यह सब एकत्र करके उस में स्थापन और यथोक्त मंत्रसे उत्सर्जन पूर्वक नैर्ऋत कोण में धारण करे । जैसा कहा है, पूजाके शेष में वा भोजनके आदि में महेश्वरि को बलि प्रदान करनी चाहिये । अनन्तर उत्कृष्ट बलि उत्थापित करके नैर्ऋत दिशा में नैवेद्य धारण करे । तदनन्तर प्राणायामादि करके, कामकला विभावन, शिर में गुरुका ध्यान, हृदय में देवी की चिन्ता रहस्यमाला, वा करमाला अथवा वर्णमाला द्वारा मन मन में अष्टोत्तर सहस्र जप और पुनर्वार प्राणायाम

रहस्यमालया वर्णमालया करमालया वा प्रजप्य पुनः प्राणायामं विधाय अर्घ्यजलं पुष्पादिकं गृहीत्वा ।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरि ॥

इत्यनेन तेजोमयं जपफलं देव्या दक्षहस्ते समर्पयेत् ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

ततः सावहितो मन्त्री गुरुं नत्वा शिरःस्थितम् । देवीं ध्यात्वा चाष्टोत्तरसहस्रं प्रजपेन्मनुम् ॥ तेजोमयं जपफलं देव्या हस्ते समर्पयेत् । गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वामिति मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥

अथ रहस्यमाला यथा तदुक्तं कालीतंत्रे ।

दन्ताक्षमालया देवि ! राजदन्तेन मेरुणा । प्रजपेदित्यर्थः

तस्य द्वादशपटलेऽपि ।

दंतेन कालिकायास्तु पूर्वोक्ता भुवि दुर्लभा ।

सहित अर्घ्य जल और पुष्पादि ग्रहण पूर्वक तेजोमय जप फल, देवी के दक्षिण हाथमें समर्पण करै । समर्पण करने के समय इस प्रकार कहना चाहिये । हे देवि ! तुम गुह्यादिगुह्य गोप्ता हो । मेरा कियाहुआ यह जप ग्रहण करो । इसके प्रभावसे मुझको सिद्धि प्राप्त हो, काली तंत्रमें भी कहा है, अनन्तर साधक सावधान होकर मस्तक में गुरुको नमस्कार और देवी का ध्यान करके अष्टोत्तर सहस्रबार मंत्र जप और तेजोमय जप फल देवीके दक्षिण हाथ में समर्पण करै । तिसकाल गुह्याति गुह्य गोप्ता इत्यादि मंत्र कहना चाहिये ।

अब रहस्यमालाका वृत्तान्त लिखते हैं । कालीतंत्र में कहा है, दन्त और अक्षमाला राजदन्त और मेरु द्वारा जप करै दंतमाला अत्यंत दुर्लभ है ।

इति मुण्डमालायांच ।

नाड़ीभिर्ग्रथिता माला महासिद्धिप्रदा भवेत् ।

तत्रैव सर्वशाक्तैः ।

नवांगुल्यास्थिमाला च ग्रथिता पर्वभेदतः । सर्वसिद्धिप्रदा मोक्षदायिनी वरवर्णिनी ! ॥ नाड़ीसंग्रथनं कार्य्यं रक्तेन वाससा तथा । सदा गोप्या प्रयत्नेन मातुश्च जारवत् प्रिये ! ॥

अथ वर्णमाला यथा । विशुद्धेश्वरमहातन्त्रे ।

मालाविधानं परमं शृणु पार्वति ! तत्त्वतः । येनानुष्ठित मात्रेण मन्त्रः सिध्यन्ति तत्क्षणात् ॥ अनुलोमविलोमेन मन्त्रं जप्त्वा विधानतः । मन्त्रेणान्तरितं वर्णं वर्णेनान्तरितं मनुम् ॥ कुर्य्याद्वर्णमयीं मालां सर्वमन्त्रप्रदीपनीम् । चरमार्णं मेरुरूपं लङ्घयेन्न कदाचन ॥ रहस्यमेतत् परमं मयोक्तं ते यशस्विनि ! । त्वया गुप्ततरं कार्य्यं नाख्येयं यस्य कस्य चित् ॥

इसके द्वारा कालिकाका जप करै । मुण्डमाला में कहा है, नाड़ी द्वारा ग्रथित माला महासिद्धि विधान करती है । उस में ही लिखा है हे वर वर्णिनि ! नवांगुलि परमित अस्थिमाला सर्व्वसिद्धि प्रदान और मोक्ष विधान करती है रक्तवस्त्र द्वारा नाड़ी संग्रथन करना चाहिये । जननी के उपपतिके समान सर्व्वदा यत्नपूर्वक इसको गुप्त रक्खे ।

वरनमाला यथा—विशुद्धेश्वर महातंत्र में कहा है, हे पार्व्वती ! यथायथ विधानसे मालाविधान श्रवण करो । यह अतीव श्रेष्ठ विषय है । इसके अनुष्ठान मात्र से ही तत्काल सब मंत्र सिद्ध होते हैं । मंत्रदाता के विभेद अनुसार अनुलोम विलोम क्रमसे मंत्रद्वारा वर्णको और वर्ण द्वारा मंत्रको अंतरित करके 'वर्णमयीमाला बनावे । इसके द्वारा सम्पूर्ण मंत्र अनुप्राणित होते हैं । मेरुरूप चरम वर्णका कभी उल्लंघन न करै । हे यशस्वनि ! मैंने तुम्हारे निकट यह परम रहस्य कीर्त्तन किया । तुम इसको अत्यन्त गुप्त रक्खो ।

मतान्तरमुक्तं यामले यथा ।

सबिन्दुवर्णं मुच्चार्य्य पश्चात् मन्त्रं जपेत् सुधीः । क्षमेरुकं जल्पयित्वा जपेत्तन्नातिलङ्घयेत्॥ अनुलोमविलोमस्थक्लृप्तया वर्णमालया । जपेन्मेरुं समाश्रित्य लङ्घनं तस्य नाचरेत् ॥ अष्टोत्तरजपादादौ वर्गाष्टकं प्रयोजयेत् ।

अकचटतपयश इत्ययं चाष्टवर्गः ।

मुण्डमालायाञ्च ।

मेरुहीना या माला मेरुलङ्घा च या भवेत् । अशुद्धातिप्रकाशाच्च सा माला निष्फला भवेत् ॥

अथ करमाला यथा ।

तदुक्तम् । वृहत्श्रीक्रमे ।

तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत् । अनामामास्त्रयं पर्व तर्जनीमूलपर्वणि ॥ जपेदित्यर्थः ।

मुण्डमालायाञ्च ।

अत्रांगुलिजपं कुर्य्यात् सांगुष्ठांगुलिभिर्जपेत् । अंगुष्ठेन

जिस किसीको प्रदान न करना यामल में अन्य प्रकार कहा है यथा—सिंदूर सहित वर्णोच्चारण पूर्व्वक फिर मंत्रका जप करै क्षरूपमेरुजल्पन पूर्व्वक जप करना चाहिये । उसको उल्लंघन न करै । मेरु अर्थात् क्षकार आश्रय करके अनुलोम विलोम का क्रमानुसार जप करै, उनको उल्लंघन न करै । आदि में अष्टवर्ग अर्थात अ, क, च, ट, त, प, य, श, प्रयोग करके अष्टोत्तर जप करै । मुण्डमाला में कहा है. मेरुहीनमाला जिसप्रकार अशुद्ध होने से निष्फल होती है, मेरुलंघा मालासे भी इसी प्रकार कोई फल लाभ नहीं होता।

करमाला यथा—वृहत् श्रीक्रम में कहा है. जो व्यक्ति तर्जनी के अग्र में वा मध्य में जप करता है वह पाप करता है । अपने तीन पर्व कनिष्ठा के तीन पर्व मध्यमा के तीन पर्व और तर्जनी का मूल पर्व, यह सबही जप में प्रसिद्ध हैं । मुण्डमाला में कहा है—अंगुली द्वारा जप करै । अंगुष्ठ द्वारा

विना कर्म कृतं तदफलं भवेत् ॥ आरभ्यानामिकामध्यात् प्रादक्षिण्यक्रमेण तु । तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला विधीयते मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन् अनामामूल पर्वतः । मेरुलङ्घनदोषात्तु अन्यथा जायतेफलम्॥मध्यमा त्रितयाग्राह्या अनामामूलमेव च । अनामामध्यपर्वान्नि मेरुं कृत्वा न लंघयेत् ॥ तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत्तु भ्रमान्नरः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

हंसपारमेश्वरेऽपि ।

पर्वद्वयमनामायाः परिवर्त्तेन वै क्रमात् । पर्वत्रयं मध्यमायास्तर्जन्येकं समाहरेत् ॥ शक्तिमाला समाख्याता सर्वतंत्र प्रदीपिका । नित्यं जपं करे कुर्य्यात् न तु काम्यं कदाचन ॥

मुण्डमालातन्त्रे च ।

जपं नित्यं करे कुर्य्यात् न तु काम्यप्रबोधनात् ।
अयं क्रमो निशायां करणीयः ।

जप करना चाहिये । अंगुष्ठ के बिना अनुष्ठित कर्ममात्रही विफल होता है । अनामिका के मध्य से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रमसे तर्जनी के मूल पर्यंत करमाला विहित होती है । अनामा के मूल पर्व में मेरुकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये । मेरु के उलंघन करने से उस दोष से विपरीत फल संघटित होताहै । मध्यमा त्रितय और अनामाका मूलपर्व ग्रहण करे. अनामा के मध्य पर्व को मेरु करके उलंघन न करे । जो व्यक्ति भ्रम के वश होकर तर्जनी के अग्र और मध्य में जप करताहै. उसकी आयु, विद्या, यश, और बल यह चार नष्ट होते हैं । हंसपरमेश्वर में भी कहा है । परिवर्त्तन द्वारा क्रमानुसार पर्व्वद्वय. मध्यमा के तीन पर्व और तर्जनीका एक पर्व्व समाहृत करे. इसका नाम सर्वतंत्र प्रदीपिका शक्तिमाला है । करमाला से नित्य जप करे काम्यजप न करे । रात्रि में इसप्रकार अनुष्ठान करे. बलि पूजादि संपूर्ण कर्म सर्वदा रात्रि में कियेजाते हैं । कालीविद्या के प्रसाद से वह अक्षय

बलिपूजादिकं सर्वं निशायां क्रियते यदि । तत्तदक्षयतां याति कालीविद्याप्रसादतः ॥

कुलचूडामणौ च ।

रात्रौ पर्य्यटनं कुर्य्याद् रात्रौ शक्तिप्रपूजनम् । न करोति कथं देवीसाधकः कौलिको भवेत् ॥

तदुक्तं कालिकापुराणे ।

छागन्तु वामतो दद्यान्माहिषं वितरेत् पुनः । दक्षिणे वामतो दद्याद् अग्रतो देहशोणितम् ॥ नाभेरधस्ताद्रुधिरं पृष्ठभागस्य वा प्रिये ! । स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचित्तु साधकः ॥ नोष्ठस्य चिवुकस्यापि नेन्द्रियाणां तथैव च । कण्ठाधो नाभितश्चोर्द्ध्वं हृद्भागस्य प्रयत्नतः ॥ पार्श्वयोश्चापि रुधिरं दुर्गायै विनिवेदयेत् । न च रोगादिकादङ्गान्नान्यघाताच्च भैरव ! ॥ सौवर्णे राजते पात्रे कांस्याधारे च मानवः । निधाय देव्यै दद्यात्तु तदुक्तं मन्त्रपूर्वकम् ॥ यद्यद् हृदयसंजातं मांसं रक्तपिधानतः । तिलमुद्गप्रमाणं वा देव्यै दद्यात्तु भक्तितः ॥ षण्मासाभ्यन्तरे भक्तः काममिष्टमवाप्नुयात् ॥

होते हैं । कुलचूडामणि में कहा है, रात्रि में पर्यटन और रात्रिमेंही शक्तिकी पूजा करै । कालीपुराण में कहा है, वामदिशा में बकरी और भैंसा प्रदान करै, दक्षिण वाम और अग्र में देह का रुधिर प्रदान करे । हे प्रिय ! नाभि के अधोभाग का और पृष्ठ देश का रुधिर प्रदान करै । अपने गात्रका रुधिर कभी प्रदान न करै; होठ, कमर और इन्द्रियगणों का भी रुधिर प्रदान नहीं करना-चाहिये । कण्ठका अधः और नाभि का ऊर्द्ध हृद्भाग का रुधिर और दोनों पार्श्व का रुधिर यत्न सहित देवी दुर्गाको निवेदन करै । रोगादि युक्त अङ्ग का रुधिर कभी प्रदान न करै । स्वर्ण, चांदी अथवा कांसी के पात्र में रुधिर स्थापन पूर्वक अभिमंत्रित करके देवीको दान करै । इसप्रकार रक्तदान

कुमारीकल्पेऽपि ।

नराश्छागास्तथा मेषा महिषाः शशकास्तथा । एतेषां श्चैव रक्तानि देयानि परमेश्वरि ! ॥

मुण्डमालायाञ्च ।

ईषद्रक्तं घृतेनाक्तं निशायां दिवसेऽपि वा । बलिं दद्याद्विशेषेण कृष्णपक्षे शुभे दिने ॥ छागे दत्ते भवेद्वाग्मी मत्स्ये दत्ते कविर्ध्रुवम् । महिषे धनवृद्धिः स्यान्मृगे भोगफलं लभेत् ॥ खगे दत्ते समृद्धिः स्याद् गोधिकायां महाफलम् ॥ नरे दत्ते समृद्धिः स्यादिष्ट सिद्धिरनुत्तमा । ललाटहस्तहृदयाशिरोभ्रुमध्यदेशतः ॥ स्वदेहरुधिरे दत्ते रुद्रदेह इवापरः । चाण्डालबलिदानेन महासिद्धिः प्रजायते ॥

ईषद्रक्तमिति मत्स्यमांसविशेषणं तत्प्रकरणस्थलिखितवचनात् । नरबलिस्तु न विप्रेण विधेयः ।

करने से भक्त दो महीने में इष्ट कामना लाभ करता है। कुमारीकल्प में भी कहा है । नर, बकरी, भेड, भैंसा और खरगोश इन सबकारक्त प्रदानकरै। मुण्डमाला में भी कहा है, दिन में वा रात्रिमें विशेष करके कृष्णपक्ष और शुभ दिन में कुछ एक रक्तवर्ण घृताक्त बलिप्रदान करै । बकरीका दान करने से वाग्मी होता है मत्स्य का दान करने से निश्चय कवि होता है, भैंसे का दान करने से धनवृद्धि होतीहै, मृगका दान करनेसे भोगफल लाभ होता है पक्षी का दान करने से समृद्धि संग्रह होती है । गोधिका का दान करने से महाफल लाभ होता है. नर बली का दान करने से समृद्धि और अनुत्तम इष्टसिद्धि प्राप्त होजाती है । ललाट, हस्त, हृदय, मस्तक, भ्रूमध्य इन सब स्थानों से अपने देह का रुधिर प्रदान करने पर द्वितीय रुद्र होता है । चाण्डाल के बलिप्रदान करने से महासिद्धि सघटित होतीहै । ऊपर जो कुछ एक रक्तवर्ण कहागया वह मत्स्यमांस का विशेषणहै तत् प्रकरण लिखित बचनानुसारही वह प्रमाणित होताहै । ब्राह्मण को नर बलिदेना निसिद्ध है।

तदुक्तं यामले ।

राजा नरबलिं दद्यान्नयान्योऽपि परमेश्वरि ! ।

तत्रापि न तु विप्रेण । ततो वक्ष्यमाणमन्त्रेण देवीं स्तुत्वा प्रदक्षिणत्रयं विधायाष्टप्रणामं कुर्यात्

तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

ततो वै शिरसि पुष्पं दत्वाष्टाङ्गं प्रणम्य च ।

अथ प्रदक्षिणं यथा ।

प्रसार्य्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः । दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं मनसापि च दक्षिणः ॥ त्रिधा च वेष्टयेत् सम्यक् कालिकायाः प्रदक्षिणम् । सर्वान् कामानवाप्नोति पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥

अष्टाङ्गप्रणामो यथा ।

दोर्भ्यां पद्भ्याञ्च पाणिभ्यामुरसा शिरसा दृशा । मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥

यह यामल में कहा है । यथा—हे परमेश्वरि राजागण नरबलि प्रदान करें । और कोई नहीं । इसी से लिखाजाता है, ब्राह्मण के पक्षमें नरबलि दान की विधि सिद्ध नहीं है ॥

अनन्तर वक्ष्यमाण मंत्र से देवी का स्तव और तीन प्रदक्षिणा करके अष्ट प्रणाम करें । जैसा कालीतंत्र में कहा है. अनन्तर मस्तक में पुष्प दान और अष्टाङ्ग प्रणाम करके इत्यादि । तदनन्तर प्रदक्षिणाकरै । यथा–दक्षिण हाथ पसार नम्र शिरा होकर दक्षिण पार्श्व प्रदर्शन पूर्वक मन मनमें कालिका देवी को प्रदक्षिणा के क्रमसे तीनबार वेष्टन करे । तो सम्पूर्ण कामना की सिद्धि और पीछे मोक्षलाभ होती है । अष्टाङ्ग प्रणाम यथा—दो हाथ दो पैर दो पाणि मस्तक वक्ष, चक्षु, मन और वाक्य इन आठ अङ्गो से प्रणाम करनेको अष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं असमर्थ होने से प्रणाम यथा—दो

अशक्तौ प्रणामः यथा ।

बाहुभ्याञ्च सजानुभ्यां शिरसा वचसा धिया । पञ्चाङ्गकः प्रणामः स्यादुदितः परिकीर्त्तितः ॥

ततः सामयिकैः सह पानादिकं कुर्य्यात् । यथा चक्राकारेण पंक्त्याकारेण वा भिन्नासने साधकैः सह शक्तिभिश्च युग्मायुग्मक्रमेण पद्मासनेनोपविश्य सामयिकललाटे चन्दनाक्षतं दत्त्वा शिवशक्तिबुद्ध्या पुष्पं दद्यात् । ततो यदि गुरुस्तिष्ठति तत्रादौ गन्धचन्दनपुष्पादिना तं प्रपूज्य तत् पात्रं तस्मै दत्त्वा प्रणमेत् । गुरोरभावे तत् पात्रं जले क्षिपेत् । ततः पात्रं शुद्धिसहितं शक्त्यै दत्त्वा सामयिकेभ्योऽपि ज्येष्ठानुक्रमेण वीरपात्रात् परामृतं शुद्धिसहितं दद्यात् । ततः सामयिकोऽपि भक्त्या हस्ताभ्यां गृहीत्वा मूलमन्त्रं तदुपरि अष्टधा जप्त्वा पूर्ववत् आनन्दभैरवानन्दभैरव्यौ सन्तर्प्य गुरुं देवताञ्च तर्प-

---

बाहु और दो जानु, मस्तक वाक्य और बुद्धि इन पांच अङ्गोंके द्वारा प्रणाम करने को पञ्चाङ्ग प्रणाम कहते हैं ।

अनन्तर सामयिक गणों के सहित पानादि करै । यथा—चक्राकार वा पंक्तिके आकारमें भिन्नासनमें साधकगणों के सङ्ग युग्म युग्म शक्ति सहित क्रमानुसार पद्मासनपर विराजमान होकर ललाट में चन्दन और अक्षत प्रदान पूर्वक शिवशक्ति बुद्धिसे पुष्प प्रदान करै । अनन्तर यदि गुरु हों, तो आदि में गन्ध, चन्दन और पुष्पादि द्वारा उनकी पूजा और वह पात्र उन को प्रदान करके प्रणाम करना चाहिये । गुरुका अभाव होने से वह पात्र जलमें फेंकदे, फिर शुद्धि सहित पात्र शक्तिको दान करके सामयिकगणों कोभी ज्येष्ठानुक्रम द्वारा वीरपात्रसे परामृत शुद्धि सहित प्रदान करै । अनन्तर सामयिक भी भक्ति सहित दो हस्तद्वारा ग्रहण और उसके ऊपर अष्ट-बार मूलमंत्र जपकर पूर्वकी समान आनन्दभैरव और आनन्द भैरवी दोनों

येत् । ततस्तु शुद्धिं कुर्य्यात् । ततश्चक्रनायकस्तैः सह पात्र-वन्दनञ्चरेत् । श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रामृतप्लावितं क्षेत्राधीश्वरयोगिनीजनगणैः सिद्धैः समाराधितम् । आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं यज्ञात्रिखण्डामृतं वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम् ॥

इति अभिवन्द्य वामहस्तेन पात्रमुत्तोल्य वन्दनं कृत्वा गृह्णामीति गुरुशक्तिसाधकाज्ञां गृह्णीयात् । ते च जुषस्व इति ब्रूयुः ततो मूलाधारात् कुण्डलिनीमिष्टदेवतास्वरूपां विभाव्य गुरुपादुकां स्मृत्वा शिवोऽहमिति विचिन्त्य हस्ताभ्यां पात्रं गृहीत्वा मूलमन्त्रमुच्चरन् कुण्डलिनीमुखे देवतां तर्पयेत् ।

तदुक्तम् उदयाकरपद्धत्याम् ।

कृत्वा मन्त्रतनुं स्मरेद् गुरुपदं देवीकलां चिन्मयीं पश्चात् पात्रवरं परामृतयुतं दीपैर्युतं प्रोज्ज्वलैः । पुष्पादिष्व-

---

का तर्पण करके गुरु और देवताका तर्पण करै । फिर शुद्धि विधानमें प्रवृत्त होना चाहिये । तदनन्तर चक्रनायक उनके सहित पात्र की वंदना करै । तिसकाल इस प्रकार कहना चाहिये, मैं यह कराम्बुगात विशुद्धि प्रद श्री प्रथम पात्र की वंदना करताहूं । श्रीमद्भैरवके शेखर में भलीभांति से शोभायमान चन्द्रके अमृतमें यह पात्र आप्लावित है । क्षेत्रके अधीश्वर योगिनी जनगण और सिद्धगण इस की आराधना करते हैं । यह आनन्दका सागर है । इस प्रकार अभिवंदना करके वाम हाथ में पात्र उठाय और वंदना करके "ग्रहण करता हूं" इस प्रकार कह, गुरु शक्ति और साधक की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिये । वह भी उपयोगकरहैं इस प्रकार कहे । अनन्तर मूलाधार से इष्टदेवता स्वरूप कुण्डलिनी की भावना करके गुरु पादुका का स्मरण अपनी शिवरूप में भावना, दोनों हाथों में पात्र ग्रहण और मूलमंत्र उच्चारण पूर्वक कुण्डलिनी के मुखमें अर्पण करै । उदयाकर पद्धति में जैसा कहाहै, यथा—मंत्रतनु विधानपूर्वक गुरुपद और चिन्मयी देव कलाका स्मरण करके फिर दीप और कज्जल युक्त परामृत समन्वित पात्रवर और पुष्पा-

भिमन्त्रितं च नियतं सम्मोहकञ्चासवं ये संचिन्त्य पिबन्ति यान्ति खलु ते भुक्तिञ्च मुक्तिं पराम् ॥

तन्त्रान्तरे च ।

सिन्दूरतिलकं भाले पाणौ च मदिरारसम् । कृत्वा परगुरुं ध्यायेत् तथा देवीञ्च चिन्मयीम् ॥ इति ।

ततः पात्रमाधारोपरि संस्थाप्य पूर्ववत् पात्रं गृहीत्वा पात्रवन्दनं कुर्य्यात् ।

हैमं मीनरसावहं दयितया दत्तञ्च पेयादिभिः किञ्चिच्चञ्चलरक्तपङ्कजदृशा तस्यै समावेदितम् । वामे स्वादुविशुद्धिशुद्धिकरणं पाणौ विधायात्मके वन्दे पात्रमहं द्वितीयमधुनानन्दैकसंवर्द्धनम् ॥

इत्यादिना पुनस्तेन च क्रमेण परामृतं गृहीत्वा पात्रवन्दनं यथा ।

दि में अभिमंत्रित सम्मोहक आसनकी चिन्ता करताहुआ उसका पान करने से निसन्देह भुक्ति और मुक्ति लाभ होतीहै । तन्त्रांतर में भी कहा है । भालमें सिंदूरका तिलक और पाणिमें मदिरा रस करके, परम गुरु और देवी चिन्मयी का ध्यान करै । अनन्तर आधारके ऊपर पात्र स्थापन और पूर्व की समान पात्र ग्रहण करके, पात्र की वंदना करनी चाहिये । तिसकाल इस प्रकार कहै, मैं अपने वाम पाणि में यह हेममय द्वितीय पात्र विधान पूर्वक वंदना करता हूं । यह मीन रसावह और दयिता कर्तृक प्रदत्त है । पेयादि द्वारा उस दयिता के कमलकी समान नेत्र कुछ एक चचल और रक्तवर्ण हुए हैं । मैंने उसको ही यह प्रदान किया । यह जिस प्रकार विशुद्धि और शुद्धि विधान करता है, इसी प्रकार एकमात्र आनद भी वढाता है । यह कह उसके द्वारा क्रमसे परामृत ग्रहणकर वत्तमान विधानसे तीसरे पात्र की वंदना करे । यथा—मैं इस तीसरे पात्र की वन्दना करता हू । यहसम्पूर्ण वेद और

सर्वाम्नायकलाकलापकलितं कौतूहलद्योतनं चन्द्रोपेन्द्र-महेन्द्रशम्भु वरुणब्रह्मादिभिः सेवितम् । ध्यातं देवगणैः परं मुनिगणैर्मोक्षार्थिभिः सर्वदा वन्दे पात्रमहं तृतीय मधुना स्वात्मावबोधक्षमम् ॥

इति तृतीयपात्रम् ।

मद्यं मीनरसावहं हरिहरब्रह्मादिभिः पूजितं मुद्रामैथुन-धर्मकर्मनिरतं चाराम्लतिक्ताश्रयम् । आचार्य्याष्टकासिन्धु-भैरवकलामांसेन संशोधितं पायात् पञ्चमकारतत्त्वसहितं पात्रं चतुर्थं नमः ॥

इति चतुर्थपात्रम् ।

आधारे भुजगाधिराजवलये पात्रं महीमण्डलं मद्यं स-ससमुद्रवारिपिषितं चाष्टौ च दिग्दन्तिनः । सोऽहं भैरवम-र्चयन् प्रतिदिनं तारागणैरन्वितैः आदित्यप्रमुखैः सुरासुर-गणै राज्ञाकरैः किन्नरैः ॥

चौसठ कला में परिपुष्ट एवं कौतूहल उद्दीपित करता है। इन्द्र, उपेन्द्र, चंद्र, शम्भु, वरुण और ब्रह्मादि इसके सेवक हैं देवगण और मोक्षार्थी मुनिगण सदा इसका ध्यान करते हैं और इस के द्वारा स्वात्म बोध लाभ होताहै। अनन्तर चौथेपात्र की वदना करै यथा—इस पंच मकार में तत्त्व सहित चतुर्थ पात्र और मद्यको नमस्कार है यह सबको पालन करे। हरिहर ब्रह्मादि इस मीनरसावह पात्र और मद्यकी पूजा करते हैं। इस में चार, अम्ल और तिक्त तीनहो हैं। फिर पांचवें पात्र की वंदना करै। यथा—यह आधार अनन्तका कुण्डलन स्वरूप है यह पात्र उसमें मही मण्डल स्वरूप है। यह मद्य उस में सप्त सागरका जल स्वरूप है। मैं, प्रति दिन आज्ञाकर और किङ्कर की समान आदित्यप्रमुख सुरासुरगण और तारा गणों में स्थित होकर भैरव की पूजा करता हूं। यह कहकर पंचम पात्र की वंदना करै। अनन्तर जवत-

इति पञ्चमपात्रम ।

ततो यावन्न चलते दृष्टिर्यावन्न चलते मनः । तावत् पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम् ॥

अथ अस्य प्रमाणं यथा । तदुक्तं रुद्रयामले ।

साधकेभ्यश्च शाक्तेभ्यो दद्यान्निर्माल्यचन्दनम् । सामयिकः समं कुर्य्यात् देवि ! पानादि भक्षणम् ॥

अन्यत्रापि ।

निवसेच्चक्ररूपेण पङ्क्त्याकारेण वा यथा । शक्तियुक्तो वसेद्वापि युग्मायुग्मविधानतः ॥ शिवशक्तिधियासर्वं चक्रमध्ये समर्चयेत् ॥

तन्त्रान्तरे च ।

ततः पुष्पं समादाय गुरोः पात्रे निवेदयेत् । गुरवे च निवेद्याथ भूत्यै दत्त्वा स्वयं हरेत् ॥

भावचूडामणौ च ।

साक्षाद्यदि गुरुर्न स्यात्तदा तोये विसर्जयेत् ॥

क दृष्टि चचल वा मन चलायमान न हो तबतक पान करना चाहिये । इसके पीछे पशुपान होता है ।

इसका प्रमाण यथा—रुद्रयामल में कहा है. शाक्त साधकगणोंको निर्मल चन्दन दान और सम्भाव में पानादि भक्षण कार्य करे । अन्यत्र भी कहा है चक्राकार या पंक्तिके अकारमें शक्तियुक्त होकर, युग्म२ विधानसे उपवेशन और शिवशक्ति बुद्धि से चक्र में सबकी भलीभांति पूजा करे । तन्त्रान्तर में भी कहा है । अनन्तर पुष्प ग्रहण करके गुरु के पात्र में गुरुको निवेदन करके भूति के उद्देश से दान पूर्वक स्वय संग्रह करे । भावचूडामणिमें कहा है. साक्षात् यदि गुर न हों तो जल में विसर्जन करे । पात्रका परिमाण

अत्र पात्रपरिमाणं यथा--तदुक्तं कुलसारे ।

नयनाग्निवाणसंख्यकर्षैस्तु परमेश्वरि । हेतुपात्रं प्रकर्त्तव्य मित्युक्तंकुलशासने ॥ इतोऽप्यधिकपात्रन्तु न कर्त्तव्यं हि साधकैः ॥

कर्ष लौकिकमित्यर्थः तदुक्तं कुलोड्डीसे।

गुञ्जा द्वादशमासः स्यात्तदष्टौ कर्षमुच्यते ॥

अथ उत्तरतन्त्रे ।

अनुज्ञां पुरतो लब्ध्वा गृह्णामीति स्वयं वदेत् । जुषस्वेत्यभ्यनुज्ञातो गुरुणा वा कुलीनकैः ॥ गृह्णीयाच्चस्वयं सिद्धो . बद्धपद्मासनः सुधीः ॥

कुलार्णवे च ।

एकासननिविष्टा ये भुञ्जीरन्नैकभाजने । नैकपात्रे पिबेयुश्च ते यान्ति नरकाधमे ॥

एकपात्र इति सर्वैर्मिलित्वा एकपात्रेण पिबेत् न तु वारं वारं द्रव्यपाने भिन्नं भिन्नं पात्रं कुर्य्यात् । अनुष्ठानापत्तेः ।

यथा—कुलसार में कहा है. हे परमेश्वरि ! एकादश कर्ष परिमाण में हेतु पात्र प्रस्तुत करै कुलशासन में भी इसीप्रकार कहा है. साधक कभी इसकी अपेक्षा अधिक पात्र प्रस्तुत न करै कुलोड्डीस में कहा है. बारगुञ्जा में एक मास. आठ मास में एक कर्ष ॥

उत्तरतन्त्र में कहा है. प्रथम अनुज्ञा लाभ करके 'स्वयं ग्रहण करता हूं' यह कहना चाहिये । फिर गुरु वा कुलीनगण कर्तृक अनुज्ञात हो पद्मासन बन्धन पूर्वक स्वयं ग्रहण करै, कुलार्णव में कहा है. जो एक आसनपर विराजमान है. वह एक पात्र में भी भोजन और एक पात्र में द्रव्यपान न करने से नरकधाम में गमन करते हैं । यहांपर एकपात्र शब्द में यहीसमझना चाहिये.कि सब मिलकर एकपात्रमें पानकरैं. बारम्बार द्रव्य पानके लिये पृथक

न कुर्य्यात् पात्रशङ्करमिति वचनविरोधात् । सम्प्रदायविरोधाच्च ।

विना मद्ये न या पूजा विना मांसेन तर्पणम् । विना शक्त्या च यत् पानं तत् सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ स्वशक्तिं वीरशक्तिं वा दीक्षितां गुरुपूजनीम् । पाययित्वा पिबेद्द्रव्यमिति शाक्तस्य निर्णयः ॥ न पद्भ्यां च स्पृशेत् पात्रं न बिन्दु पातयेदधः । नैकहस्तेन दातव्यं न मुद्रावर्जितं पुनः ॥ नार्चयेदेकहस्तेन न पिबेदेकपाणिना । अन्योन्यवन्दनं कृत्वा पिबेत्तदमृतं पुनः ॥ सव्ये नोद्धृत्य पात्रन्तु मुद्रां कृत्वापसव्यतः । विना सङ्गेन योगेन न कुर्याद्द्रव्यसङ्गतिम् ॥ साधारं नोद्धरेत् पात्रमाधारे च विनिक्षिपेत् । पात्रं न चालयेत् स्थानात् न कुर्यात् पात्रशङ्करम् सशब्दं न पिबेद्द्रव्यं तथैव तं न पूरयेत् । न स्थूलं नैव सूक्ष्मञ्च पात्रं कुर्य्यात् मनोरमम् ॥ उच्छिष्टं न

पृथक् पात्र प्रस्तुत न करैं । क्योंकि पात्र सङ्कर करना ठीक नहीं है. इस वचन के संग विरोध और सम्प्रदाय विरोध भी संघटित होता है । मद्य बिना पूजा मांस बिना तर्पण और शक्ति बिना पान सर्वथा निष्फल होताहै अपनी शक्ति वा वीर शक्ति अथवा गुरुको पान कराकर स्वयं द्रव्यपान करै । यही शक्तिका निर्णय है । पद द्वारा पात्रस्पर्श वा बूंदें नीचे न गिरावे । एक हाथ से कभी न दे. और मुद्राके बिना भी प्रदान न करै । एक हाथ से पूजा वा एक हाथ से पान भी नहीं करना चाहिये । परस्पर की वन्दना करके पुनर्वार वह अमृत पान करै । सव्य हाथ में पात्र लेकर और अपसव्य हाथ से मुद्रा विधान करके द्रव्यपानं करना चाहिये । संग बिना और योग बिना कदापि पान न करै। आधार के सहित पात्र न उठावे आधार मेंही पात्र निक्षेप करै । स्वस्थान से पात्रकी चालना और पात्र संकर न करै । शब्द सहित द्रव्य पान वा शब्द सहित उसका पूर्ण न करै । जो बड़ा भी नहो और छोटा भी. न हो इसप्रकार मनोहर पात्र निर्माण

स्पृशेच्चक्रे कुलद्रव्याणि सुन्दरि ! । बाहिः प्रक्षाल्य च करौ कुलद्रव्याणि दापयेत् ॥ निष्ठीवनमधोवायुं चक्रमध्ये विवर्जयेत् । चक्रमध्ये घटे भग्ने पात्रे च पतिते भुवि ॥ दीपनाशे च शान्त्यर्थे श्रीचक्रं कारयेत् सुधीः । स्वपात्रस्थितहेतुंच न दद्याद्भैरवाय च ॥ दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति योगनी । परीहासं प्रलापंच वितण्डां बहुभाषणम् ॥ औदासीन्यं भयं क्रोधं चक्रमध्ये विवर्जयेत् । नान्योन्यं ताड़येत् पात्रं न पात्रमानयेदधः ॥ गुरुशक्तिसुतानांच गुरुज्येष्ठ कनिष्ठयोः । उच्छिष्टं भक्षयेत् स्त्रीणां नान्योन्योच्छिष्टमर्पयेत् ॥ चक्रमध्ये च नियमं नान्यथा पतनं भवेत् । कनिष्ठानां स्वशिष्याणां दद्याच्चोच्छिष्टमेव हि ॥ दद्यात् स्नेहेन योऽन्येभ्योः स भवेदापदां पदम् ।

अन्यत्रापि ।

शक्त्युच्छिष्टं पिवेद्द्रव्यं वीरोच्छिष्टञ्च चर्वणम् पीत्वा पीत्वा

करे । हे सुंदरि ! उच्छिष्ट हाथ से चक्र मध्यस्थ कुल द्रव्य स्पर्श न करे । बाहिरे हाथ धोकर कुल द्रव्य दान करे । निष्ठीवन और अधोवायु चक्र में इनका व्यवहार न करे । चक्र में घट टूट जाने पर- पात्र गिरजाने पर और दीपक के बुझ जानेपर शान्ति के लिये श्रीचक्र बनाना चाहिये । अपने पात्रस्थ हेतु भैरवको प्रदान न करे । क्योंकि भैरवको प्रदान करनेसे सिद्धि की हानि और योगिनी क्रोधित होती हैं चक्र में यह सब बातें न करे यथा— हास्य, प्रलाप, वितण्डिता बहुत बोलना उदासीनता, भय और क्रोध परस्पर पात्रकी ताडना और पात्रको अधस्थ न करे। गुरु उनकी शक्ति और कन्या गुरुका ज्येष्ठ और कनिष्ठ भ्राता और स्त्रीगणों की उच्छिष्ट भोजन करे । उनको कभी उच्छिष्ट प्रदान न करे। चक्र में इन सब नियमों का पालन करना चाहिये। पालन न करने से पतन होता है। अपने शिष्यके कनिष्ठ होने से उस को उच्छिष्ट प्रदान करे। जो व्यक्ति स्नेह के वश होकर अन्यको प्रदान करता है, वह सम्पूर्ण आपदाओं का आस्पद होता है अन्यत्र भी कहा है शक्ति, और वीरका उच्छिष्ट द्रव्य पान चर्वण और भक्षण करे । वारम्वार

पुनः पीत्वा पुनः पतति भूतले ॥ उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।

ततः शान्तिस्तोत्रं पठेत् । तदुक्तं डामरे ।

पीत्वा पेयं जनैः सार्द्धं शान्तिस्तोत्रं ततः पठेत् । नश्यन्तु प्रेतकुष्माण्डाः नश्यन्तु दूपका नराः ॥ साधकानां शिवाः सन्तु आम्नायपरिपालिनाम् । जयन्ति मातरः सर्वाः जयन्ति योगिनीगणाः ॥ जयन्ति सिद्धिडाकिन्यो जयन्ति गुरुपङ्क्तयः । जयन्ति साधकाः सर्वे विशुद्धाः कौलिकाश्च ये ॥ समयाचारसम्पन्ना जयन्ति पूजका नराः । नन्दन्ति चाणिमासिद्धा नन्दन्ति कुलपालकाः ॥ इत्याद्या देवताः सन्तु तृप्यन्तु वास्तुदेवताः । चन्द्रसूर्य्यादयो देवास्तृप्यन्तु मम भक्तितः ॥ नक्षत्राणि ग्रहा योगाः करणा राशयश्च ये । सर्वे ते सुखिनो यान्तु सर्वा नद्यश्च पक्षिणः ॥ पशवस्तुरगाश्चैव पर्वताः कन्दरायुताः । ऋषयो ब्राह्मणाः सर्वे शान्ति

पान करके पुनर्वार पान करै और पृथिवी में गिरें फिर उठें और फिर पान करें इस प्रकार करने से फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पडता ।

अनन्तर शान्तिस्तोत्र पाठकरना चाहिये । डामर में कहा है । यथा लोकोंके सहित पेय पानपूर्वक यह कह शान्ति स्तोत्र पाठ करै कि प्रेत और सम्पूर्ण कुष्मांड नष्ट हो सम्पूर्ण दूपक लोक भी विनाशको प्राप्त हों. आम्नाय-पथवर्ती साधकगणोंका मंगलहो मातृगणोंकी जयहो. योगिनीगणोंकी भी जयहो. सिद्धि डाकिनीगणों की भी जयहो. गुरु पंक्तिगणोंकी भी जय हो. सर्वथा शुद्धचित्त साधक और कौलिकगणोंकी भी जयहो. सदाचारयुक्त पूजकगणोंकी भी जय हो. अणिमा सिद्ध व्यक्तिगण आनन्द में रहैं. कुलपालगण भी आह्लाद में रहैं. देवतागण अनुकूल हों वास्तुदेवता तृप्त हों. सूर्य चंद्रादि देवगण भी मेरी भक्तिमे तृप्त हों. नक्षत्रगण, ग्रहगण समस्त करण और राशि तृप्त हों. सम्पूर्ण नदी, सम्पूर्ण पक्षी, सम्पूर्ण पशु, और संपूर्ण पर्वत सुख विधान करैं. ऋषिगण और ब्राह्मणगण सब ही सदाशांति सम्पादन करैं, जो भद्रप्रकृति हैं, वह

कुर्वन्तु सर्वदा ॥ शुभा मे विदिताः सन्तु मित्रास्तिष्ठन्तु पूजकाः । ये ये पापधियः स्वभूषणरताः स्वनिन्दकाः पूजने दैवाचारविमत्तनष्टहृदया भ्रष्टाश्च ये साधकाः । दृष्ट्वा च क्रमपूर्वमन्दहृदया ये कौलिका दूषका स्ते ते यान्तु विनाशमत्र समये श्रीभैरवस्याज्ञया ॥ ये द्वेष्टारः साधकानां सदैवाम्नाय दूषकाः । डाकिनीनां मुखे यान्तु तृप्तास्तत्पिशितैस्तु ताः ॥ पशवो नाशमायान्तु मम निन्दाकराश्च ये । द्वेष्टारः साधकानाञ्च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

ततो यथाविधिना शिवशक्तिसमायोगं कृत्वा देवीपादेषु आत्मानं समर्प्य श्रीपात्रमुत्तोल्य देव्या उपरि त्रिधा भ्रामयित्वा मूलमुच्चरन् श्रीदक्षिणकालिके पराङ्मुखार्घ्यं स्वाहा इति अर्घ्यं दत्त्वा तदुपरि पुनः संस्थाप्य संहारमुद्रया देवीं स्वहृदि समानीय श्रीदक्षिणकालिके पूजितासि क्षमस्वेति

मुझे विदित हों. जो पूजक हैं वह मेरे मित्रपक्ष में अवस्थिति करें. जो पाप बुद्धि आत्मम्भरी, स्वनिन्दक दैवाचार विमत्त और नष्टहृदय हैं. इसके अतिरिक्त जो भ्रष्टाचार युक्त है वह साधकगण और जो दूषक हैं वह समस्त कौलिक श्रीभैरव की आज्ञा से इससमय विनाशको प्राप्त हों । जो साधक गणों से द्वेष करता है. आम्नाय की निन्दा करता है वह डाकिनीगणों के मुख में जाय । डाकिनीगण उसका मांस भक्षण करके तृप्ति लाभ करें । समस्त पशु नष्ट हों. जो मेरी निन्दा करै उसका भी विनाश हो और जो साधकगणों से द्वेष करते हैं, वह भी सब श्रीशिव की आज्ञा से नष्ट हों । इसप्रकार शान्ति कवच पाठ करके यथाविधि शिवशक्ति का संयोग विधान और देवी के चरण में आत्माको समर्पण और श्रीपात्र उठाकर देवी के ऊपर तीनवार उसको घुमाय मूलोच्चारण सहित अर्घ्यदान करने के पीछे उसके ऊपर पुनर्वार उसका स्थापन और संहार मुद्रा द्वारा देवीको अपने हृदयमें लाकर "श्रीदक्षिण कालिके ! यह मैंने तुम्हारी पूजाकरी: क्षमाकरो।"

विसृज्य ऐशान्यां मण्डलिकां कृत्वा निर्माल्येन निर्माल्यवासिन्यै नमः इति मण्डले त्रिः संपूजयेत् ॥

तदुक्तं कुमारीकल्पे ।

देवताग्रे तु सम्भोगे देवताप्रीणनं भवेत् । संभोगन्तु परं कृत्वा देवीं हृदि समानयेत् ॥ कृतकृत्यो भवेन्मन्त्री नात्र कार्य्या विचारणा ॥

अथ आत्मसमर्पणमंत्रो यथा ।

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यवस्थया स्वकायेन मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत् कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा । मदीयञ्च सकलं श्रीदक्षिणकालिकाचरणे समर्पित मस्तु । ओं तत् सत् ॥

अथ कालीतन्त्रे च ।

विसृज्य परया भक्त्या सन्निधापनमुद्रया । उद्वास्य हृ-

यह कहकर विसर्जन और ईशानकोण में मण्डलिका बनाकर उसमें निर्माल्य द्वारा तीनबार उनकी पूजा करनी चाहिये । जैसा कि कुमारीकल्प में कहा है, देवता के आगे सम्भोग समय देवता की प्रीति सम्पादन करनी चाहिये. इत्यादि ॥

आत्म समर्पणमन्त्र यथा—आदि अन्त में प्राण बुद्धि देह और धर्माधिकारतः जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में स्वकीय, शरीर, मन, वाक्य, कर्म, हस्त, पद, उदर और शिश्न इनसब के द्वारा जो विचारा है. वा जो कहा है. वा जो किया है. वह समस्त ब्रह्मार्पण हो. स्वाहा । मैं और मेरा सब कुछ श्रीदक्षिण कालिका के चरणमें समर्पण हो । ओं तत्सत् । कालीतन्त्र में भी कहा है. परमभक्ति सहित देवीको विसर्जन पूर्वक सन्निधापनी मुद्रा से हृदय में स्थित कर तन्मय होना चाहिये। पुरश्चरण के समय भी

दये देवीं तन्मयो भवति ध्रुवम् ॥ पुरश्चरणकालेऽपि पूजा चैषा प्रकीर्त्तिता ।

भैरवतन्त्रेऽपि ।

स्वहृदये च वहिर्देवीं समर्प्य विधिवत् पुनः । निर्माल्यं वै शुचौ देशे नैवेद्यं भक्षयेत्ततः ॥

ततः श्रीपात्रामृतं स्वपात्रे कृत्वा स्वीकृत्य भूमौ पात्रं न्युब्जी कृत्य तदुपरि पुष्पं निक्षिप्य पात्रप्रक्षालनं कृत्वा गोपयेत् । तदुक्तम् तन्त्रान्तरे ।

अर्घ्यादिवन्दनमाचर्य्य अर्घ्यामृतं पिवेत्ततः । न्युब्जीकृत्य स्वयं पात्रं तत्र पुष्पं विनिक्षिपेत् । प्रक्षाल्य गोपयेत् पात्रं तत्त्व चिन्तापरो बुधः ॥

ततस्तदमृतस्निग्धभूमौ मायावीजं विलिख्य कनिष्ठांगुलिना तिलकं कुर्य्यादनेन ॥

यं यं स्पृशति पादेन यं यं पश्यति चक्षुषा। स एव दासतां याति यदि शक्रसमो भवेत् ॥

इसीप्रकार पूजा कही गई है, भैरवतंत्रमें भी कहाहै- अपने हृदयके बहिरभाग में देवी को पुनर्वार यथा विधि निर्माल्य अर्पण करके, पवित्र प्रदेश में नैवेद्य भक्षण करे अनन्तर श्री पात्रस्थ अमृत अपने पात्र में करके स्वीकार सहित भूमि में न्युब्ज भावसे रखकर उसके ऊपर पुष्प निक्षेप और पात्र प्रक्षालन पूर्वक गुप्त रक्खे । तंत्रांतर में कहा है । यथा—अर्घ्यादि वंदनाचरण करने के पीछे अर्घ्यामृत पान करे स्वयं पात्र न्यूब्जीकृत करके उस में निक्षेप करना चाहिये । अनन्तर पात्र प्रक्षालन करके तत्त्व चिन्ता परायण हो उस को गुप्त रक्खे । तदनंतर उसी अमृतके संसर्गसे परम शीतल भावापन्न भूमि में माया बीज लिखकर कनिष्ठ अंगुली से तिलक करे । फिर तिलक करके जिस व्यक्तिको पद द्वारा स्पर्श और जिसके प्रति दृष्टिपात करीजाय, वह व्यक्ति इंद्रकी समान होनेपर भी दास होता है । अनन्तर मस्तक में इंद्र लेप

ततो यंत्रलेपं मूर्ध्नि कृत्वा नैवेद्यं सर्वदेवाय साधाकय च दत्त्वा शेषं स्वीकृत्य सोऽहमिति भावयेत् । वाह्यतो वैष्णवाचारपरायणो निःशङ्को यथासुखं विहरेत् ॥

तदुक्तं कुलचूडामणौ ।

ब्रह्मरन्ध्रे गुप्तस्थाने यन्त्रलेपंतु धारयेत् । नास्तिकेभ्यो न पशुभ्यो न मूर्खेभ्यो न वा द्विजे ॥ कुलीनाय च दातव्यं अथवा जलमध्यतः । ततः सोऽहमिति ध्यात्वा वैष्णवाचारतत्परः ॥ हरिनाम्ना जातभावो भात्राखिलविचेष्टितः । चौरवद्विचरेकः सदा संग विवर्जितः ॥

यामलेऽपि ।

नैवेद्यं त्रिपुरादेव्या वांछन्ति विवुधाः सदा । तस्माद्देयं सुरश्रेष्ठ ! ब्राह्मणे वैष्णवेऽपिच ॥ मह्यं शुक्राय सूर्य्याय गणेशाय यमाय च । वह्नये वरुणायापि वायवे धनदाय च ॥ ईशानाय महेशानि ! साधकाय प्रदापयेत् ॥

अत्र त्रिपुरापदमुपलक्षणमिति ।

करके सर्वदेव और साधक को नैवेद्य दान और अवशिष्ट अंश स्वयं स्वीकार पूर्वक अपनपे की शक्तिरूप में भावना और वाहर वैष्णवाचार परायण एवं निःशंक होकर यथासुख में विहार करे । कुलचूड़ामणि में कहा है यथा—गुप्त स्थान ब्रह्मरंध्र में लेप धारण करे । नास्तिक, पशु वा मूर्ख, इनको न दे । कुलीनकोही प्रदान और जलमें निक्षेप करे । फिर अपनपे की शक्तिरूपमें चिंता करके वैष्णवाचारकी समान परायण और हरिनाम में आविष्ट चित्त होकर, समस्त संग छोड़ अकेला चोरकी समान विचरण करे। इसीलिये ब्राह्मण, वैष्णव, मुझे, शुक्र, सूर्य गणेश, यम, अग्नि वरुण, वायु, कुवेर, और साधकको प्रदान करना चाहिये । यहां त्रिपुरा शब्द उपलक्षण मात्रहै सर्वत्र देवीकोही समझना चाहिये । अनन्तर देवीको विसर्जन करने

अथ देवीविसर्जनानन्तरं पानादिकं कुर्य्यात् तदुक्तं कुलार्णवे ।

दिव्यं देव्यग्रतः पानं वीरमेकांतवासिनम् ।

अन्यत्रापि ।

पानन्तु त्रिविधं प्रोक्तं दिव्यवीरपशुक्रमैः ॥ दिव्यं देव्यग्रतो ध्यायेद् वीरं वीरासनस्थितम् । तृतीयन्तु पशोः पानं पाप कृत् शोकमोहकृत ।

उदयाकरपद्धत्याम् ।

असंस्कृतं वृथा पानं संस्कृतं भैरवः स्वयम् । चक्रपूजा विधौ प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं शुभम् ॥ असंस्कृतं पशोः पानं कलहोद्वेगकारकम् । संस्कृतं सिद्धिजनकं प्रायश्चित्तादि दूषणम् ॥ मंत्राणां स्फुरणं तेन महापातकनाशनम् । आयुः

के पीछे पानादि करै । कुलार्णव में कहा है । यथा—देवीके सन्मुख, दिव्य और वीरपान इत्यादि । अन्यत्रभी कहा है, दिव्यवीर औ पशु क्रमानुसार पान तीन प्रकार है । तिनमें देवीके सन्मुख जो पान कियाजाता है, उसका नाम दिव्य पान है, वीरासन स्थित पानको वीर कहते हैं । एवं पशुपान पाप, शोक और मोह उत्पादन करता है । उदयाकर पद्धति में कहा है कि असंस्कृत पान वृथा पान और संस्कृत पान साक्षात् भैरव स्वरूप है । उसको चक्र पूजाविधि में सर्वसिद्धिकर कहते हैं । असंस्कृत पानही पशु पान है । उससे कलह और उद्वेग उत्पन्न होता है । संस्कृत पान सिद्धिदायक है । इस पानसे ही मंत्रादि सबकी स्फूर्त्ति होती है और संपूर्ण महापातक नष्ट होते हैं । संस्कृत पान करके दान करने से जिस प्रकार आयु, श्री कांति और

श्रीकांतिसौभाग्यं भवेत् संस्कृतपानतः नष्टैश्वर्यं खेचरत्वं पतनं विधिवर्जनात् ।

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते श्यामारहस्ये सपर्य्यापर्य्यायस्तृतीयःपरिच्छेदः ॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

अथ स्तुतिः । यामले ।

कर्पूरं मध्यमांत्यस्वरपरिरहितं सेंदुवामाक्षियुक्तं । बीजं ते मातरेतत्त्रिपुरहरवधु ! त्रिः कृतं ये जपंति । तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसंत्येव वाचः । स्वच्छंदं ध्वांतधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम्॥१॥ईशानं सेंदुवामश्रवण

सौभाग्य संचय होता है, असंस्कृत पान से इसी प्रकार ऐश्वर्य भ्रष्ट और पतन होता है ।

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित श्यामारहस्य श्रीपण्डितहरिशंकरकृत भाषाटीकासहित सपर्य्य पर्य्याय नामक तृतीयपरिच्छेद ॥ ३ ॥

अब देवीकी स्तुति वर्णित होती है । यामल में इस प्रकार स्तव लिखाहै । यथा—कर्पूर शब्दका मध्यम अक्षर "पू" और अन्तका अक्षर "र" निकाल ने से जो 'क' और 'र' अवशिष्ट रहते हैं, इनको स्वरहीन करनेस "क्र" इस प्रकार पद सिद्ध होता है । इस "क्र" में दीर्घ ईकार और अनुस्वार मिला ने से "क्रीं" यह बीज निकलता है । हे जननि ! हे त्रिपुर हर गृहिणी । यही तुम्हारा बीज है । जो इस बीजको त्रिगुणित करके जप करता है, सब प्रकार की सिद्धि उसके अंक गामिनी होती है और उसके मुख विवर से भी गद्य पद्यमयी वाणी बराबर निकलती रहती है ॥ १ ॥ ॥ हकारमें रेफ

परिगतं बीजमन्यत्महेशि! द्वंद्वं ते मंदचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित्। जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्नम्बुजाक्षीवृंदं चंद्रार्द्धचूडे! प्रभवति हि महाघोरवाखावतंसे!। २॥ ईशो वैश्वानरस्थः शशधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तं बीजं ते द्वन्द्वमन्यद्विगलितचिकुरे! कालिके! ये जपन्ति। द्वेष्टारं घ्नंति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावं नयन्ति सृक्वद्वंद्वास्रधाराप्रकटितवदने दक्षिणे! कालिकेऽति ३ ऊर्द्धं वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं तथाधः सव्ये चाभीर्वरश्च त्रिजगदघहरे! दक्षिणे कालिके च। जप्त्वैतन्नामवर्णं तव मनुविभवं भावयन्त्ये ततम्व! तेषामष्टौ करस्थाः

दीर्घ ईकार और अनुस्वार मिलाने से 'ह्रीं' यह जो पद बनता है, यह तुम्हारा अन्य एक बीज हैं नितान्त स्वल्पबुद्धि व्यक्तिभी यदि द्विगुणित कर के इस बीजका कदाचित एकवार जप करे, तो वह वृहस्पति को भी जय कुवेर को भी परास्त और कमलकी समान नेत्रवाली स्त्रियोंको भी मोहित करके सबके ऊपर अपना प्रभुत्व प्रचार करने में समर्थ होता है ॥ २ ॥ हे मुक्तकेशि! हे चन्द्रार्द्ध चूडे! हकार का पिछला अक्षर 'र' दीर्घ ईकार और अनुस्वार मिलाने से उपरोक्त तुम्हारा जो 'ह्रीं, नामक बीज उद्धृत होता है। उसको दुगुना करके जो व्यक्ति जप करता है वह विपक्ष पक्ष का नाश और त्रिभुवन के वशीभुत करने में समर्थ होताहै ॥ ३ ॥ तुम दक्षिण अर्थात् सबकेही प्रति अनुग्रह शालिनी हो। और कालिका अर्थात सबकीही सृष्टि स्थिति और लय करती हो। तुम्हारे दोनों होठोंसे एक रुधिर धारा गिरती है। तुम्हारे बाईं ओर के ऊर्द्धहस्त में कृपाण, अधस्थितकर कमलतल में छिन्नमुण्ड. दक्षिण ओर के ऊर्द्धहस्त में अभय और अधस्थ हस्त में वर विराजमान है। तुम्हीं तीनों जगत के पापहरण करती हो। तुम्हीं कालकी पत्नी हो. तुमको कुछभी असाध्य नहीं है। तुम्हारा वदन सर्वदाही उल्लसित और सर्वदा प्रसन्न भावयुक्त है। जो तुम्हारा नाम जपकर तुम्हारे मंत्र विभव की भावना करता है, अणिमादिक

प्रकटितवदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ॥ ४ ॥ वर्गाद्यं वह्नियुक्तं विधुरतिकलितं तत्त्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुग्मंच पश्चात् स्मितमुखि! तथधष्टद्वयं योजयित्वा । मातर्ये येजपंति स्मरहरमहिले! भावयंतःस्वरूपं ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशःकामरूपा भवंति ॥ ५ ॥ प्रत्येकं वा त्रयं वा द्वयमपि च परं वीजमत्यंतगुह्यं स्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयंतो जपंति। तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमला वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे वाग्देवी छिन्नमुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठि पीनस्तनाढ्ये ॥ ६ ॥ गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम् । श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाका-

आठसिद्धि उसके अधिकारमें होती हैं॥४॥तुम सदाही हास्यमुखी हो। तुम्हीं त्रिभुवनकी जननी हो । तुम्हीं स्मरहरा अर्थात् तुम शरण होतेही मनुष्यका दुःखादि हरण करती हो । तुम्हीं महिला अर्थात् सबकी पूजनीय और सेवनीय हो । जो भक्तिभाव से तुम्हारे स्वरूपकी भावना करके ' क्रीं क्रीं क्रीं हुं हु ह्रीं ह्रीं स्वाहा, तुम्हारे इस बीज का जप करता है, वह कमलदल की समान लक्ष्मीकी लास्य लीलास्थली और कामरूप होता है ॥ ५ ॥ तुम्हीं स्वप्रकाश स्वरूप हो । जो सर्वदा ध्यान परायण हो तुम्हारे नाम के सहित योजना कर उल्लिखित समस्त बीज में एक, दो, तीन अथवा समस्त बीज का जप करता है, कमला उसके नेत्ररूपी अरविंद में और वाग्देवी उसके वदनरूपी चन्द्रबिम्ब में सर्वदा विहार करती हैं । तुम्हारा कंठ देश मुण्डमाला से अत्यन्त विलसित हुआ है । तुम्हीं दैत्योंका संहार करने के समय प्रलयकालीन महामेघ की समान घोर गंभीर शब्द करती हो ॥ ६ ॥ तुम्हीं सबको जन्म देती हो । समस्त शवके बाहु परम्परा में विरचित कांचीदाम के संसर्ग से तुम्हारे नितम्ब बिम्ब अतिशय सुशोभित हुए हैं । तुम्हीं दिग्वसना और त्रिनयना, एवं त्रिभुवनकी विधात्री और महाकाल के सहित प्रकृति पुरुषगत लीला विहार में आसक्त हो । जो व्यक्ति श्मशानस्थित तल्प और शव हृदय में आरोहण करके तुम्हारे इस रूपका ध्यान करता

स्वसुरतप्रसक्तां त्वां ध्यायन् जननि ! जड़चेता अपि कविः ॥ ७ ॥ शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः परं संकीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम् । प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरि सुरते नातियुवतीं सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः ॥ ८ ॥ वदामस्ते किंवा जननि ! वयमुच्चैर्जड़धियो न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम् । तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माकमपि ते तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुबोधः समुचितः ॥ ९ ॥ समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवतीरताशक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम् । विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः समस्ताः सि-

---

है, वह जडबुद्धि होनेपर भी कवि होता है ॥ ७ ॥ भयंकर प्रकृति समस्त शिवागण तुमको चारोंओर से घेरे रहताहैं । तिस अवस्थामें तुम शवमुण्ड और अस्थि परम्परा में परिवृत अति विस्तृत चिता भूमि में प्रवेश कर के संतुष्ट हृदय से विपरीत विहार में प्रवृत्त होती हो । तुम्हारा यौवन किसी काल में भी लयको प्राप्त नहीं होता । जो व्यक्ति सर्वदा तुम्हारे इस रूपकी भावना करता है, उसका किसीकाल में, किसी देश में, और किसी अवस्थामें भी पराभव नहीं होता ॥ ८ ॥ हे जननि ! जडबुद्धि मैं तुम्हारे विषय में अधिक और क्या कहूं ? मेरी बात दूर रहै स्वयं ब्रह्मा, महादेव और वासुदेव भी तुम्हारे विषय में विशेष किसीप्रकार अवगत नहींहै । हे तमोरूपिणी ! तथापि तुम्हारी भक्ति मुझको मुखरित करती है इसीलिये मैं न जानकर भी क्या कहनेको था और क्या कहकर तुम्हारा स्तव करताहूं । अतएव मुझको क्षमा करना चाहिये । कहूं क्या मैं पशुकी समान हूं । मेरे प्रतिरोष प्रकाश करना उचित नहीं है ॥ ९ ॥ तुम्हारा भक्त यदि रात्रिमें पीन श्रोणि पयोधरा नव यौवन शालिनी रमणी के सहित निधुवनलीला रसमें आसक्त और विवस्त्र होकर तुम्हारा ध्यानवधारणाके पीछे तुम्हारे मंत्रका जप करता है, तो समस्त सिद्ध मण्डली उसके वशीभूत होती है और वह व्यक्ति कवि

द्धोघाः भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥ १० ॥ समाः सुस्थी-
भूतां जपति विपरीतां यदि सदा विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नति-
शयमहाकालसुरताम् । तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य
विदुषःकराम्भोजे वश्याःस्मरहरवधु! महासिद्धिनिवहाः ११॥
प्रसूते संसारं जननि! जगतीं पालयति च समस्तं क्षित्यादि
प्रलयसमये संहरति च। अतस्त्वं धातापि त्रिभुवनपतिःश्री
पतिरपि महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किंस्तौमि भवतीम्॥१२॥
अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्वाणनिवहान् विमूढास्ते मातः!
किमपि न हि जानन्ति परमम्।समाराध्यामाद्यां हरिहरविरि-
ञ्च्यादिविबुधैः प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ॥
॥ १३ ॥ धरित्रीकीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं त्वमेका

होकर चिरकाल जीवित रहता है ॥ १० ॥ तुम साक्षात् संहार रूपसे सब को हरण और मायारूप से सबका बंधन करती हो । तुम्हीं महाकालके सहित विपरीत अर्थात् विशिष्ट विधान से संगता होकर समस्त संसार में अनुकूल विधानसे विहार करती हो । जो व्यक्ति स्वस्थ चित्तमें एकवत्सर सदा विशेष प्रकारसे चिंता करके तुम्हारा ध्यान धारणा करताहै इस पृथ्वी में विहार करते करते ही अणिमादिक समस्त महासिद्धि उस विद्वान् साधकके कर कमल में वश्य होती हैं ॥ ११ ॥ हे जननि! तुमने ही इस जगत् को उत्पन्न किया है, तुम्हीं इसका पालन करती हो और तुम्हीं इसका प्रलयके समय संहार करती हो। अतएव तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्ही विष्णु, और तुम्हीं महादेव हो । फलतः सबकुछ तुम्हीं हो । अतएव मैं और तुम्हारा क्या स्तव करूं ॥ ? ॥ १२ ॥ हे जननि ! अनेक व्यक्ति तुमको त्यागकर अन्यान्य देवतागणों की उपासना करते हैं, वह नितांतमोहाच्छन्न हैं इसी लिये तुम जो सबसे श्रेष्ठ हो, इस बातको वह नहीं जानते । जो हो, मैं अपनी इच्छासे एकमात्र तुम्हारीही शरणहूं। क्योंकि मैं जानता हूं, स्वयं हरि, हर और ब्रह्मादि प्रमुख देवतागणभी केवल तुम्हारीही आराधना करतेहैं और यह भी जानता हूं कि केवल तुम्हीं रति, रस, परमानंद और समस्त रसकी निलय (आकर) स्वरूप हो ॥ १३ ॥ तुम्हीं गिरीशरमणी अर्थात् महादेव

कल्याणी गिरिशरमणी कालि ! सकला । स्तुतिः का ते मातस्तत्र करुणया मामगतिकं प्रसन्ना त्वं भूयाः भवमनु न भूयान्मम जनुः ॥ १४ ॥ श्मशानस्थः सुस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः सहस्रं त्वर्काणां निजगलितवीर्य्येण कुसुमम् । जपंस्तत्प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो महाकालि ! स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ॥ १५ ॥ गृहे सम्मार्जन्या परिगलितवीजं हि कुसुमं सुमध्याह्ने नित्यं विरचयति चितायां कुजादिने । समुच्चार्य्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत् कालि ! सततं गजारूढो याति क्षितिपरिवृढ सत्कविवरः ॥ १६ ॥ स्वपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो पुरो ध्यायन् ध्यायन्

की भार्या हो ॥ अर्थात् तमोगुणके आश्रय महाकालके संग विहार करती हो । तुम समस्त कल्याणका आलय और स्वरूप हो । तुम्हीं काली अर्थात् सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली हो । तुम्हीं पृथ्वी, तुम्हीं जल, तुम्हीं अग्नि, तुम्हीं वायु और तुम्हीं आकाश हो ! इस प्रकार तुम एक होनेपरभी सबकुछ हो अतएव तुम्हारी स्तुति और क्या करूं ? हे जननि ! मैं सब भांति से गतिहीन हूं । अतएव तुम अपने गुणसे करुणा करके मेरे प्रति प्रसन्न होओ । जिससे कि फिर इस पाप संसारमें मुझे जन्म ग्रहण करना न हो ॥ १४ ॥ जो व्यक्ति श्मशान प्रदेश में अवस्थान पूर्वक मुक्तकेश और नग्न वेषसे अपने विगलित वीर्य के सहित हजार अर्कपुष्प (आक के फूल) प्रदान करनेपर तुम्हारे ध्यान में मग्न हो तुम्हारे प्रत्येक मंत्रका जप करता है वह इच्छा करतेही समस्त पृथ्वी का अद्वितीय अधिपति होता है ॥ १५ ॥ जो व्यक्ति मंगल के दिन श्मशानमें जाकर मध्याह्न समय सम्मार्जनी और विनिर्गलित वीर्य के सहित अखंड चिकुर प्रदान करता है और तिसके संग एकबार प्रेममें भरकर तुम्हारा मंत्र उच्चारण करता है, वह संपूर्ण पृथ्वी का अधिपति और सत् कवि गणों में अग्रणी हो हाथीपर चढ़कर गमन करता है ॥ १६ ॥ आहा ! तुम्हारे प्रति भक्तिके वश होकर सन्मुख स्व पुष्प में समाकीर्ण काम मंदिरका बारम्बार ध्यान कर यदि तुम्हारे मंत्रका जप किया

यदि जपति मातस्तत्र मनुम् । स गन्धर्वश्रेणीपतिरिव क-
वित्वामृतनदीनदीनः पर्य्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति॥ १७॥
त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां महाकालेनोच्चैर्म-
दनरसलावण्यनिरताम् । समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतान-
न्दनिरतो नरो यो ध्यायेत् त्वां भवजननि ! स स्यात् स्म-
रहरः ॥ १८ ॥ स लोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्जारमपि
ते परं चौष्ट्रं मैषं नरमहिषयोश्छागमपि वा ।
वलिं ते पूजाया मयि विरलवक्त्रे वितरतां सतां सिद्धिः सर्वा
प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ॥ १६ ॥ वशीमन्त्रं लक्षं प्रजपति
हविष्याशनरतो दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिरतः।परं
नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं जपेल्लक्षं स स्यात् स्मर-

जाय, तो गंधर्व गणों का अधिपत्य लाभ होता है कवित्वरूप अमृत की नदीरूप में वह आविर्भूत होता है, किसी समय भी उसको दैन्य (दीनता आक्रमण नहीं सरसक्ता, चरम में परम पद प्राप्ति योगसंघटित होता है और वह सदाके लिये सबका प्रभु होसक्ता है ॥ १७ ॥ हे जननि ! तुम शवरूप शिव के हृदय और त्रिपञ्चार पीठमें सस्मित वदन से आरोहण करके महाकालके सहित अत्यन्त मदन के रस लावण्यमें निरतहुई हो। जो व्यक्ति रात्रि में स्वयं समासक्त चित्तसे रसानन्द होकर तुम्हारा इस प्रकार ध्यान करताहै वह स्मरहर (महादेव) होता है ॥ १८ जो मर्त्यलोक वासी सत् पुरुष पूजाके समय विडाल (बिलाई) ऊंट, मेष, महिष, मनुष्य, और छाग इन सबका मांस और लोम सहित अस्थि तुम्हारे उद्देश से प्रदान करता है समस्त अपूर्व सिद्धि प्रतिपद में उसके वशीभूत होती हैं ॥ १६ ॥ हे जननि ! जो व्यक्ति दिन में वशी और हविष्याशी होकर तुम्हारे चरण युगलका ध्यान धारण सहित एकाग्रचित्त से तुम्हारे मन्त्र का लक्षवार जप करता है एव रात्रि में नग्न और निधुवन विनोद में मग्न भावापन्न हो इस प्रकार लक्षजप करता है, वह पृथ्वीतल में साक्षात् स्मरहर (श्रीमहादेव)

हरसदृक्षः क्षितितले ॥ २ ॥ इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणजनुः स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् । निशार्द्धं वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥ २१ ॥ कुरङ्गाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं वशस्तस्य क्षौणीपतिरपि कुवेरप्रतिनिधिः । रिपुःकारागारं कलयति च तं केलिकलया चिरं जीवन्मुक्तः प्रभवति स भक्तः प्रतिजनुः ॥ २२ ॥

इति महाकालविरचितं स्वरूपाख्यं स्तोत्र सम्पूर्णम् ।

अथोत्तरतन्त्रे कवचं लिख्यते ।

कैलासशिखरारूढं भैरवं चन्द्रशेखरम् । वक्षःस्थले समासीना भैरवी परिपृच्छति ॥

भैरव्युवाच ।

देवेश ! परमेशान ! लोकानुग्रहकारक ! । कवचं सूचितं

की समान होता है॥२०॥ हे जननि! जो व्यक्ति आधीरात के समय अथवा पूजाकालकेसमय तुम्हारे युगल चरणारविन्दोंकी पूजामें आसक्तहोकर तुम्हारा मंत्रोद्धरण जनित यह स्वरूपाख्यस्तव पाठ करताहै, उसव्यक्तिका प्रलापभी साक्षात् कवित्वरूप अमृत रसमें परिणत होकर सर्वत्र फैलजाताहै॥ २१ ॥ मृग नयनी स्त्री गणभी प्रेम चंचला होकर उसके अनुगत होती हैं, स्वयं राजा लोग भी उसके वशीभूत होते हैं इस के अतिरिक्त वह कुवेर का भी प्रति निधि होता है, उस के समस्त शत्रुगण कारागार में वास करते है एवं वह जीवन्मुक्त--और चिरकाल केलि कला संयुक्त होता है । अधिक क्या कहूं, प्रति जन्म में वह व्यक्ति इसी प्रकार होता है ॥ २२ ॥

इति महाकालविरचित स्वरूपाख्य स्तोत्र समाप्तम् ।

उत्तर तंत्र में भगवती कालिका का कवच लिखा है । यथा चंद्रशेखर भैरवके कैलाश शिखर पर विराजमान थे, तिसी समय भैरवी ने उनके वक्षःस्थल में विराजमान होकर पूछा । भैरवी ने कहा, आप देवतागणों के भी ईश्वर और परमेश्वर है आपही लोकोंपर अनुग्रह करते हैं । आपने प्रथम मेरे

पूर्वं किमर्थं न प्रकाशितम् ॥ यदि मे महती प्रीतिस्तवास्ति कुलभैरव ! । कवचं कालिकादेव्याः कथयस्वानुकम्पया ॥

श्रीभैरव उवाच ।

अप्रकाश्यमिदं देवि ! नरलोके विशेषतः । लक्षवारं वारितासि स्त्रीस्वभावाद्धि पृच्छसि ॥

देव्युवाच ।

सेवका वहवो नाथ ! कुलधर्मपरायणाः । यतस्ते त्यक्तजीवासा शवोपरि चितोपरि ॥ तेषां प्रयोगसिद्ध्यर्थं स्वरक्षार्थं विशेषतः । पृच्छामि बहुशो देव ! कथयस्व दयानिधे ! ॥

भैरव उवाच ।

कथयामि शृणु प्राज्ञे ! कालिकाकवचं परम् । गोपनीयं पशोरग्रे स्वयोनिमपरे यथा ॥ सर्वविद्यामहाराज्ञि ! सर्वदेवनमस्कृते ! ॥

प्रति देवीकालिका के कवचकी सूचना दीथी, सो किसलिये उसको प्रकाश नहीं किया ? हे कुल भैरव ? यदि मेरे प्रति आप की विशेष प्रीतिहै, तो कृपा पूर्वक देवी कालिका के कवचका कीर्त्तन कीजिये ।

श्रीभैरवने कहा हे देवि ! इस कवचका प्रकाश करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है । विशेषतः नरलोक में तो प्रकाश करना ही नहीं चाहिये । इसीलिये मैंने तुमको लाखवार निवारण किया, तौभी तुम स्त्री स्वभावके वश होकर फिर वही पूछती हो ।

देवीने कहा हेनाथ ! अनेक सेवक हैं, वह समस्त कुलधर्म परायण और सभी जीवनकी आशा त्याग शव और चिताके ऊपर अवस्थिति करते हैं, उन के प्रयोगकी सिद्धि और विशेष करके उनकी रक्षा के लिये ही मैं बारम्बार जिज्ञासा करती हूं । आपभी दया सागर हैं, अतएव कीर्त्तन कीजिये ।

भैरव ने कहा हे प्राज्ञे ! श्रवण करो, देवि कालिका के कवचका कीर्त्तन करताहूं । पशुगणोंके निकट कभी इसको प्रकाश न करै । यह समस्त विद्या का महाराज्ञी स्वरूप हैं । इस कारण समस्त देवता इसको नमस्कार करते हैं ।

कालिकाकवचस्य भैरव ऋषिरुष्णिक्छन्दः अद्वैतरूपिणी श्रीदक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः क्रीं कीलकं सर्वार्थसाधनपुरःसरमन्त्रसिद्धौ विनियोगः।

सहस्रारे महापद्मे कर्पूरधवलो गुरुः॥ वामोरुस्थिततच्छक्तिः सदा सर्वत्र रक्षतु। परमेशः पुरः पातु परापरगुरुस्तथा॥ परमेष्ठी गुरुः पातु दिव्यसिद्धिश्च मानवः। महादेवी सदा पातु महादेवः सदावतु॥ त्रिपुरो भैरवः पातु दिव्यरूपधरः सदा। ब्रह्मानन्दः सदा पातु पूर्णदेवः सदावतुः। चलच्चित्तः सदा पातु चेलाञ्चलश्च पातु माम्॥ कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः। माया मायावती चैव सिद्धौघाः पान्तु सर्वदा॥ विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुधाकरः। मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः॥ कुलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनः। सन्तोषः समयानन्दःपातु मां मानवासदा॥

कालिकाकवच का ऋषि भैरव, छंद उष्णिक, देवता अद्वैत रूपिणी श्री दक्षिण कालिका, बीज ह्रीं, शक्ति हुं, कीलक क्रीं, और सर्वार्थ साधन के पीछे मंत्रसिद्धिके लिये इसका विनियोग जानना चाहिये। जो सहस्रार महापद्म में विराजमानहैं, जो कर्पूर की समान धवलवर्ण और शक्ति जिनका वाम ऊरु सर्वदा आश्रय करती है, वही गुरुदेव सर्वदा रक्षा करें परमेश और परापरगुरु, एवं परमेष्ठी गुरु और दिव्य सिद्ध पुरुष पुरोभाग की रक्षा करें। महादेवी सर्वदा पालन और महादेव सर्वदा रक्षा करें। दिव्यरूपधारी त्रिपुर भैरव सर्वदा रक्षा करें। ब्रह्मानंद सर्वदा रक्षा करें। पूर्णदेव सर्वदा रक्षा करें। चलच्चित सर्वदा रक्षा करें। चेलांचल सर्वदा रक्षा करें। कुमार क्रोधन, वरद स्मरदीपन, माया, मायावती, और सिद्धौघ यह मेरी सर्वदा रक्षा करें। विमल, कुशल, भीमसेन, सुधाकर, मीन, गोरक्षक, भोजदेव, प्रजापति, कुलदेव, रन्तिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, संतोष, यह सब मेरी रक्षा करें। समयानंद से आनन्दनाथ पर्यंत मनुष्यगण और अम्बान्ता मातृगण

सर्वेऽप्यानन्दनाथान्ताः अम्बान्ता मातरः क्रमात् । गणनाथः सदा पातु भैरवः पातु मां सदा ॥ वटुको नः सदा पातु दुर्गा मां परिरक्षतु । शिरसः पादपर्य्यन्तं पातु मां घोरदक्षिणा ॥ तथा शिरसि मां काली हृदि मूले च रक्षतु । संपूर्णविद्यया देवी सदा सर्वत्र रक्षतु ॥ क्रीं क्रीं क्रीं वदने पातु हृदि हुं हुं सदावतु । ह्रीं ह्रीं पातु सदाधारे दक्षिणे कालिके हृदि । क्रीं क्रीं क्रीं पातु मे पूर्वे हुं हुं दक्षे सदावतु ॥ ह्रीं ह्रीं मां पश्चिमे पातु हुं हुं पातु सदोत्तरे ॥ पृष्ठे पातु सदा स्वाहा मूला सर्वत्र रक्षतु । षडङ्गे युवती पातु षडङ्गेषु सदैव माम् ॥ मन्त्रराजः सदा पातु ऊर्ध्वाधो दिग्विदिक्स्थितः । चक्रराजे स्थिताश्चापि देवताः परिपान्तु माम् ॥ उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता पातु पूर्वे त्रिकोणके । नीला घना वलाका च तथापरत्रिकोणके ॥ मात्रा मुद्रामिता चैव तथा मध्यत्रिकोणके । काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ॥ वहिः षट्कोणके पान्तु वि-

---

यथा क्रमसे मेरी रक्षा करैं । गणनाथ सर्वदा मेरा पालन करै । भैरव सदा मेरी रक्षा करैं । वटुक और दुर्गा सर्वदा मेरी रक्षा करैं । घोर दक्षिणा मेरे मस्तक से चरणपर्यंत की रक्षा करैं । देवीकाली मेरे मस्तक और हृदय की रक्षा करैं । देवी सम्पूर्ण विद्या सहित सर्वदा सर्वत्र मेरी रक्षा करैं । क्रीं क्रीं क्रीं बदनकी रक्षा करैं । हुं हुं सर्वदा हृदयकी रक्षा करै। ह्रीं ह्रीं दक्षिणा कालिका आधार के सहित हृदयकी रक्षा करै । क्रीं क्रीं मेरे पूर्व दिशा, हुं हुं दक्षिण दिशा, ह्रीं ह्रीं पश्चिम दिशा, और हुं हुं मेरे उत्तर दिक्की सर्वदा रक्षा करैं । स्वाहा मेरी पीठ और मूला मेरी सर्वत्र युवती मेरी सर्वाङ्ग एव मंत्रराज मेरे ऊर्द्ध व नीचे दिशा और विदिशा में अवस्थान करके सर्वदा रक्षा करैं । चक्रराज और संपूर्ण देवता भी इसीप्रकार अवस्थिति करके सर्वदा मेरी रक्षा करैं । उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता मेरे पूर्व त्रिकोणक, नीला, घना और वलाका मेरे अपर त्रिकोणक, मात्रा, मुद्रा और मिता मेरे मध्य त्रिकोणक काली कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, निरोधिनी और विप्रचित्ता मेरे वहिः

प्रचित्ता तथा प्रिये ! । सर्वाः श्यामाः खड्गधरा वामहस्ते न तर्जनाः ॥ ब्राह्मी पूर्वदले पातु नारायणी तथाग्निके । माहेश्वरी दक्षदले चामुण्डा राक्षसेऽवतु ॥ कौमारी पश्चिमे पातु वायव्ये चापराजिता । वाराही चोत्तरे पातु नारसिंहीं शिवेऽवतु ॥ ऐं ह्रीं असिताङ्गः पूर्वे भैरवः परिरक्षतु । ऐं ह्रीं रुरुश्चाग्निकोणे ऐं ह्रीं चण्डस्तु दक्षिणे ॥ ऐं ह्रीं क्रोधो नैर्ऋतेऽव्यात् ऐं ह्रीं उन्मत्तकस्तथा । पश्चिमे ऐं ह्रीं मां कपाली वायुकोणके ॥ ऐं ह्रीं भीषणाख्यश्च उत्तरेऽवतु भैरवः । ऐं ह्रीं संहार ऐशान्यां मातॄणामङ्कगा शिवाः ॥ ऐं हेतुको वटुकः पूर्वदले पातु सदैव माम् । ऐं त्रिपुरान्तको वटुक आग्नेय्यां सर्वदाऽवतु ॥ ऐं वह्निवेतालो वटुको दक्षिणे मां सदाऽवतु । ऐं अग्निजिह्ववटुकोऽव्यात् नैर्ऋत्यां पश्चिमे तथा ॥ ऐं कालवटुकः पातु ऐं करालवटुकस्तथा । वायव्यां ऐं एकः पातु उत्तरे वटुकोऽवतु ॥ ऐं भीमवटुकः पातु ऐशान्यां दिशि मां सदा । ऐं ह्रीं ह्रीं हुं फट् स्वाहान्ताश्चतुःषष्टिमातरः ॥ ऊर्द्ध्वाधो दक्षवामाग्रे पृष्ठदेशे तु पातु माम् । ऐं हुं सिंह-

---

षट्कोणकी सर्वदा रक्षा करें । यह समस्त श्यामवर्ण एवं सभी खड्ग और तर्जनी धारिणी हैं । ब्राह्मी मेरे पूर्वदल नारायणी अग्निदल माहेश्वरी दक्षिणदल, चामुण्डा नैऋतदल, कौमारी, पश्चिमदल, अपराजिता, वायुदल और वाराही उत्तरदलकी सर्वदा रक्षा करें । असिताङ्ग भैरव मेरे पूर्व रुरु अग्निकोण चण्ड दक्षिण, क्रोध नैऋत, उन्मत्त पश्चिम, कपाली वायुकोण भीषण उत्तर संहार ऐशानी, वटुक पूर्वदल, त्रिपुरान्तक वटुक आग्नेय, और वह्नि वेताल वटुक दक्षिण दलकी सर्वदा रक्षा करें । अग्नि जिह्वा वटुक मेरे नैऋत, काल वटुक पश्चिम, कराल वटुक वायव, एक वटुक उत्तर और भीम वटुक ऐशान दलकी सर्वदा रक्षा करें । स्वाहान्ता चतुःषष्टिः(६४) मातृगण मेरे ऊपर नीचे सन्मुख और पश्चात्की रक्षा करें । सिंह व्याघ्र

व्याघ्रमुखी पूर्वे मां परिरक्षतु ॥ ऐं कां कीं सर्पमुखी अग्नि· कोणे सदाऽवतु । ऐं मां मां मृगमेषमुखी दक्षिणे मां सदा· ऽवतु ॥ ऐं चौं चौं गजराजमुखी नैर्ऋत्यां मां सदाऽवतु । ऐं में में विड़ालमुखी पश्चिमे पातु मां सदा ॥ ऐं खौं खौं क्रोष्टुमुखी वायुकोणे सदाऽवतु । ऐं हां हां ह्रस्वदीर्घमुखी लम्बोदरमहोदरी ॥ पातु मामुत्तरे कोणे ऐं ह्रीं ह्रीं शिवको· णके । ह्रस्वजङ्घतालजङ्घप्रलम्बौष्ठी सदाऽवतु ॥ एताः श्म· शानवासिन्यो भीषणा विकृताननाः । पातु मां सर्वदा दे· व्यः साधकाभीष्ट पूरिकाः ॥ इन्द्रो मां पूर्वतो रक्षेदाग्ने य्यामग्निदेवता । दक्षे यमः सदापातु नैर्ऋत्यां नैर्ऋतिश्चमाम्॥ वरुणोऽवतु मां पश्चात् वायुर्मां वायवेऽवतु। कुवेरश्चोत्तरेपायात् ऐशान्यान्तु सदाशिवः ॥ ऊर्द्ध्वं ब्रह्मा सदा पातु अधश्चानन्त देवता । पूर्वादिदिक्स्थिताः पान्तु वज्राद्याश्चायु धाश्च माम्॥ कालिकाऽवतु शिरसि हृदय । कालिकाऽवतु आधारे कालिका पातु पादयोः कालिकाऽवतु ॥ दिक्षु मां कालिका

मुखी मेरे पूर्वदिक् सर्प मुखी मेरे अग्निकोण, मृग, मेषमुखी मेरे दक्षिण, गजराज मुखी मेरे नैर्ऋतकोण, विडालमुखी मेरे पश्चिम, क्रोष्टुमुखी मेरे वायु· कोण, लम्बोदर महोदरी और ह्रस्व दीर्घमुखी मेरी उत्तर और ऐशानकोण एवं ह्रस्व जंघा ताल जंघा और प्रलम्बोष्ठी सदा मेरी रक्षा करैं। यह सभी श्मशान वासिनी सभी भीषण प्रकृति सभी विकृत मुखी और सभी साधक का अभीष्ट पूर्ण करती हैं। यह सब सदा मेरी रक्षा करैं । इन्द्र मेरे पूर्व दिक् अग्नि देवता आग्नेयकोण, यम दक्षिणादिक्, नैर्ऋतिनैर्ऋतकोण वरुण पश्चिम, वायु वायुकोण, कुवेर उत्तरदिक् और ऐशानकोण में सदा रक्षा करैं ब्रह्मा मेरे ऊर्द्ध अनन्त देवता मेरे अधः और वज्रादि सम्पूर्ण आयुध पूर्वादि दिक्में अवस्थिति करके मेरी रक्षा करैं । देवी कालिका मेरे मस्तक, हृदय पाद, आधार, समस्त दिशा, विदिशा, नीचे और ऊपर एवं चर्म, मांस, शो·

पातु विदिक्षु कालिकाऽवतु। ऊर्द्ध्वं मे कालिका पातु अधश्च कालिकाऽवतु चर्मासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि मेऽवतु। इन्द्रियाणि मनश्चैव देहं सिद्धिञ्च मेऽवतु ॥ आकेशात् पादपर्यन्तं कालिका मे सदाऽवतु । वियति कालिका पातु पथि मां कालिकाऽवतु ॥ शयने कालिका पातु सर्वकार्येषु कालिका। पुत्रान् मे कालिका पातु धनं मे पातु कालिका ॥ यत्र मे संशयाविष्टास्ता नश्यन्तु शिवाज्ञया । इतीदं कवचं देवि ! ब्रह्मलोकेऽपि दुर्लभम् ॥ तव प्रीत्या मया ख्यातं गोपनीयं स्वयोनिवत् तव नाम्नि स्मृते देवि ! सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ सर्वपापः क्षयं याति वाञ्छा सर्वत्र सिध्यति । नाम्नः शतगुणं स्तोत्रं ध्यानं तस्मात् शताधिकम् ॥ तस्मात् शताधिको मन्त्रः कवचं तच्छताधिकम्। शुचिः समाहितो भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ संस्थाप्य वामभागे तु शक्तिं स्वामि-

---

णित, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र, एवं सिद्धि मेरे इन्द्रिय और मन की सर्वदा रक्षा करें । देवी कालिका मेरे केश से पाद पर्यन्त और मेरी आकाश, पथ, शयन, एवं सब कार्य में रक्षा करें ॥ और मेरे पुत्र और धन की भी इसी प्रकार रक्षा करें ॥ जिन के ऊपर मेरा सन्देह है, देवी की आज्ञासे वह सब नष्ट हों। हे देवि! यही देवी कालिका का कवच है । यह ब्रह्मलोक में भी दुर्लभ है, अपनी योनिकी समान सर्वदा इसको गुप्त रक्खे। केवल तुम्हारी प्रीति के वश होकर ही मैंने इसका वर्णन किया। हे देवि! तुम्हारा नाम स्मरण करनेसेही समस्त यज्ञका फल लाभ होता है, समस्त पातक क्षय होते हैं, सर्वदा सर्वत्र समस्त वांछासिद्धि होती है तुम्हारे नाम की अपेक्षाभी तुम्हारा स्तोत्र शतगुण श्रेष्ठ है और तुम्हारा ध्यान उस स्तोत्र की अपेक्षा भी शतगुण श्रेष्ठ है, तुम्हारा मंत्र उस ध्यान की अपेक्षा शतगुण श्रेष्ठ भावापन्न और तुम्हारा कवच उस मंत्र की अपेक्षा भी शतगुण श्रेष्ठ है। शुचि, समाहित और भक्ति श्रद्धा समन्वित हो-

स्तस्यैव सर्वत्र वायुतुल्यः सदा भवेत् । दीर्घायुः कामभोगीशो गुरुभक्तः सदा भवेत् ॥ अहो कवचमाहात्म्यं पठमानस्य नित्यशः । विनापि नययोगेन योगीशसमतां व्रजेत् ॥ भूर्जत्वचि समालिख्य चक्रं तन्त्रविनिर्मितम् । मध्यत्रिकोणे संलिख्य साध्यसाधकयोर्लिपिम् ॥ उद्धरेन्मूलमन्त्रश्च मातृकार्णेन वेष्टयेत् । लघुमिश्रेण चन्द्रेण चन्दनाभ्यां सुरेश्वरि! ॥ एतन्मन्त्रं महेशानि! सुरासुरसुदुर्लभम् । गोरोचनाकुंकुमाभ्यां तद्बाह्ये कवचं लिखेत् ॥ श्वेतसूत्रेण संवेष्ट्य लाक्षया परिमण्डयेत् । पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा शुभेऽहनि ॥ संपूज्य देवतारूपं गुटिकां सर्वकामदाम् । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणं तत्र नियोजयेत् अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा तत्र संस्थापयेत् बुधः । एषा तु गुटिका देवि ! कण्ठलग्नाऽखिलप्रदा ॥ शीर्षे वश्यकरी देवि ! नाभौ स्तम्भनकारिणी । वद्धावाम भुजे ह्येषा वैरिपक्षक्ष

समान जहां इच्छा हो, वहां जासक्ता है एवं दीर्घायु और गुरुभक्त होता है इच्छानुसार वह समस्त विषय भोग करसक्ता है । अहो इस कवचका माहात्म्य नित्य पाठ करने से साधक नययोग के विनाही योगेश्वर की समान होजाता है । भूर्जत्वको तंत्र विनिर्मित चक्र अंकित और मध्य त्रिकोण को साध्य साधक दोनों की लिपिलेखन पूर्वक मूलमंत्रका उद्धार करके मातृका वर्ण में वेष्टित करे । हे सुरेश्वरी ! लघुमिश्र कर्पूर और द्विविध चंदन द्वारा यह सुरासुर दुर्लभ मंत्र लिखकर उसके बाह्य में गोरोचना और कुंकुम द्वारा कवच लिखना चाहिये । अनन्तर सफेद डोरेसे वेष्टन करके लाक्षा (लाख) द्वारा मंडित करै । फिर पंचामृत और पञ्चगव्यमें स्नान कराकर शुभदिन में देवता रूपिणी, सकलाभीष्ट साधिनी गुटिका की भली भांति पूजा सहित प्राण प्रतिष्ठा मंत्र द्वारा उस में प्राण नियोजित करै। फिर अन्तर्योनिका ध्यान करके, उस में स्थापन करना चाहिये । हे देवि ! यह गुटिका कंठ लग्ना होने से संपूर्ण प्रदान करतीहै । शीर्ष में स्थापित होनेसे सबका वशीकरण समाधान करती है नाभि में रखने से सबको स्तंभित करती

यङ्करी ॥ जठरे रोगदमनी पुत्रदा हृदि संस्थिता । विद्याकरी ललाटस्था सिखायान्तु यशःप्रदा ॥ सर्वकामप्रदा देवी सर्व रोगक्षयङ्करी । दक्षिणे बाहुमूले वै यदि तिष्ठति सर्वदा ॥ तदा सर्वार्थसिद्धिःस्याद् यद्यन्ममनसिवर्त्तते । त्र्यहात्तुकवचस्यास्य पठनाद्धारणात्प्रिये॥सर्वान् कामानवाप्नोति तवस्नेहात् प्रकाशितम् । गुरोःपादप्रसादेन सद्विद्या यदि लभ्यते ॥ तथैव कवचं देवि । ना जप्त्वा गुरुपादुकाम् । तत्फलं नाशमाप्नोति परे नरकमाप्नुयात् ॥ सत्यं सत्यं पुनःसत्यं सत्यं सत्यं पुन. पुनः। न शक्नोमि प्रभावन्तु कवचस्यास्य वर्णितुम् ॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं कवचञ्च सुदुर्लभम् । न देयं परशिष्येभ्यः कृपणेभ्यः सुरेश्वरि ॥ शिष्याय भक्तियुक्ताय सेवकाय तथैव च । गुरुभक्तिविहीनाय परदाररताय च ॥ निन्दकाय कुलीनाय दाम्भि

है, बांई भुजा में बाधने से विपक्ष पक्षका क्षय कारिणी होती है, जठर में रखने से रोग दमनी होती है, हृदय में स्थित होने से पुत्र दायिनी होती है, ललाट में रहने से विद्या प्रदान करती है शिखामें रखने से यश विधान करतीहै, एवं सर्वरोग क्षय और सब प्रकार की कामना का साधन करती है। और यदि सर्वदा बाहु मूल में रहे तो मन में जो इच्छा करीजाय, वही सर्व अभीष्ट सिद्ध होता है। हे प्रिये ! इस कवचका धारण वा इसके पाठ करने से तीन दिन में ही सब प्रकारकी कामना सफल होती हैं । मैंने तुम्हारे प्रति स्नेह के वश होकर इसको प्रकाश किया । श्री गुरुके चरण प्रसाद से यदि सदविद्या लाभ करीजाय, तो इस प्रकार से संपूर्ण मनोरथही सिद्ध होतेहैं । हेदेवि ! इस कवचका जप न करने से निःसंदेह नरक लाभ होता है, मैं यह सत्यही सत्य कहता हूं, और पुनर्वार सत्यही सत्य कहता हूं। इस कवचका प्रभाव वर्णन करने में मेरी सामर्थ नहीं है । यह अत्यन्त दुर्लभ है । जिस किसी को इसका प्रदान न करे। हेसुरेश्वरी ! पराये शिष्य और कृपणादिको भी इसका प्रदान न करे । भक्तियुक्त शिष्य और सेवकको ही यह देना चाहिये । जो व्यक्ति भक्ति हीन परदार रत, निंन्दक, दाम्भिक, और अकुलीन है, उसको दान करना

काय च सुन्दरि । यो ददाति निषिद्धेभ्यः कवचं मम्मुखात् श्रुतम् ॥ तस्य नश्यन्ति देवेशि ! आयुः कीर्त्तियशःश्रियः । न हिंसन्ति सदा देवि ! योगिन्यो मातृमण्डलात् ॥ परे नरकमाप्नोति जन्मकोटिशतानि च । देयं शिष्याय शान्ताय गुरुभक्तिपराय च ॥ सर्वलक्षणयुक्ताय तत्तन्मन्त्रयुताय च ॥

इत्युत्तरतन्त्रे कालीप्रस्तावे कालीभैरवसंवादे
श्रीमद्दक्षिणाकालिकाकवचं सम्पूर्णम् ।

विरूपाक्ष उवाच ।

नमामि गुरुमक्षोभ्यं मंत्रशक्तिसमन्वितम् । प्रसन्नं ज्ञानमज्ञानं हेतुं बुद्धिप्रकाशकम् ॥ गजेंद्रवदनं नौमि रक्तं विघ्न विदारकम् । पाशांकुशवराभीति लसद्भुजचतुष्टयम् ॥ भैरवः सर्वदा पातु ऋषिर्मे शिरसोपरि । मुखे छन्दः सदा पातु त्रिष्टुप् च विजयात्मकम् ॥ गुणत्रयमयी शक्तिः परशक्तिस्तु ईड़िता । ब्रह्मस्वरूपिणी पातु हृदये मम कालिका ॥ वीज-

विहित नहीं है । जो व्यक्ति मेरे मुखसे इसको सुनकर इस प्रकार निषिद्ध व्यक्तिगण को इसका प्रदान करता है, हे देवेशि ! उसकी आयु, कीर्ति, यश, और श्री संपूर्ण नष्ट होती है मरने के पीछे उसको शतशत कोटि जन्म में नरक लाभ होता है । शान्तस्वभाव, गुरुभक्ति परायण सर्वलक्षण लक्षित और तत्तत् मंत्र युक्त शिष्यकोही इसका प्रदान करे ।

विरूपाक्षने कहा, जिनको किसी प्रकार विकार वा अवसाद (आलस्य) नहीं है, जो मंत्रशक्ति युक्त हैं जो बुद्धिको प्रणयन करते हैं और जो सब के कारण स्वरूप हैं, उन्हीं प्रसन्न स्वरूप ज्ञानमूर्त्ति गुरुको नमस्कार है । जो गजेन्द्र वदन, रक्तवर्ण और विघ्नविनाशन एवं पाश, अंकुश, वर, और अभय के संसर्ग से जिनकी चारों भुजा भलीभांति शोभायुक्त हुई है, उन्हीं गणपतिको प्रणाम करता हूं । भैरवऋषि सर्वदा मेरे मस्तककोपरि रक्षा करें । विजयात्मक त्रिष्टुपछंद सदा मेरे मुख मण्डल की रक्षा करे । जो त्रिगुणमयी शक्ति स्वरूप, और जो सब की पूजिता साक्षात् परमशक्ति हैं, वह ब्रह्म

स्वरूपिणी पातु क्रीङ्कारी शक्तिरूपिणी । हूं शक्तिः सर्वदा पातु सर्वरक्षास्वरूपिणी ॥ महाकालः सदा पातु महाभीमपराक्रमः । ददातु मम कामानि सर्वसिद्धीश्वरो यतः॥ आदि लृवर्णपर्य्यन्ताः हृदये ममामातृकाः । एधान्ते ङादि चान्ताश्च रक्षन्तु बाहुयुग्मके ॥ नभोमध्यगता वर्णा मादिक्षान्तास्तथैव च । सविन्दवः सदा पान्तु जङ्घयोरुभयोर्मम ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या विघ्नदेहास्तथा पुनः ।पृथग्भावाः समध्याश्च वर्णा रक्षन्तु मां सदा ॥ समस्तरोमकूपेषु मर्मस्थानेषु सन्धिषु । नाड़ीधातुविकारेषु रक्षन्तु मम मातृकाः ॥ शक्तिराधाररूपा या सा पातु परमेश्वरी । अवर्णः सर्वदा पातु सर्व देवमयः स्वयम् ॥ फणागताऽवनिः पातु समुद्रः पातु मां सदा । रत्नद्वीपः सदापातु रक्षन्तु कल्पपादपाः ॥ श्मशानपीठकः पातु पातु मां मानवेदिका ।सदाशिव महाप्रेत शवो मां परिरक्षतु ॥

स्वरुपिणी कालिका मेरे हृदय देशकी रक्षा करें । जो बीजस्वरूपिणीहैं, वह शक्ति स्वरुपिणी क्रीङ्कारी मेरी रक्षा करें । सर्वरक्षा स्वरुपिणी हुं शक्ति सर्वदा मेरी रक्षा करे । महाभीम पराक्रम महाकालभी सर्वदा मेरी रक्षा करें। वह संपूर्ण सिद्धिके अधिनायक हैं । अतएव मेरी संपूर्ण कामना पूर्ण करें । 'अ' से लृ पर्यंत मातृका गण मेरे हृदय 'ए' से 'ध, पर्यंत और 'ङ, से च पर्यंत मातृका गण मेरी दोनों बाहु, आकाश मध्यगत समस्त वर्ण और 'म, से 'क्ष, पर्यंत सब मातृका गण विन्दुके सहित सर्वदा मेरे दोनों जंघा की रक्षा करें । भूत, प्रेत और पिशाचादि, समस्त विघ्न देह और समध्यवर्ण समूह सदा मेरी रक्षा करें । मातृका गण मेरे समस्त रोमकूप (रुंवों के गड्ढे) समस्त मर्म स्थान, समस्त सन्धिस्थल, समस्त नाड़ी और धातु की रक्षा करें । जो आधाररूपी शक्ति हैं, वह परमेश्वरी मेरी रक्षा करे ! स्वयं सर्वदेवमय अवर्ण सदा मेरी रक्षा करे । फणास्थिता, अवनि, समुद्र, रत्न द्वीप, कल्प, पादप समूह, श्मशान पीठ, मानवेदि सदा शिव और महाप्रेत

द्वारदेशे द्वारपाला योगिन्यः पान्तु मां सदा । सिद्धयोऽष्टौ सदा पान्तु पूर्वादि वसुदिग्गताः ॥ कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां तथैवच । विरोधिनीं विप्रचित्तां नमामि सर्वसिद्धये ॥ एतास्तु वशयोगिन्यो वहिः षट्कोणकेस्थिताः । रक्षन्तु मां सदा देव्यो मातरो भक्तवत्सलाः ॥ उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां नमाम्यात्मविभूतये । सर्वसिद्धिं प्रयच्छन्तु पान्तु मां पुत्रवत् सदा ॥ नीलां घनां वलाकांच प्रणमामि समुत्सुकः । सर्वविघ्नान् समुत्सार्य्य रक्षन्तु कलुषार्णवात् ॥ मात्रामुद्रामितानांच नमामि चरणाम्बुजम् । देवीप्रेम सखीनांच शरणं यामि सिद्धये ॥ एताः पंचदशे कोणे एकैका वरदा सदा । तर्जनीं वामहस्तेन खड्गं दक्षिणपाणिना ॥ मुण्डमाला धराः शीर्षे

श्रव यह सर्वदा मेरी रक्षा करें । द्वारदेश में द्वारपाल और योगिनी गण एवं पूर्वादि अष्टदिक् स्थित अष्ट विध सिद्धि सदा मेरी रक्षा करे । मैं सर्व विध सिद्धि साधनकी कामना से काली कपालिनी, कुल्ला कुरु कुल्ला, विरोधिनी विप्रचित्ता इनको नमस्कार करता हूं । यह छै वश योगिनी बाहर के षट्कोण में सदा अवस्थिति करती हैं । यह सभीभक्त वत्सला, सभी देवी और सभी जगत की जननी स्वरूप हैं । यह सर्वदा मेरी रक्षा करें । मैं आत्म विभूति के लिये उग्रा उग्रप्रभा और दीप्ता, इनको भी प्रणाम् करता हूं। यह मुझको सर्वविधि सिद्ध प्रदान और पुत्रकी समान सदा पालन करें । मैं उत्सुक हृदय से नीला, घना, और वलाका इनकोभी प्रणाम करता हूं। यह मेरे संपूर्ण विघ्न दूर करके मुझको कलुष सागर (पाप समुद्र) से पार करें । मैं मात्रा, मुद्रा और मिता, इनके चरण कमलों में भी प्रणत होता हूं। यह सभी देवी की प्रेम सखी हैं । सिद्धिलाभ होने की वासना से इनकी शरण ग्रहण करता हूं । यह प्रत्येक वरदा और पंचदश कोण में एक एक क्रमसे स्थिति करती हैं । इनके वाम हस्तमें तर्जनी औ दक्षिण हाथ में खड्ग है । और मस्तक में मुण्डमाला है। यह सभी नीले अंजन के ढेरकी समान, सभी

नीलाञ्जनचयोपमाः । शत्रुभ्यः सिद्धिदाश्चण्डाः पान्तु मां कालिका प्रियाः ॥ वहिःपद्मदलान्ते तु ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तयः। रक्षन्तु मे प्रयच्छन्तु सर्वसिद्धिं दयान्विताम् ॥ ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे सर्वाः शिववरप्रदाः । वह्नौ नारायणी पातु सर्व कामार्थ सिद्धिदा ! माहेशी दक्षिणे पातु सर्व मङ्गलकारिणी। चामुण्डा नैर्ऋते पातु सर्वशत्रुप्रमर्दिनी ॥ कौमारी पश्चिमे पातु शक्तिहस्ता विसूदिनी। अपराजिता च वायव्या पातु मां जयदा शुभा ॥ उत्तरे पातु वाराही वरदा घोररूपिणी नारसिंही सदापातु ऐशान्यां भयनाशिनी॥एतास्तु वरविद्यायाः शक्तयश्चाष्टदेवताः। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तेजोभिन्नकलेवरा॥ सूर्य्येन्दुवह्निपीठे तु वैन्दवे परमेश्वरी। नमामि दक्षिणामूर्त्तिं कालिकां परभैरवीम् ॥ भिन्नाञ्जनचयप्रख्यां प्रवीनशव संस्थिताम् । गलच्छोणितधाराभिः स्मेराननसरोरुहाम् ॥ पी-

---

कालिकाकी प्रिय, और सभी प्रचंड प्रकृति, और सभी शत्रु गणों को भी सिद्धि प्रदान करती हैं । यह मेरी रक्षा करें । बाहरके पद्मदलांत में ब्रह्माणी इत्यादि अष्टशक्ति दयायुक्त होकर मेरी रक्षा और सर्वविधि सिद्धि प्रदान करें । शिव वरप्रदा ब्रह्माणी मेरे पूर्वदिक, सर्व कामार्थ सिद्धिदा नारायणी अग्निप कोण सर्व मंगल कारिणी माहेश्वी मेरे दक्षिण दिक, सर्व शत्रु मर्दिनी चामुण्डा मेरी नैर्ऋत कोण शक्तिहस्ता कौमारी मेरी पश्चिम दिक, जयदा और शुभ स्वरूपा अपराजिता मेरी वायुकोण, घोररूपिणी वरदा वाराही मेरी उत्तर दिक और भय नाशिनी नारायणी मेरी ईशान कोण में सदा रक्षा करें । यह परविद्या रूपिणी कालिकाकी अष्टशक्ति हैं और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि के तेजसे उत्पन्न हुई हैं ।

स्वयं परमेश्वरी कालिका विन्दुमय सूर्य्येन्दु वह्निपीठ में स्थिति करती हैं । उन्हींपर भैरवी दाक्षिणा मूर्त्ति को नमस्कार करता हूं । वह कालेअंजन के ढेरकी सदृश नवीन शब्द के ऊपर अवस्थिति करती हैं । विगलित शो-

नोन्नतकुचद्वन्द्वां पीनवक्षोनितम्बिनीम्। दक्षिणे मुक्तकेशां च दिगम्बरविनोदिनीम्॥ महाकालसमाविष्टां स्मेरानन्दोपरि स्थिताम्। सुखसान्द्रस्मितामोदमोदिनीं मदविह्वलाम्॥ आरक्तसुखसान्द्रादिनेत्रालीभिर्विराजिताम्। शवद्वयकृतोत्तंसां सिन्दूर तिलकोज्ज्वलाम्॥ पञ्चाशन्मूर्त्तिघटितमालां शोणितलोहिताम्। नानामणिविशोभाढ्यां नानालङ्कारशोभिताम्॥ शवास्थिकृतकेयूरशङ्खकङ्कणमण्डिताम्। शववक्षः समारूढ़ां लेलिहानां शवं क्वचित्॥ शवमांसकृतग्रासां साट्टहासां मुहुर्मुहुः। खड्गमुण्डधरां वामे सव्येऽभयवरप्रदाम्॥ दन्तुराञ्च महारौद्रीं चण्डनादातिभीषणाम्। शिवाभिर्घो-

---

णित धारा के संसर्ग से उनका मुखकमल विकसित होगया है। उनकेदोनों पयोधर पीनोन्नत हैं, उनका वक्षस्थल और नितम्ब पीवर (मोटे) भाव युक्त है। वह दक्षिण विगलित केश पाश में दिगम्बर के सग विहार करती हैं। और महाकाल के सहित सर्वदाही परमानंद रसभोग में आसक्त रहती है। सुखकी प्रौढता से वह जिस प्रकार स्मित मुखी हैं, इसी प्रकार आनंद मोहनी और मद विह्वला हुई हैं, और उनके लोचन परम्परा भी इसीप्रकार सुखकी प्रौढता से रक्तवर्ण और तन्निबंधन उनकी अतीव शोभा उत्पन्न हुई है। उनके कर्णमूल शव युगल के भूषण से अलंकृत हैं। उन्होने सिन्दूर तिलक के संसर्ग से अत्यन्त विकस्वर मूर्त्ति धारण करी है। उनके हाथ में पञ्चाशत (पचास) मूर्त्ति निर्मित माला विराजमान है। उन के कलेवर ने शोणित (रुधिर) के संसर्ग से लोहित (लाल) वर्ण धारण किया है। अनेक मणियों की निकटता से उनकी शोभाकी सीमा नहीं है। अनेक अलंकार पहरने से उनकी शोभा समुद्भूत हुई है। वह शवास्थि निर्मित केयूर, कंकण और शंख में विमण्डित और शव हृदय में आरोहण करके कभी शवलेहन (मुरदे का चाटना) और कभी शव मांस ग्रास एवं वारम्वार अट्टहास करती हैं। उनके वामहस्त में खड्ग और मुण्ड, एवं दक्षिणहस्त में अभय और वरमुद्रा है। उनकी दाढें अ-

ररावाभिर्वेष्टितां भयनाशिनीम् ॥ माभैर्माभैः स्वभक्तेषु ज- ल्पन्तीं घोरनिस्वने। यूयं किमिच्छथ ब्रूथ ददामीतिप्रभाषिणीम् त्वं गतिः शरणं देवि ! त्वं माता परमेश्वरी !। पाहि मां करुणासान्द्रे ! नमस्ते परमेश्वरी ! ॥ नमस्ते कालिके ! दे- वि ! नमस्ते भक्तवत्सले !। मूर्खतां हर मे देवि ! प्रति- भाप्रतिदायिके ! ॥ गद्यपद्यमयीं वाणीं तर्कव्याकरणादि- काम् । अनधीतगतां विद्यां देहि दक्षिणकालिके ! ॥ जयं देहि सभामध्ये धनं देहि धनागमे। देहि मे चिरजीवित्वं कालिके ! रक्ष दक्षिणे ! ॥ राज्यं देहि यशो देहि पुत्रान् दारान् धनं तथा। देहान्ते देहि मे मुक्तिं जगन्मात ! नं-

---

त्यन्त तीक्ष्ण स्वभाव और हृदय अत्यन्त प्रचंड, और नाद अत्यन्त भयंकर है। तिनके द्वारा उन्होंने अत्यन्त भीषणमूर्त्ति परिग्रह करी है। समस्त शि- वागण घोर शब्द से उनको घेरकर विचरण करती हैं। वह सबकारी भय विनाश करती हैं और घोर निस्वनसे भक्तगणोंको 'भय नहीं' यह वारंवार कहकर आश्वस्त (धीरज बँधाना) करती हैं और कहतीहैं तुम क्या इच्छा करती हो, सो कहो, मैं वही प्रदान करूंगी । हे देवि ! तुम्हीं गति तुम्हीं शरण, तुम्हीं परमेश्वरी और तुम्हीं जननी हो । अधिक क्या, तुम सदाही करुणारस में आर्द्र रहती हो। मेरी रक्षा करो । हे परमेश्वरी ! तुमको न- मस्कार है। तुम्हीं देवी कालिका हो, तुमको नमस्कार है। तुम्हीं भक्तवत्स ला हो, तुमको नमस्कार है। हे देवि ! मेरी मूर्खता हरण करो। तुम सब को प्रतिभा (प्रताप) प्रदान करती हो। तुम्हीं दक्षिण कालिका हो मुझको गद्यपद्यमयी तर्क व्याकरणादि की वाणी और अनधीतगता विद्या (जो नहीं पढी है) प्रदान करो । मुझको सभा में जय प्रदान करो। ध- नागम में धनप्रदान करो और चिरजीवित्व प्रदान करो। हे दक्षिणकालिके मेरी रक्षा करो। तुम्हीं जगत्की माता हो, तुमको नमस्कार है। तुम मुझ को राज्य, यश, पुत्र, कलत्र और वित्तप्रदान करो । और देहके अन्त में

मोऽस्तु ते ॥ मङ्गला भैरवी दुर्गा कालिका त्रिदशेश्वरी। उमा हैमवती कन्या कल्याणी भैरवेश्वरी ॥ काली ब्राह्मी च माहेशी कौमारी माधुसूदनी। वाराही वासनी चण्डा त्वां जगुर्मुनयो मुदा ॥ उग्रतारेति तारेति शिवेत्येकजटेति च। लोकोत्तरेति बालेति गीयते कृतिभिः सदा ॥ यथा काली तथा तारा तथा छिन्ना च कुल्लुका। एकमूर्त्तिश्चतुर्भिश्च देवि ! त्वं कालिकापरा ॥ एकद्वित्रिविधा देवि ! कोटिधाऽनन्तरूपिणी। अङ्गाङ्कैर्नामभेदैः कालिकेति प्रगीयते ॥ शम्भुः पञ्चमुखेनैव गुणान् वक्तुं क्षमो न ते। चापलं यत् कृतं सर्वं क्षमस्व शुभदा भव ॥ प्राणान् रक्ष यशो रक्ष पुत्रदारधनं तथा। सर्वकाले सर्वदेशे पाहि दक्षिणकालिके ! ॥ यः संपूज्य पठेदृचां दिवा वा सन्ध्ययोस्तथा। अवाप्य म-

---

मुक्ति प्रदान करो। मुनिगण आह्लाद सहित तुमकोही मंगला, भैरवी, दुर्गा कालिका, त्रिदशेश्वरी, उमा ,हैमवती, कन्या, कल्याणी, भैरवेश्वरी, काली ब्राह्मी, महेशी, कौमारी, मधुसूदनी, वाराही, वासवी, और चण्डा कहते हैं। और कृतिगण तुमकोही उग्रतारा, तारा, शिवा, एकजटा, लोकोत्तरा, और बाला कहकर स्तव करते हैं जो काली हैं, वही तारा वही छिन्ना, और वही कुल्ला हैं। हे देवि ! तुम्हीं इन चारों में एक मूर्त्ति कालिका हो। तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ वा विशिष्ट अन्य कोई नहीं है और कोई भी तुम से भिन्न नहीं है। सब तुम्हीं हो। तुमही एक द्वित्रिविधा एवं तुम्हीं कोटिधा और अनन्तरूपिणी हो। तुम्हीं अङ्गाङ्ग और नाम भेदसे कालिका कहकर गाईजाती हो शम्भु पंच मुखसे भी तुम्हारे गुण वर्णन करने मे समर्थ नहींहैं। अतएव मैंने जो चपलता करी है उसको अपने गुणसे क्षमा करके शुभदा होओ और मेरे प्राण की रक्षा करो। यशकी रक्षा करो। स्त्री पुत्र औ धन की रक्षा करो। हे दक्षिण कालिके ! मेरी सर्वकाल और सर्वदेश में रक्षा करो। जो व्यक्ति भलीभांति पूजा करके दिवा वा संध्या समय यह रक्षा पाठ करता -

हर्ता प्रज्ञां सर्वकामांस्ततो लभेत् ॥ यद्यद् प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति का कथा । स्वयं लक्ष्मीर्वसेद्देहे मुक्तिः करगता पुनः ॥

इति रुद्रयामले उत्तरतन्त्रे दक्षिणकालिका
कवचं समाप्तम् ।

अथ स्तोत्रम् । महाकालभैरव उवाच ।

स्तवराजं शृणु राम ! सर्वकालमनोहरम् । यस्य स्मरणमात्रेण कालिका संप्रसीदति यद्भक्तस्त्वं यदेवासि भृगुवंशसमुद्भव ! । गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं परात्परम् ॥ कालिस्तोत्रं मम प्रेयः कस्मैचिन्न प्रकाशितम् । कथ्यते त्वदनुरोधात् सर्वपापप्रणाशनम् ॥ शृणु राम ! शृणु राम ! शृणु राम !

है, वह महती प्रज्ञा (बुद्धि) लाभ करके सब प्रकार की कामनाके पारको प्राप्त होता है और मन में जो प्रार्थना करता है, वही उसको प्राप्त होती है। इस विषय में और बात क्या है ? स्वयं लक्ष्मी उसके देह में वास करती है और मुक्ति भी उसके कर गामिनी होती है ।

अनन्तर स्तोत्र लिखाजाता है। यथा—महाकाल भैरव ने कहा, हे राम! स्तवराज श्रवण करो । यह सर्वकालमें ही मन हरण करता है । इसके केवल स्मरणमात्रसे ही देवी कालिका परम प्रसन्न होती हैं। तिसपरभी तुम भक्तहो और तुम ने भृगुवंश में जन्म ग्रहण किया है, इस कारण तुम्हारे प्रति इसको कहता हूं । यह परात्पर स्तवराज अति यत्नपूर्वक गुप्त रक्खै और पाठ करै। यह काली स्तोत्र मेरा परम प्रियतर है। इस कारण किसी के भी निकट इस का प्रकाश नहीं किया है। केवल तुम्हारे अनुरोधसेही इसको कहता हूं। इस का पाठ करने से समस्त पाप दूर होते है । हे राम ! श्रवण करो,श्रवण करो, श्रवण करो । सदा गुप्त रक्खै, गुप्त रक्खै, गुप्त रक्खै । गणरात्र में शक्ति के सहित नग्न वेश और मुक्तकेश होकर लाल चंदन, सिन्दूर, पंचविध उपचार विशेषतः मत्स्य, मांस और सुरादि व ताम्बूल प्रदान करनेके पीछे महाकाल रतातुरा महाकाली की पूजा करके प्रथम तीर्थपान विधान, फिर ताम्बूल

सदैव हि। गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं न संशयः॥ गणरात्रे मुक्तकेशो नग्नः शक्तिसुसङ्गतः। रक्तचन्दन सिंदूरैस्तथा पंचोपचारकैः॥ मत्स्यमांससुराद्यैश्च ताम्बूलैश्च विशेषतः। पूजयित्वा महाकालीं महाकालरतातुराम्॥ तीर्थपानं विधायादौ ताम्बूलं भक्षयेत्ततः। भगलिंगामृतं मध्ये निवेदयेत् सुसाधकः। जपित्वा च महामंत्रं कालीरूपं मनोहरम्। मनसा चिंतयेत्कालीं पठन् स्तोत्रंतु साधकः॥ रक्षोयक्षपिशाचेभ्यो नित्यं रक्षाकरं परम्। प्रसन्ना कालिका तस्य पुत्रत्वेनानुकम्पते॥ दक्षिणे कालिके! मातर्मुण्डमालाविभूषिते!। भक्तत्राणव्यग्रचित्ते! यमजाड्यं विनाशय॥ ज्वलच्चिताग्निमध्यस्थे! परिवारसमन्विते!। त्वत्पदाम्भोजमापन्नं रक्ष मां पुत्रवत् सदा॥ महामेघच्छविन्यासे! मुक्तकेशि! चतुर्भुजे!। पाण्डित्यं कविताञ्चैव मह्यं देहि महेश्वरि!॥ वामोर्द्ध्वे च महाखड्गं विधारयासि शङ्करि!। अधोलसच्छिन्नमुण्डे! मम विघ्नं विनाशय॥ अभयं दक्षिणे चोर्द्ध्वे

भक्षण और मध्यमें भग लिङ्गामृत निवेदन करे। फिर कालीरूप मनोहर महा मंत्र जपकर स्तोत्र पाठ सहित मन मन में देवी कालिका की चिंता करे। उस की यक्ष, राक्षस और पिशाचसे यह स्तव नित्य रक्षा करता है। इसका पाठ करके ध्यान करनेसे देवी कालिका साधकको पुत्र भाव से अनुकम्पित करती हैं और उसके प्रति प्रसन्न होती हैं। इस प्रकार उनका स्तव करना चाहिये। हे दक्षिण कालिके! हे मातः! हे मुण्डमाला विभूषिते! हे भक्तत्राणव्यग्रचित्ते! मेरी यम यंत्रणा विनाश करो। हे प्रज्वलित चिताग्नि मध्यस्थे! हे परिवार समन्विते! मैं तुम्हारे चरणारविन्द की शरण हुआ हूं, मेरी सर्वदा पुत्रकी समान रक्षा करो। हे महामेघ स्वरूपिणी! हे मुक्तकेशि! हे चतुर्भुजे! हे महेश्वरि! मुझको पाण्डित्य और कवित्व प्रदान करो। हे शंकरि! तुम बामोर्द्ध में महा खड्ग धारण करती हो। उसके अधोभाग में छिन्न मु-

तथाधःपाणिना वरम् । कण्ठसंसक्त मुण्डालि ! महाकालि ! नमोऽस्तु ते ॥ सततं त्वत्स्वरूपं ये स्मरन्ति साधकोत्तमाः । तेषां समस्तशास्त्रेषु गतिरव्याहता सदा ॥ चिन्तयामि च त्वन्नाम रक्ष मां सर्वतः सदा । दिगम्बरीं करालास्यां घोरदंष्ट्रां भयानकाम् ॥ कर्णमूले शवयुग्मां स्थूलतुङ्गपयोधराम् महारौद्रीं महाघोरां श्मशानालयवासिनीम् शवपाणिसमूहैश्च कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् । ओष्ठप्रान्तगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ॥ मुण्डालीसंस्रवद्रक्तैः सर्वाङ्गेचारुचर्चिताम् । शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ॥ पूजाकाले पठेद् यस्तु सद्भावपुलको बुधः । स भवेत् कालिकापुत्र इति ख्यातिमुपागतः ॥ रजस्वलाभगं पश्यन् जप्त्वा

एड विलसित होता है । मेरे विघ्न विनाश करो । तुम्हारे दक्षिण हस्तके ऊर्द्ध में अभय और उसके अधोभाग में वर विराजमान है । तुम्हारे कंठदेश में मुण्डमाला लम्बायमान है । तुम्हीं महाकाली हो । तुमको नमस्कार है । जो साधकोत्तम सदा तुम्हारे स्वरूप की चिन्ता करते हैं, उनकी समस्त शास्त्र में ही सर्वदा अव्याहतगति सञ्चारित होती है । इसीलिये । मैं तुम्हारे नामकी चिन्ता करता हूं । मेरी सम्यक् प्रकार से सदा रक्षा करो । तुम्हीं दिगम्बरी तुम्हीं कराल वदना और घोर दशना हो । तुम्हीं अत्यन्त भीषण स्वरूप हो । तुम्हारे कर्ण में शव युग्म विराजमान है । तुम्हीं पीनोन्नत पयोधरा हो । तुम्हीं महारौद्री और महाघोरा हो ! तुम्हीं श्मशानालय निवासिनी हो । तुम्हारे कटिदेश में शव पाणि समूह निर्मित काञ्चीदाम शोभापाता है । तुम्हारा वदन मण्डल सर्वदा हास्य विकसित है । तुम्हारे होठ प्रान्त से रुधिर धारा निकलती है, तिससे तुम्हारा वदन मण्डल विकसित होउठा है । तुम्हारा सर्वाङ्ग शर मुण्ड से विगलित रुधिर धारा में चारु चर्चित है । शिवागण तुमको चारों ओर से घेरकर घोर रवसे शब्द करती हैं । जो व्यक्ति पूजा के समय सद्भावके आवेश से पुलकित होकर इस स्तवका पाठ करता है, वह कालिका के पुत्र नाम से विख्यात होता है रजस्वलाका वराङ्ग देख, काली का महामंत्र

कालीमहामनुम्। स्तवेनानेन संस्तुत्य साधकः किं न साधयेत्॥ अष्टोत्तरशतंजप्त्वा योनिमामंत्र्य मंत्रवित्॥ संगम्य पठनादस्य सर्वविद्येश्वरो भवेत्। मातेव दक्षिणा तस्य सर्वत्र हितकारिणी। तस्य देहे सदा काली वसेद्राम! न संशयः॥ पूजाजपविहीनाय स्त्रीसुरानिंदकाय च। परमार्गस्य रोधकाय गुर्वभक्ताय सर्वदा। शृणु वत्स! प्रयत्नेन स्तवमेनं न दर्शयेत्। प्रमादाद्दर्शनाद्वापि तस्यासिद्धिर्भवेन्न हि॥

इति कालिकापरमरहस्ये कालीहृदये महाकालभैरवपरशुरामसंवादे श्रीदक्षिणकालिकास्तवः समाप्तः।

तन्त्रान्तरोक्तकवचम् यथा—भैरव उवाच।

कालिका या महाविद्या कथिता भुवि दुर्लभा। तथापि हृदये शल्यमस्ति देवि! कृपां कुरु॥ कवचन्तु महादेवि! कथयस्वानुकम्पया। यदि नो कथ्यते मातर्विमुञ्चामि तदा तनुम्॥

जप करता हुआ इस स्तव द्वारा स्तव करने से साधकका क्या साधित नहीं होता? मंत्रवित् साधक अष्टोत्तर शत जप और योनि आमंत्रण करके, इस स्तवका पाठ करने से समस्त विद्याका ईश्वर होता है। दक्षिण कालिका जननी की समान सर्वदाही उसके हितका अनुष्ठान करतीहैं। हे राम! उसके देह में वह सदा वास करती हैं, इस विषय में संदेह नहीं है। जो व्यक्ति पूजा नहीं करता जप नहीं करता वरन स्त्री और सुराकी निन्दा करता है एवं गुरुके प्रति भक्तिरहित और सन्मार्ग के वहिर्भूत है। हे वत्स! सुनो, उसको कभी इस मंत्रका उपदेश न करे। प्रमाद के वश उपदेश करनेसे कभी सिद्धि लाभ नहीं होती।

तन्त्रान्तरोक्त कवच यथा—भैरवने कहा, हे देवि! यद्यपि तुम ने कालिका का पृथ्वी दुर्लभ महामंत्र कीर्त्तन किया, परन्तु तो भी मेरे हृदय में काटा गड़ाहुवा है अतएव कृपा करनी चाहिये। हे महादेवि! अनुग्रह पूर्वक कवच कीर्त्तन करो। हे मातः यदि आप कीर्त्तन न करोगी, तो कलेवर परित्याग करूंगा।

देव्युवाच ।

शङ्कापि जायते वत्स ! तव स्नेहात् प्रकाश्यते । न वक्तव्यं न दातव्यमतिगुह्यतरं महत् ॥ कालिका जगतां माता शोकदुःखविनाशिनी । विशेषतः कलियुगे महापातकहारिणी ॥ काली मे पुरतः पातु पृष्ठतश्च कपालिनी । कुल्ला मे दक्षिणे पातु कुरुकुल्ला तथोत्तरे ॥ विरोधिनी शिरः पातु विप्रचित्ता च चक्षुषी । उग्रा मे नासिकां पातु कर्णौ चोग्रप्रभा तथा ॥ वदनं पातु मे दीप्ता नीला च चिबुकं तथा । घना ग्रीवां सदा पातु बलाका बाहुयुग्मकम् ॥ मात्रा पातु करद्वन्द्वं वक्ष्यो मुद्रा सदावतु । मिता पातु स्तनद्वन्द्व योनिमण्डलदेवताः ॥ ब्राह्मी मे जठरं पातु नाभिं नारायणी तथा । ऊरू माहेश्वरी पातु चामुण्डा पातु लिङ्गकम् ॥ कौमारी च कटीं पातु जङ्घायुग्मं तथैव च । अपराजिता च पादौ मे वाराही

देवीने कहा, हे वत्स ! यद्यपि मुझको शंका उत्पन्न होती है, किन्तु तौ भी तुम्हारे प्रति स्नेह प्रयुक्त होने से प्रकाश करती हूं । यह अति गुह्यतर महाकवच किसी के निकट नहीं कहना चाहिये और किसीको इसका प्रदान भी न करै । कालिका जगत् की जननी और शोक दुःख विनाशिनी हैं । विशेष करके कलियुग में महापातक हारिनी हैं । काली मेरी सन्मुख रक्षा करैं, कपालिनी मेरे पृष्ठ कुल्ला, मेरे दक्षिण कुरुकुल्ला मेरे उत्तर, विरोधिनी मेरे मस्तक, विप्रचित्ता मेरे नेत्र युगल, उग्रा मेरी नासिका, उग्रप्रभा मेरे कर्ण युगल, दीप्ता मेरे वदन मण्डल, नीला मेरी चिबुक, घना मेरी ग्रीवा, बलाका मेरी बाहुयुग्म, मात्राकर युगल, मुद्रावक्षस्थल और मितास्तन युगलकी सर्वदा रक्षा करैं । ब्राह्मी मेरे जठर, नारायणी नाभि, माहेश्वरी दोनों ऊरू चामुण्डा लिंग, कौमारी कटि, और दोनों जंघा, अपराजिता दोनों पैर, वाराही समस्त अँगुली और नारसिंही संधि स्थूलकी रक्षा करैं । मेरा जो

पातु चांगुलीः ॥ सन्धिस्थानं नारसिंही पत्रस्था देवताऽवतु । रक्षाहीनञ्च यत् स्थानं वर्जितं कवचेन तु ॥ तत् सर्वं रक्ष मे देवि ! कालिके घोरदक्षिणे ! । ऊर्द्ध्वमधस्तथा दिक्षु पातु देवी स्वयं वपुः ॥ हिंस्रेभ्यः सर्वदा पातु साधकञ्च जलाधिकात् । दक्षिणा कालिका देवी व्यापकं मे सदावतु ॥ इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेद्घोरदक्षिणाम् । न पूजाफलमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ कवचेनावृतो नित्यं यत्र तत्रैव गच्छति । तत्र तत्राभयं तस्य न क्षोभं विद्यते क्वचित् ॥

इति दक्षिणकालिकाकवचं समाप्तम् ।

अथ सहस्रनामस्तोत्रम् यथा—श्रीशिव उवाच ।

कथितोऽयं महामन्त्रः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः । यामासाद्य मया प्राप्तमैश्वर्य्यपदमुत्तमम् ॥ संयुक्तः परया भक्त्या यथोक्तविधिना भवान् । कुरुतामर्चनं देव्यास्त्रैलोक्यविजिगीषया ॥

स्थान रक्षाहीन और कवच वर्जित है, घोर दक्षिणा देवी कालिका उन समस्त स्थानकी रक्षा करे । देवी स्वयं ऊपर नीचे और समस्त दिशाओं में हिंस्रगण और जल से मेरे कलेवर की रक्षा करें । देवी दक्षिण कालका सर्वदा व्यापक भाव से मेरी रक्षा करें । जो व्यक्ति इस कवचको न जानकर, घोर दक्षिणा की भजना करता है, उसको पूजा के फलकी प्राप्ति नहीं होती, और पद २ में विघ्न उपस्थित होता है । नित्य इस कवच में आवृत होकर जिस किसी स्थान में गमन क्यों न कियाजाय, सर्वत्रही अभय लाभ होता है, कहीं भी क्षोभ उपस्थित नहीं होता ।

॥ इतिदक्षिणकालिकाकाकवचसमास ॥

अब देवी कालिका का सहस्रनाम स्तोत्र लिखाजाता है । श्री शिव ने कहा कालिका का यह सर्वमन्त्रोत्तमोत्तम महामंत्र कथित हुआ है । मैंने इसी मंत्रको पाकर इसप्रकार सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य पद लाभ किया है । तुम परमभक्ति सहित यथोक्त विधान अनुसार त्रैलोक्यजय की कामना से देवी की आराधना करो ॥

श्रीराम उवाच ।

प्रसन्नो यदि मे देव ! परमेश ! पुरातन ! । रहस्यं परमं देव्याः कृपया कथय प्रभो ! ॥ विनार्चनं विना होमं विना न्यासं विना बलिम् । विना गन्धं विना पुष्पं विना नित्योदितां क्रियाम् ॥ प्राणायामं विना ध्यानं विना भूतविशोधनम् । विना दानं विना जापं येन काली प्रसीदति ॥

शिव उवाच ।

पृष्टं त्वयोत्तमं प्राज्ञ ! भृगुवंशसमुद्भव ! । भक्तानामपि भक्तोऽसि त्वमेव साधयिष्यसि ॥ देवीं दानवकोटिघ्नीं लीलया रुधिरप्रियाम् । सदा स्तोत्रप्रियामुग्रां कामकौतुकलालसाम् ॥ सर्वदानन्दहृदयामासवोत्सवमानसाम् । माध्वीकमत्स्यमांसानुरागिणीं वैष्णवीं पराम् ॥ श्मशानवासिनीं प्रेतगणनृत्यमहोत्सवाम् । योगप्रभावां योगेशीं योगीन्द्रह-

---

श्रीरामने कहा, हे परमेश ! हे पुरातन ! हे देव ! यदि आप मेरे प्रति प्रसन्न हैं । तो भली भांति अनुग्रह प्रदर्शन पूर्वक देवी कालिका का रहस्य कीर्त्तन कीजिये । विना पूजा, विना होम, विना न्यास, विना बलि, विना, गंध, विना पुष्प, विना नित्योदित क्रियां, विना प्राणायाम, विना ध्यान, विना भूतशुद्धि, विना दान, और विना जप के जिससे काली प्रसन्न होती हैं, सो कहो ॥

शिवने कहा हे भृगुवंश समुद्भव ! तुम भली भांति ज्ञान सम्पन्न हो । इसीलिये अति श्रेष्ठ प्रश्न किया है । तुम्हीं भक्तगणों में उत्तम हो । इसकारण तुम्हीं सिद्धि लाभ करोगे । वह देवी कालिका लीला पूर्वक करोड़ २ दानवों का विनाश करती हैं । वह जिस प्रकार रुधिर प्रिय हैं, इसीप्रकार स्तव करने से अत्यन्त उल्लसित और परितुष्ट होती हैं । वह प्रचंड प्रकृति और काम कौतुक लालसा के वश वर्त्तिनी हैं । वह सर्वदा सानंद हृदया और आसवोत्सव मानसा हैं, मधु, मांस और मत्स्यप्रिय, परमवैष्णवी श्मशान वासिनी प्रेतगणों के नृत्यमहोत्सवा, योगप्रभवा, योगेशी और योगीन्द्रगणों

दयास्थिताम् ॥ तामुग्रकालिकां राम ! प्रसादयितुमर्हसि । तस्याः स्तोत्रं परं पुण्यं स्वयं काल्या प्रकाशितम् ॥ तव तत् कथयिष्यामि श्रुत्वा वत्सावधारय । गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं परात्परम् ॥ यस्यैककालपठनात् सर्वे विघ्नाःसमाकुलाः नश्यन्ति दहने दीप्ते पतङ्गा इव सर्वतः ॥ गद्यपद्यमयीवाणी तस्य गङ्गाप्रवाहवत् । तस्य दर्शन मात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः ॥ तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः । राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परेजनाः ? ॥ निशीथे मुक्तकेशस्तु नग्नः शक्तिसमाहितः । मनसा चिन्तयेत् कालीं महाकालेन लालिताम् ॥ पठेत् सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं मोक्षस्य साधनम् । प्रसन्ना कालिका तस्य पुत्रत्वेनानुकम्पते ॥ यथा ब्रह्मामृतैर्ब्रह्मकुसुमैः पूजिता परा ॥ प्रसीदति तथानेन स्तुता काली प्रसीदति ॥

के हृदयका आश्रय करती हैं । हे राम ! तुम उन्हीं उग्र कालिका का प्रसाद संग्रह करो । उनका स्तोत्र परम पवित्र है । उन्होंने स्वयं उसका प्रकाश किया है । हे वत्स ! वह स्तोत्र मैं तुमसे कहता हूं । तुम इस को अवधारण करो । तुम इस परात्पर स्तोत्र का अत्यन्त यत्न सहित पाठ और गुप्त रखकर इसकी रक्षा करो । इस स्तोत्र के एक कालीन पठनमात्रसेही सम्पूर्ण विघ्न समाकुल होते हैं । और प्रज्वलित अग्निमें पतित पतंगकी समान तत्काल नष्ट होते हैं । पाठक के मुख से गंगाप्रवाह की समान गद्यपद्य मयी वाणी अनर्गल निकलती है, उसके दर्शन मात्र सेही समस्त वादी निष्प्रभ (प्रभा हीन) होते हैं और निसंदेह समस्त सिद्धि उसके करगत होती हैं । अपर मनुष्यकी बात क्या कहूं, राजागण भी उसके दास होते हैं । निशीथ (आधी रात) समय शक्ति के सहित मिलित होकर मुक्तकेश और नग्न वेश से मन मन में महाकाल लालिता देवी कालिका की चिन्ता करै । अनन्तर जो मोक्ष प्राप्तका अद्वितीय उपाय है, उसी सहस्र नामाख्यस्तोत्र के पाठमें प्रवृत्त होना चाहिये । तो देवी कालिका प्रसन्न होकर उसपर पुत्रभाव से कृपा करती हैं । ब्रह्मामृत और ब्रह्म कुसुम द्वारा पूजा करने से वह परादेवी जिस

पराजिता। उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता विप्रचित्ता महाबला ॥ नीला घना मेघनादा मात्रा मुद्रा मितामिता। ब्राह्मी नारायणी भद्रा सुभद्रा भक्तवत्सला ॥ माहेश्वरी च चामुण्डा वाराही नारसिंहिका वज्राङ्गी वज्रकङ्काला नृमुण्डस्रग्विणी शिवा ॥ मालिनी नरमुण्डालीगलद्रक्तविभूषणा। रक्तचन्दनसिक्ताङ्गी सिंदूरारुणमस्तका ॥ घोररूपा घोरदंष्ट्रा घोरा घोरतरा शुभा। महादंष्ट्रा महामाया सुदती युगदन्तुरा ॥ सुलोचना विरूपाक्षी विशालाक्षी त्रिलोचना। शारदेन्दुप्रसन्नास्या स्फुरत्स्मेराम्बुजेक्षणा ॥ अट्टहासा प्रफुल्लास्या स्मेरवक्त्रा सुभाषिणी। प्रफुल्लपद्मवदना स्मितास्या प्रियभाषिणी ॥ कोटराक्षी कुलश्रेष्ठा महती बहुभाषिणी। सुमतिः कुमतिश्चण्डा चण्डमुण्डातिवेगिनी ॥ प्रचण्डा चण्डिका चण्डी चर्चिता चण्डवेगिनी। सुकेशी मुक्तकेशी च दीर्घकेशी महाकचा प्रेतदेहकर्णपूरा प्रेतपाणिसुमेखला। प्रेतासना प्रि-

---

कुलकान्ता, अपराजिता, उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, विप्रचित्ता, महाबला, नीला, घना, मेघनादा, मात्रा, मुद्रा, मिता, असिता, ब्राह्मी, नारायणी, भद्रा, सुभद्रा, भक्तवत्सला, माहेश्वरी, चामुण्डा, वाराही, नारसिंही, वज्राङ्गी, वज्रकङ्काला, नृमुण्डमालिनी, शिवा, मालिनी, नरमुण्डाली गलद्रक्त विभूषणा रक्तचंदन दिग्धांगी, सिन्दूरारुणमस्तका, घोररूपा, घोरदंष्ट्रा, घोरा, घोरतरा, शुभा, महादंष्ट्रा, महामाया, सुदती, युगदन्तरा, सुलोचना, विरूपाक्षी, विशालाक्षी, त्रिलोचना, शरदेन्दु प्रसन्नास्या स्फुरत् स्मेराम्बुजेक्षणा, अट्टहास्या प्रफुल्लास्या, स्मेरवक्त्रा, सुभाषिणी, प्रफुल्लपद्मवदना, स्मितास्या, प्रियभाषिणी, कोटराक्षी, कुलश्रेष्ठा, महती, बहुभाषिणी, सुमति, कुमति, चण्डा, चण्ड मुण्डा, अतिवेगिनी, प्रचण्डा, चण्डिका, चण्डी, चर्चिता चण्डवेगिनी, सुकेशी, मुक्तकेशी, दीर्घकेशी, महाकचा, प्रेतदेह कर्णपूरा, प्रेतपाणि सुमेखला, प्रेतासना, प्रियप्रेता, प्रेतभूमि कृतालया, श्मशान वासिनी, पुण्या, पुण्यदा, कुल

यप्रेता प्रेतभूमिकृतालया ॥ श्मशानवासिनी पुण्या पुण्यदा कुलपण्डिता । पुण्यालया पुण्यदेहा पुण्यश्लोका च पावनी। पूता पवित्रा परमा परा पुण्यविभूषणा । पुण्यनाम्नी भीतिहरा वरदा खड्गपाशिनी ॥ नृमुण्डहस्ता शान्ता च छिन्नमस्ता सुनासिका । दक्षिणा श्यामला श्यामा शान्ता पीनोन्नतस्तनी ॥ दिगम्बरी घोररावा सृक्कान्तरक्तवाहिनी । घोररावा शिवासङ्गा निःसङ्गा मदनातुरा॥ मत्ताप्रमत्तामदनासुधासिंधु निवासिनी । अतिमत्ता महामत्ता सर्वाकर्षणकारिणी ॥ गीतप्रिया वाद्यरता प्रेतनृत्यपरायणा । चतुर्भुजा दशभुजा अष्टादशभुजा तथा । कात्यायनी जगन्माता जगतीपरमेश्वरी । जगद्बन्धुर्जगद्धात्री जगदानंदकारिणी ॥ जगज्जीववती हैमवती माया महालया । नागयज्ञोपवीताङ्गी नागिनी नागशायिनी॥ नागकन्या देवकन्या गान्धारी किन्नरी सुरी । मोहरात्री महारात्री दारुणाभा सुरासुरी ॥ विद्याधरी वसुमती यक्षिणी यो-

---

पण्डिता, पुण्यालया, पुण्यदेहा, पुण्यश्लोका, पावनी, पूता, पवित्रा, परमा, परा, पुण्यविभूषणा, पुण्यनाम्नी, भीतिहरा, वरदा, खड्गपाशिनी, नृमुण्डहस्ता, शान्ता छिन्नमस्ता, सुनासिका, दक्षिणा, श्यामला,श्यामा, शांता पीनोन्नतस्तनी, दिगम्बरी, घोररावा, सृक्कांतरक्तवाहिनी, घोररावा, शिवासंगा, निसंगा, मदनातुरा, मत्ता प्रमत्ता, मदना, सुधासिन्धु निवासिनी अतिमत्ता, महामत्ता, सर्वाकर्षण कारिणी, गीतप्रिया, वाद्यरता, प्रेत नृत्यपरायण, चतुर्भुजा, दशभुजा, अष्टादश भुजा, कात्यायनी, जगन्माता, जगती, परमेश्वरी, जगद्बन्धु, जगद्धात्री, जगदानन्द कारिणी, जगज्जीववती, हैमवती, माया, महालया, नागयज्ञो, पवीताङ्गी, नागिनी, नागशायिनी, नागकन्या, देवकन्या, गान्धारी, किन्नरी, सुरी, मोहरात्रि, महारात्रि, दारुणाभा, सुरासुरी, विद्याधरी, वसुमती, यक्षिणी, योगिनी, जरा राक्षसी,

गि नी जरा । राक्षसी डाकिनी वेदमयी वेदविभूषणा ॥ श्रुति-स्मृतिमहाविद्या गुह्यविद्यापुरातनी । चिंताचिंता स्वधा स्वाहा निद्रातंद्राचपार्वती ॥ अपर्णानिश्चलालोलासर्वविद्यातपस्विनी गङ्गा काशी शची सीता सती सत्यपरायणा ॥ नीतिः सुनीतिः सुरुचिस्तुष्टिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा । वाणी बुद्धिर्महालक्ष्मीर्लक्ष्मी-र्नीलसरस्वती ॥ स्रोतस्वती स्रोतवती मातङ्गी विजया जया । नदी सिन्धुः सर्वमयी तारा शून्यनिवासिनी ॥ शुद्धा तरङ्गिणी मेधा लाकिनी बहुरूपिणी । सदानन्दमयी सत्या सर्वानन्द स्वरूपिणी ॥ सुनन्दा नन्दिनी स्तुत्या स्तवनीया स्वभाविनी । रङ्किणी टङ्किनी चित्रा विचित्रा चित्ररूपिणी । पद्मा पद्मालया पद्ममुखी पद्मविभूषणा ॥ शाकिनी हाकिनी क्षान्ता राकिणी रुधिरप्रिया भ्रान्तिर्भवानी रुद्राणी मृड़ानी शत्रुमर्दिनी ॥ उपेन्द्राणी महेशानी ज्योत्स्ना चेन्द्रस्वरूपिणी । सूर्य्यात्मिका रुद्रपत्नी रौद्री स्त्री प्रकृतिः पुमान् ॥ शक्तिः सूक्तिर्मतिमती भुक्तिर्मुक्तिः पतिव्रता । सर्वेश्वरी सर्वमाता शर्वाणी हरव-

---

डाकिनी, वेदमयी वेदविभूषणा, श्रुति, स्मृति, महाविद्या, गुह्यविद्या, पुरातनी, चिन्ता, अचिन्ता, स्वधा, स्वाहा, निद्रा, तन्द्रा, पार्वती, अपर्णा, निश्चला, लोला, सर्वविद्या, तपस्विनी, गङ्गा काशी, शची, सीता, सती, सत्यपरायण, नीति, सुनीति, सुरुचि, तुष्टि, पुष्टि, धृति, क्षमा, वाणी, बुद्धि, महालक्ष्मी, लक्ष्मी, नीलसरस्वती, स्रोतस्वती, स्रोतवती, मातङ्गी, विजया, जया, नदी, सिन्धु, सर्वमयी, तारा, शून्य निवासिनी, शुद्धा, तरंगिणी, मेधा, लाकिनी, बहुरूपिणी, सदानन्दमयी, सत्या, सर्वानन्द, स्वरूपिणी, सुनंदा, नान्दिनी, स्तुत्या, स्तवनीया, स्वभाविनी, रंकिणी, टंकिणी, चित्रा, विचित्रा, चित्ररूपिणी, पद्मा, पद्मालया, पद्ममुखी, पद्मविभूषण। शाकिनी, हाकिनी, क्षान्ता, राकिनी, रुधिर प्रिया, भ्रान्ति, भवानी, रुद्राणी, मृडानी, शत्रुमर्दिनी, उपेंद्राणी, महेशानी, ज्योत्स्ना, इन्द्रस्वरूपिणी, सूर्यात्मिका, रुद्रपत्नी, रौद्री, स्त्री, प्रकृति, पुमान, शक्ति- सूक्ति, मतिमती, भुक्ति, मुक्ति, पतिव्रता, सर्वेश्वरी, सर्वमाता,

ल्लभा ॥ सर्वज्ञा सिद्धिदा सिद्धा भाव्या भव्या भयापहा। कर्त्री हर्त्री पालयित्री शर्वरी तामसी दया ॥ तमिस्रा यामिनी-स्था च स्थिरा धीरा तपस्विनी । चार्वङ्गी चञ्चलालोल जिह्वा चारुचरित्रिणी ॥ त्रपा त्रपावती लज्जा निर्लज्जा ह्रीं रजोवती। सत्त्ववती धर्मनिष्ठा श्रेष्ठा निष्ठुरवादिनी ॥ गरिष्ठा दुष्टसंहर्त्री विशिष्टा श्रेयसी घृणा । भीमा भयानका भीम नादिनी भीः प्रभावती । वागीश्वरी श्रीर्यमुना यज्ञकर्त्री यजुःप्रिया । ऋ-क्सामाथर्वनिलया रागिणी शोभनस्वरा ॥ कलकण्ठी कम्बु कण्ठी वेणुवीणापरायणा । वंशिनी वैष्णवी स्वच्छा धात्री त्रिजगदीश्वरी ॥ मधुमती कुण्डलिनी ऋद्धिः सिद्धिः शुचि-स्मिता । रम्भोर्वशी रतीरामा रोहिणी रेवती रमा ॥ शङ्खिनी चक्रिणी कृष्णा गदिनी पद्मिनी तथा । शूलिनी परिघास्त्रा च पाशिनी शार्ङ्गपाणिनी ॥ पिनाकधारिणी धूम्रा शरभी वन-मालिनी । वज्रिणी समरप्रीता वेगिनी रणपण्डिता ॥ जटिनी

शर्वाणी, हरवल्लभा, सर्वज्ञा, सिद्धिदा, सिद्धा, भाव्या, भव्या, भयापहा, कर्त्री, हर्त्री, पालयित्री, शर्वरी, तामसी, दया, तमिस्रा, यामिनीस्था, स्थिरा, धीरा, तपस्विनी, चार्वंगी, चंचला, लोलजिह्वा, चारुचरित्रिणी, त्रपा, त्रपावती, लज्जा, निर्लज्जा, ह्रीं, रजोवती, सत्ववती, धर्मनिष्ठा, श्रेष्ठा, निष्ठुरवादिनी, गरिष्ठा, दुष्टसंहित्री, विशिष्टा, श्रेयसी, घृणा, भीमा, भयानका, भीमनादिनी, भीः, प्रभावती, वागीश्वरी, श्री, यमुना, यज्ञकर्त्री, यजुः प्रिया, ऋक्सामाथर्वनिल-या, रागिणी, शोभनस्वरा, कलकण्ठी, कम्बुकण्ठी, वेणुवीणा, परायण, वं-शिनी, वैष्णवी, स्वच्छा, धात्री, त्रिजगदीश्वरी, मधुमती, कुण्डलिनी, ऋद्धि, सिद्धि, शुचिस्मिता, रम्भा, उर्वशी, रति, रामा, रोहिणी रेवती, रमा, शंखि-नी, चक्रिणी, कृष्णा, गदिनी, पद्मिनी, शूलिनी, परिघास्त्रा, पाशिनी, शार्ङ्ग-पाणिनी, पिनाकधारिणी, धूम्रा, शरभीवनमालिनी, वज्रिणी, समरप्रीता, वेगिनी, रणपण्डिता, जटिनी, बिम्बिनी, नीला, लावण्याम्बुधि, चन्द्रिका,

बिम्बिनी नीला लावण्याम्बुधिचन्द्रिका । बलिप्रिया सदा-पूज्या पूर्णा दैत्येन्द्रमाथिनी ॥ महिषासुरसंहन्त्री वासिनी रक्तदन्तिका । रक्तपा रुधिराक्ताङ्गी रक्तखर्परहस्तिनी ॥ रक्त-प्रिया मांसरुचिरासवासक्तमानसा । गलच्छोणितमुण्डालि-कण्ठमालाविभूषणा ॥ शवासना चितान्तस्था माहेशी वृष-वाहिनी । व्याघ्रत्वगम्बरा चीनचेलिनी सिंहवाहिनी ॥ वाम-देवी महादेवी गौरी सर्वज्ञभाविनी । बालिका तरुणी वृद्धा वृद्धमाता जरातुरा ॥ सुभ्रु र्विलासिनी ब्रह्मवादिनी ब्राह्मणी मही । स्वप्नावती चित्रलेखा लोपामुद्रा सुरेश्वरी ॥ अमो-घाऽरुन्धती तीक्ष्णा भोगवत्यनुवादिनी । मन्दाकिनी मन्द-हासा ज्वालामुख्यसुरान्तका ॥ मानदा मानिनी मान्या माननीया मदोद्धता । मदिरा मदिरोन्मादा मेध्या नव्या प्रसादिनी ॥ सुमध्यानन्तगुणिनी सर्वलोकोत्तमोत्तमा । जयदा जित्वरा जेत्री जयश्रीर्जयशालिनी ॥ सुखदा शुभदा सत्या सभासंक्षोभकारिणी । शिवदूती भूति मती

बलिप्रिया, सदापूज्या, पूर्णा, दैत्येंद्रमन्थिनी, महिषासुरसंहन्त्री, वासिनी,रक्त दंतिका, रक्तपा रुधिरांगी, रक्तखर्परहस्तिनी, रक्तप्रिया, मांसरुचि, आसवासक्त मानसा,गलच्छोणितमुण्डाली,कण्ठमाला विभूषणा,शवासना,चितान्तस्था,माहे शीवृषवाहिनी, व्याघ्रत्वगम्बरा, चीनचेलिनी,सिंहवाहिनी, वामदेवी,महादेवी गौरी, सर्वज्ञभाविनी, बालिका, तरुणी, वृद्धा, वृद्धमाता, जरातुरा, सुभ्रू, वि-लासिनी, ब्रह्मवादिनी, ब्रह्माणी, मही, स्वप्नावती, चित्रलेखा, लोपामुद्रा, सुरेश्वरी, अमोघा, अरुन्धती, तीक्ष्णा, भोगवती, अनुवादिनी, मन्दाकिनी, मन्दहास्य, ज्वालामुखी, असुरान्तका, मानदा, मानिनी, मान्या, माननीया, मदोद्धता, मदिरोन्मादा, मेध्या, नव्या, प्रसादिनी, सुमध्या, अनन्तगुणिनी, सर्वलोकोत्तमा, जयदा, जित्वरा, जेत्री, जयश्री, जयशालिनी, सुखदा, शु-भदा, सत्या, सभासंक्षोभकारिणी, शिवदूती, भूतिमती. विभूति, भीषणान-

विभूतिर्भीषणानना ॥ कौमारी कुलजा कुन्ती कुलस्त्री कुलपालिका । कीर्त्तिर्यशस्विनी भूषा भूष्या भूतपतिप्रिया ॥ सगुणा निर्गुणा धृष्टा निष्ठा काष्ठा प्रतिष्ठिता । धनिष्ठा धनदा धन्या वसुधा स्वप्रकाशिनी ॥ उर्वी गुर्वी गुरुश्रेष्ठा सगुणा त्रिगुणात्मिका । महाकुलीना निष्कामा सकामा कामजीवना ॥ कामदेवकला रामाभिरामा शिवनर्त्तकी । चिन्तामणिकल्पलता जाग्रती दीनवत्सला ॥ कार्त्तिकी कीर्त्तिका कृत्या अयोध्या विषमा समा । सुमन्त्रा मन्त्रिणी घूर्णा ह्लादिनी क्लेशनाशिनी ॥ त्रैलोक्य जननी हृष्टा निर्मांसा मनोरूपिणी । तड़ागनिम्नजठरा शुष्कमांसास्थिमालिनी ॥ अवन्ती मथुरा माया त्रैलोक्यपावनीश्वरी । व्यक्ताव्यक्तानेकमूर्त्तिः शर्वरी भीमनादिनी ॥ क्षेमङ्करी शङ्करी च सर्वसम्मोहकारिणी । ऊर्द्धतेजस्विनी क्लिन्ना महातेजस्विनी तथा ॥ अद्वैता भोगिनी पूज्या युवती सर्वमङ्गला । सर्वप्रियङ्करी भो-

---

ना, कौमारी, कुलजा, कुन्ती, कुलस्त्री, कुलपालिका, कीर्त्ति, यशस्विनी, भूषा, भूष्या, भूतपतिप्रिया, सगुणा, निर्गुणा, धृष्टा, निष्ठा, काष्ठा, प्रतिष्ठिता, धनिष्ठा, धनदा, धन्या, वसुधा, स्वप्रकाशिनी, ऊर्व्वी, गुर्व्वी, गुरुश्रेष्ठा, सगुणा, त्रिगुणात्मिका, महाकुलीना, निष्कामा, सकामा, कामा, कामजीविनी, कामकला, रामा, अभिरामा, शिवनर्त्तकी, चिन्तामणिकल्पकला, जाग्रती, दीनवत्सला, कार्त्तिकी, कीर्त्तिका, कृत्या, अयोध्या, विषमा, समा, सुमन्त्रा मंत्रिणी, घूर्णा, ह्लादिनी, क्लेशनाशिनी, त्रैलोक्य जननी, हृष्टा, निर्मांसा, मनोरूपिणी, तडागनिम्नजठरा, शुष्कमांसास्थिमालिनी, अवन्ती, मथुरा, माया, त्रैलोक्यपावनी, ईश्वरी, व्यक्ताव्यक्ता, अनेकमूर्त्ति, शर्व्वरी, भीमनादिनी, क्षेमङ्करी, शङ्करी, सर्वसम्मोहकारिणी, ऊर्द्धतेजस्विनी, क्लिन्ना, महातेजस्विनी, अद्वैता, भोगिनी, पूज्या, युवती, सर्वमंगला, सर्वप्रियङ्करी, भो-

ण्या धरणी पिशिताशना ॥ भयङ्करी पापहरा निष्कलङ्का व-शङ्करी । आशा तृष्णा चन्द्रकला निद्रान्या वायुवेगिनी ॥ सहस्रसूर्य्यसङ्काशा चंद्रकोटिसमप्रभा । वह्निमण्डलसंस्था च सर्वतत्त्वप्रतिष्ठिता ॥ सर्वाचारवती सर्वदेवकन्याधिदेवता । दक्षकन्या दक्षयज्ञनाशिनी दुर्गतारिका ॥ इज्या पूज्या विभीर्भूतिः सत्कीर्त्तिर्ब्रह्मरूपिणी । रम्भोरुश्चतुरा राका जयन्ती करुणा कुहुः ॥ मनस्विनी देवमाता यशस्या ब्रह्मचारिणी । ऋद्धिदा वृद्धिदा वृद्धिः सर्वाद्या सर्वदायिनी ॥ आधाररूपिणी ध्येया मूलाधारनिवासिनी । आज्ञा प्रज्ञापूर्णमनाश्चन्द्रमुख्यनुकूलिनी ॥ वावदूका निम्ननाभिः सत्या सन्ध्या दृढव्रता । आन्वीक्षिकी दण्डनीतिस्त्रयी त्रिदिवसुन्दरी ॥ ज्वलिनी ज्वालिनी शैलतनया विन्ध्यवासिनी । अमेया खेचरी धैर्य्या तुरीया विमलातुरा ॥ प्रगल्भा वारुणीच्छाया शशिनी विस्फुलिङ्गिनी । भुक्तिः सिद्धिः सदाप्राप्तिः प्राकाम्या महिमाणिमा ॥ इच्छासिद्धिर्विसिद्धा च वशित्वोर्द्ध्व-

---

ण्या, धरणी, पिशितासना, भयङ्करी, पापहरा, निष्कलंका, वशंकरी, आशा, तृष्णा, चंद्रकला, निद्रा, वायुवेगिनी, सहस्र सूर्य, संकाशा, चंद्रकोटिसमप्रभा, वन्हिमंडलसंस्था, सर्वतत्त्वप्रतिष्ठिता, सर्वाचारवती, सर्वदेवकन्या, अधिदेवता, दक्षकन्या, दक्षयज्ञनाशिनी, दुर्गतारका, इज्या, पूज्या, विभीर्भूति, सत्कीर्त्ति, ब्रह्मरूपिणी, रम्भोरु, चतुरा, राका जयंती, करुणा, कुहु, मनस्विनी, देवमाता, यशस्या, ब्रह्मचारिणी, ऋद्धिदा, वृद्धिदा, वृद्धि, सर्वादा, सर्वदायिनी, आधाररूपिणी, ध्येया, मूलाधारनिवासिनी, आज्ञा, प्रज्ञा, पूर्णमना, चंद्रमुखी, अनुकूलिनी, वावदूका, निम्ननाभि, सत्या, संध्या, दृढव्रता, आन्वीक्षिकी, दण्डनीति, त्रयी, त्रिदिवसुंदरी, ज्वलिनी, ज्वालिनी, शैलतनया, विंध्यवासिनी, अमेया, खेचरी धैर्या, तुरीया, विस्फुलिंगिनी, भुक्ति, सिद्धि, सदाप्राप्ति, प्राकाम्या, महिमा, अणिमा, इच्छा, सिद्धि, विसिद्धा, वशित्वोर्द्धनिवासिनी, लघिमा, गायत्री, सावित्री, भुवनेश्वरी, मनोहरा,

निवासिनी । लघिमा चैव गायत्री सावित्री भुवनेश्वरी ॥ मनोहरा चिता दिव्या देव्युदारा मनोरमा । पिङ्गला कपिला जिह्वारसज्ञा रसिका रसा ॥ सुषुम्नेड़ा भोगवती गान्धारी नरकान्तका । पाञ्चाली रुक्मिणी राधाराध्या भीमाधिराधिका ॥ अमृता तुलसी वृन्दा कैटभी कपटेश्वरी । उग्रचण्डेश्वरी वीरा जननी वीरसुन्दरी ॥ उग्रतारा यशोदाख्या देवकी देवमानिता । निरञ्जना चित्रदेवी क्रोधिनी कुलदीपिका ॥ कुलवागीश्वरी वाणी मातृका द्राविणी द्रवा । योगेश्वरी महामारी भ्रामरी बिन्दुरूपिणी ॥ दूती प्राणेश्वरी गुप्ता वहुला चामरीप्रभा । कुब्जिका ज्ञानिनीज्येष्ठा भूशुण्डी प्रकटा तिथिः द्राविणी गोपनी माया कामबीजेश्वरी क्रिया । शाम्भवी केकरा मेना मूषलास्त्रा तिलोत्तमा ॥ अमेयविक्रमा क्रूरा सम्पत्शाला त्रिलोचना । सुस्थी हव्यवहा प्रीतिरुष्मा धूम्रार्चिरङ्गदा ॥ तपिनी तापिनी विश्वा भोगदा धारिणी धरा ।

चिता, दिव्या, देवी, उदारा, मनोरमा, पिंगला, कपिला, जिह्वा, रसज्ञा, रसिका, रसा, सुषुम्ना, ईड़ा, भोगवती, गांधारी, नरकांतका, पाञ्चाली, रुक्मिणी, राधा, आराध्या, भीमा, अधिराधिका, अमृता, तुलसी, वृन्दा, कैटभी, कपटेश्वरी, उग्रचण्डेश्वरी, वीरा, जननी वीरसुंदरी, उग्रतारा, यशोदा, आख्या, दैवकी, देवमानिता, निरञ्जना, चित्रदेवी, क्रोधिनी, कुलदीपिका, कुलवागीश्वरी, वाणी, मातृका, द्राविणी, द्रवा, योगेश्वरी, महामारी, भ्रामरी बिंदुरूपिणी, दूती, प्राणेश्वरी गुप्ता, वहुला, चामरी, प्रभा, कुब्जिका, ज्ञानिनी, ज्येष्ठा, भूशुण्डी, प्रकटा, अतिथि, द्राविणी, गोपनी, माया, कामबीजेश्वरी, क्रिया, शाम्भवी, केकरा, मेना, मुषलास्त्रा, तिलोत्तमा, अमेयविक्रमा, क्रूरा, सम्पत्शाला, त्रिलोचना, सुस्थी, हव्यवहा प्रीति, उष्मा, धूम्रार्चि, अङ्गदा, तपिनी, तापिनी, विश्वा भोगदा, धारिणी, धरा,

त्रिखंडा बोधिनी वश्या सकला शब्दरूपिणी ॥ बीजरूपा महामुद्रा योगिनी योनिरूपिणी। अनङ्गकुसुमानङ्गमेखलानङ्गरूपिणी॥वज्रेश्वरीच जयिनी सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी। षडङ्गयुवती योगयुक्ता ज्वालांशुमालिनी ॥ दुराशया दुराधारा दुर्जया दुर्गरूपिणी । दुरन्ता दुष्कृतिहरा दुर्ध्येया दुरतिक्रमा ॥ हंसेश्वरी त्रिकोणस्था शाकम्भर्य्यनुकम्पिनी । त्रिकोणनिलया नित्या परमामृतरञ्जिता ॥ महाविद्येश्वरी श्वेता भेरुण्डाकुलसुन्दरी । त्वरिता भक्तिसंसक्ता भक्तवश्या सनातनी ॥ भक्तानन्दमयी भक्तभाविका भक्तशङ्करी । सर्वसौन्दर्य्यनिलया सर्वसौभाग्यशालिनी ॥ सर्वसंभोगभवना सर्वसौख्यनिरूपिणी । कुमारीपूजनरता कुमारीव्रतचारिणी ॥ कुमारीभक्तिसुखिनी कुमारीरूपधारिणी । कुमारीपूजकप्रीता कुमारीप्रीतिदा प्रिया ॥ कुमारीसेवकासङ्गा कुमारीसेवकालया । आनन्दभैरवी बाला भैरवी वटुभैरवी ॥ श्मशानभैरवी कालभैरवी पुरभैरवी । महाभैरवपत्नी च परमानन्दभैरवी ॥ सु-

---

त्रिखंडा, बोधिनी, वश्या, सकला, शब्दरूपिणी, बीजरूपा, महामुद्रा, योगिनी, योनिरूपिणी, अनङ्गकुसुमा, अनंगमेखला, अनङ्गरूपिणी, वज्रेश्वरी, जयिनी, सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी, षडङ्गयुवती, योगयुक्ता, ज्वालांशुमालिनी, दुराशया, दुराधारा दुर्ज्जया, दुर्गरूपिणी, दुरन्ता, दुष्कृतिहरा, दुर्ध्येया, दुरतिक्रमा, हंसेश्वरी, त्रिकोणस्था, शाकम्भरी, अनुकम्पिनी, त्रिकोणनिलया, नित्या, परमामृतरञ्जिता, महाविद्येश्वरी, श्वेता, भेरुण्डा, कुलसुंदरी, त्वरिता, भक्तिसंसक्ता, भक्तवश्या, सनातनी, भक्तानंदमयी, भक्तभाविका, भक्तशङ्करी, सर्व्वसौंदर्यनिलया, सर्वसौभाग्यशालिनी, सर्वसंभोगभवना, सर्व्वसौख्यनिरूपिणी, कुमारीपूजनरता, कुमारीव्रतचारिणी, कुमारीभक्तिसुखिनी, कुमारीरूपधारिणी, कुमारीपूजकप्रीता, कुमारीप्रीतिदा, प्रिया, कुमारीसेवकासङ्गा, कुमारीसेवकालया, आनन्दभैरवी, बालभैरवी, वटुभैरवी, श्मशानभैरवी, कालभैरवी, पुरभैरवी,

धानन्दभैरवी च उन्मादानन्दभैरवी । मुक्तानन्दभैरवी च तथा तरुणभैरवी ॥ ज्ञानानन्दभैरवी च अमृतानन्दभैरवी । महाभयङ्करी तीव्रा तीव्रवेगा तपस्विनी ॥ त्रिपुरा परमेशानी सुन्दरी पुरसुन्दरी । त्रिपुरेशी पञ्चदशी पञ्चमी पुरवासिनी ॥ महासप्तदशी चैव षोड़शी त्रिपुरेश्वरी । महांकुशस्वरूपा च महाचक्रेश्वरी तथा ॥ नवचक्रेश्वरी चक्रेश्वरी त्रिपुरमालिनी । राजराजेश्वरी धीरा महात्रिपुरसुन्दरी ॥ सिन्दूरपूररुचिरा श्रीमत्रिपुरसुन्दरी । सर्वाङ्गसुन्दरी रक्ता रक्तवस्त्रोत्तरीयिणी ॥ जवा यावकसिन्दूररक्तचन्दन धारिणी । जवा यावक सिन्दूररक्तचन्दन रूपधृक् ॥ चामरी वालकुटिल निर्मलश्यामकेशिनी । वज्रमौक्तिकरत्नाढ्य किरीटमुकुटोज्ज्वला ॥ रत्नकुण्डल संसक्तस्फुरद्गण्ड मनोरमा । कुञ्जरेश्वरकुम्भोत्थमुक्तारञ्जित नासिका ॥ मुक्ताविद्रुम माणिक्यहाराढ्यस्तन मण्डला । सूर्यकान्तेन्दुकान्ताढ्यस्पर्शाश्मकण्ठभूषणा ॥ बीजपूरस्फुरद्बीज दन्तपङ्क्तिरनुत्तमा ।

महाभैरवपत्नी, परमानंदभैरवी, सुधानन्दभैरवी, उन्मादानंदभैरवी, मुक्तानंदभैरवी, तरुणभैरवी, ज्ञानानंदभैरवी, अमृतानंदभैरवी, महाभयङ्करी, तीव्रा, तीव्रवेगा, तपस्विनी, त्रिपुरा, परमेशानि, सुन्दरी, पुरन्दरी, त्रिपुरेशी, पञ्चदशी, पञ्चमी, पुरवासिनी, महासप्तदशी, षोड़शी, त्रिपुरेश्वरी, महांकुशस्वरूपा, महाचक्रेश्वरी, नवचक्रेश्वरी, चक्रेश्वरी, त्रिपुरमालिनी, राजराजेश्वरी, धीरा, महात्रिपुरसुंदरी, सिंदूरपूररुचिरा, श्रीमत्त्रिपुरसुंदरी, सर्वाङ्गसुंदरी, रक्ता, रक्तवस्त्रोत्तरीयिणी, जवायावकसिंदूररक्तचंदनधारिणी, जवायावकसिंदूररक्तचंदनरूपधृक्, चामरीवालकुटिलनिर्मलश्यामकेशिनी, वज्रमौक्तिकरत्नाढ्यकिरीटमुकुटोज्वला, रक्तकुण्डलसंसक्तस्फुरद्गण्डमनोहरा, कुञ्जरेश्वरकुम्भोत्थमुक्तारंजितनासिका, मुक्ताविद्रुममाणिक्यहाराढ्यस्तनमण्डला, सूर्यकान्देकांताढ्यस्पर्शश्मकंठभूषणा, बीजपूरस्फुरद्बीजदंतपंक्ति, अनुत्तमा, का-

कामकोदण्डकाभुग्नभ्रूकटाक्ष प्रवर्षिणी ॥ मातङ्ग कुम्भवक्षोजा लसत्कोकनदेक्षणा । मनोज्ञशष्कुलीकर्णा हंसीगति विडम्बिनी ॥ पद्मरागाङ्गद ज्योतिर्दोश्चतुष्क प्रकाशिनी । नानामणि परिस्फूर्जच्छुद्धकाञ्चन कङ्कना ॥ नागेन्द्रदन्तनिर्माणवलयाङ्कितपाणिनी । अंगुरीयकाचित्राङ्गी विचित्रक्षुद्रघण्टिका ॥ पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीरशिञ्जिनी। कर्पूरागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवलेपिता ॥ विचित्ररत्नपृथिवीकल्पशाखितलस्थिता । रत्नद्वीपस्फु रद्रक्तसिंहासनविलासिनी ॥ षट्चक्रभेदनकरी परमानन्दरूपिणी । सहस्रदलपद्मान्तश्चन्द्रमण्डलवर्त्तिनी ॥ ब्रह्मरूपशिवक्रोड़नानासुखविलासिनी । हरविष्णुविरिञ्चीन्द्रग्रहनायकसेविता ॥ शिवा शैवा च रुद्राणी तथैव शिववादिनी । मातङ्गिनी श्रीमती च तथैवानन्दमेखला ॥ डाकिनी योगिनी चैव तथोपयोगिनी मता । माहेश्वरी वैष्णवी च भ्रामरी शिवरूपिणी ॥ अलम्बुषा वेगवती क्रोधरूपा सुमेखला । गान्धारी हस्तिजिह्वा च इड़ा चैव शु-

---

मकोदण्डकाभुग्नभ्रूकटाक्षप्रवर्षिणी, मातङ्गकुम्भवक्षोजा, लसत्कोकनदेक्षणा, मनोज्ञशष्कुलीकर्णा, हंसीगतिविडम्बिनी, पद्मरागाङ्गदज्योतिर्दोश्चतुष्कप्रकाशिनी, नानामणिपरिस्फूर्जतशुद्धकाञ्चनकङ्कणा, नागेंद्रदंतनिर्माणवलयांकित पाणिनी, अंगुरीयकचित्रांगी, विचित्रक्षुद्रघण्टिका, पट्टाम्बरपरीधाना, कलमञ्जीरशिञ्जिनी, कर्पूरागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रवलेपिता, विचित्ररत्नपृथ्वीकल्पशाखितलस्थिता, रत्नद्वीपस्फुरद्रक्तसिंहासनविलासिनी, षट्चक्रभेदनकरी, परमानंदरूपिणी, सहस्रदलपद्मांतश्चंद्रमंडलवर्त्तिनी, ब्रह्मरूपशिवक्रोड़नानासुख विलासिनी, हरविष्णु विरिञ्चीद्रग्रहनायकसेविता, शिवा, शैवा, रुद्राणी, शिववादिनी, मातङ्गिनी, श्रीमती, आनन्दमेखला, डाकिनी, योगिनी, उपयोगिनी, माहेश्वरी, वैष्णवी, भ्रामरी, शिवरूपिणी, अलंबुषा, वेगवती, क्रोधरूपा, सुमेखला, गांधारी, हस्तिजिह्वा, ईडा, शुभङ्करी, पिंगला, ब्रह्मसूत्रीसुषु

भङ्करी ॥ पिङ्गला ब्रह्मदूती च सुषुम्ना चैव गन्धिनी । आत्मयोनिर्ब्रह्मयोनिर्जगद्योनिरयोनिजा ॥ भगरूपा भगस्थात्री भगिनी भगरूपिणी । भगात्मिका भगाधाररूपिणी भगमालिनी ॥ लिङ्गाख्या चैव लिङ्गेशी त्रिपुराभैरवी तथा । लिङ्गगीतिः सुगीतिश्च लिङ्गस्था लिङ्गरूपधृक् ॥ लिङ्गमाला लिङ्गभवा लिङ्गलिङ्गा च पार्वती । भगवती कौशिकी च प्रेमा चैव प्रियंवदा गृध्ररूपा शिवारूपा चक्रिणी चक्ररूपधृक् । लिङ्गाभिधायिनी लिङ्गप्रिया लिङ्गनिवासिनी ॥ लिङ्गस्था लिङ्गिनी लिङ्गरूपिणी लिङ्गसुन्दरी । लिङ्गगीतिर्महा प्रीता भगगीतिर्महासुखा ॥ लिङ्गनामसदानन्दा भगनामसदागतिः लिङ्गमालाकण्ठभूषा भगमालाविभूषणा ॥ भगलिङ्गामृतप्रीता भगलिङ्गामृतात्मिका । भगलिङ्गार्चनप्रीता भगलिङ्गस्वरूपिणी ॥ भगलिङ्गस्वरूपा च भगलिङ्गसुखावहा ॥ स्वयम्भू कुसुमप्रीता स्वयम्भू कुसुमार्चिता । स्वयम्भू कुसुमप्राणा स्वयम्भूकुसुमोत्थिता । स्वयम्भूकुसुमस्ना-

म्ना, गन्धिनी, आत्मयोनि, ब्रह्मयोनि, जगद्योनि; अयोनिजा: भगरूपा, भगस्थात्री; भगिनी; भगरूपिणी; भगात्मिका, भगाधाररूपिणी, भगमालिनी, लिंगाख्या, लिंगेशी, त्रिपुराभैरवी, लिंगगीति, सुगीति, लिंगस्था, लिंगरूपधृक्, लिंगमाला, लिंगभवा, लिंगलिंगा, पार्वती, भगवती, कौशिकीप्रेमा, प्रियम्वदा, गृध्ररूपा, शिवरूपा, चक्रिणी, चक्ररूपधृक्, लिंगाभिदायिनी, लिंगप्रियालिंगनिवासिनी, लिंगस्था, लिंगिनी, लिंगरूपिणी, लिंगसुन्दरी, लिंगगीति, महाप्रीता, भगगीति, महासुखा, लिंगनामसदानंदा, भगनामसदागति, भगनामसदानंदा, लिंगनामसदागति, लिंगमालाकंठभूषा, भगमालाविभूषणा, भगलिंगामृतप्रीता, भगलिंगमृतात्मिका, भगलिंगार्चनप्रीता, भगलिंगस्वरूपिणी, भगलिंगस्वरूपा, भगलिंगसुखावहा, स्वयंभूकुसुमप्रीता, स्वयंभूकुसुमार्चिता, स्वयम्भूकुसुमप्राणा, स्वयम्भू कुसुमोत्थिता, स्वयम्भूकुसुमस्नाता, स्वयम्भूपुष्पतर्पिता

ता स्वयम्भू पुष्पतर्पिता ॥ स्वयम्भूपुष्पघटिता स्वयम्भूपुधारिणी । स्वयम्भूपुष्पतिलका स्वयम्भूपुष्पचर्चिता ॥ स्वयम्भूपुष्पनिरता स्वयम्भूकुसुमग्रहा । स्वयम्भूपुष्पयज्ञांशा स्वयम्भूकुसुमात्मिका ॥ स्वयम्भूपुष्पनिचिता स्वयम्भूकुसुमाप्रिया । स्वयम्भूकुसुमादानलालसोन्मत्तमानसा ॥ स्वयम्भूकुसुमानन्दलहरीस्निग्धदेहिनी । स्वयम्भूकुसुमाधारा स्वयम्भूकुसुमाकुला ॥ स्वयम्भूपुष्पनिलया स्वयम्भूपुष्पवासिनी । स्वयम्भूकुसुमस्निग्धा स्वयम्भूकुसुमात्मिका ॥ स्वयम्भूपुष्पकरिणी स्वयम्भूपुष्पपाणिका । स्वयम्भूकुसुमध्याना स्वयम्भू कुसुमप्रभा ॥ स्वयम्भूकुसुमज्ञाना स्वयम्भूपुष्पभोगिनी ॥ स्वयंभू कुसुमोल्लासा स्वयम्भूपुष्पवर्षिणी ॥ स्वयम्भूकुसुमोत्साहा स्वयम्भूपुष्परूपिणी । स्वयम्भूकुसुमोन्मादा स्वयम्भूपुष्पसुन्दरी ॥ स्वयम्भू कुसुमाराध्या स्वयम्भू कुसुमोद्भवा । स्वयम्भू कुसुमव्यग्रा स्वयम्भू पुष्पपूर्णिता ॥ स्वयम्भू पूजकप्रज्ञा स्वयम्भू होतृमातृका । स्वयम्भू दातृरचित्री स्वयम्भू रक्त ता-

---

स्वयम्भू पुष्पघटिता, स्वयम्भू पुष्पधारिणी, स्वयम्भू पुष्पतिलिका, स्वयम्भूपुष्प चर्चिता, स्वयम्भू पुष्पनिरता, स्वयम्भू कुसुमग्रहा, स्वयम्भूपुष्पयज्ञांशा, स्वयम्भू कुसुमात्मिका, स्वयम्भू पुष्पनिचिता, स्वयम्भू कुसुमादान लालसोन्मत्त मानसा, स्वयम्भू कुसुमानन्द लहरी, स्निग्धदेहिनी स्वयम्भु कुसुमाधारा, स्वयम्भूकुसुमाकुला, स्वयम्भू पुष्प निलया, स्वयम्भू पुष्प वासिनी, स्वयम्भू, कुसुम स्निग्धा, स्वयम्भू कुसुमात्मिका, स्वयम्भू पुष्प कारिणी, स्वयम्भू, पुष्प पाणिका, स्वयम्भू कुसुमध्याना, स्वयम्भू कुसुमप्रभा, स्वयम्भू कुसुम ज्ञाना, स्वयम्भू पुष्प भोगिनी, स्वयम्भू कुसुमोल्लासा, स्वयम्भू पुष्प वर्षिणी, स्वयम्भू कुसुमोत्साहा, स्वयम्भू पुष्प रूपिणी, स्वयम्भू कुसुमोन्मादा, स्वयम्भू पुष्प सुन्दरी, स्वयम्भू कुसुमाराध्या, स्वयम्भू कुसुमोद्भवा, स्वयम्भू कुसुम व्यग्रा, स्वयम्भू पुष्प पूर्णिता, स्वयम्भू पूजक प्रज्ञा, स्वयम्भू होतृमातृका,

रिका ॥ स्वयम्भू पूजकग्रस्ता स्वयम्भू पूजकप्रिया । स्वयम्भू वन्दकाधारा स्वयम्भू निन्दकान्तका ॥ स्वयम्भू प्रदसर्वस्वा स्वयम्भू प्रदपुत्रिणी । स्वयम्भू प्रदसस्मेरा स्वयम्भू प्रदशरीरिणी । सर्वकालोद्भवप्रीता सर्वकालोद्भवात्मिका ॥ सर्वकालोद्भवोद्भावा सर्वकालोद्भवोद्भवा । कुण्डपुष्पसदाप्रीतिर्गोलपुष्पसदारतिः ॥ कुण्डगोलोद्भवप्राणा कुण्डगोलोद्भवात्मिका । स्वयम्भू वा शिवा धात्री पावनी लोकपावनी ॥ कीर्त्तिर्यशस्विनी मेधा विमेधा शुक्रसुन्दरी । अश्विनी कृत्तिका पुण्या तेजस्का चन्द्रमण्डला । सूक्ष्मासूक्ष्मा वलाका च वरदा भयनाशिनी ॥ वरदाभयदा चैव मुक्तिवन्धविनाशिनी । कामुका कामदा कान्ता कामाख्या कुलसुन्दरी ॥ दुःखदा सुखदा मोक्षा मोक्षदार्थ प्रकाशिनी । दुष्टादुष्टमतिश्चैव सर्वकार्य्य विनाशिनी ॥ शुक्राधारा शुक्ररूपा शुक्रसिन्धु निवासिनी । शुक्रालया शुक्रभोगा शुक्रपू

स्वयम्भु दातृरक्षित्री, स्वयम्भू रक्ततारिका, स्वयम्भू पूजकग्रस्ता, स्वयम्भू पूजक प्रिया, स्वयम्भू वन्दकाधारा, स्वयम्भू निन्दकान्तका, स्वयम्भू प्रदसर्वस्वा, स्वयम्भू प्रदपुत्रिणी, स्वयम्भू प्रदसस्मेरा, स्वयम्भू प्रद शरीरिणा, सर्व कालोद्भवप्रीता, सर्व कालोद्भवात्मिका, सर्वकालोद्भवोद्भावा, सर्वकालोद्भवोद्भवा, कुण्डपुष्प सदाप्रीति, गोलपुष्पसदारति, कुण्डगोलोद्भव प्राणा, कुण्डगोलोद्भवात्मिका. स्वयम्भुवा, शिवा, धात्री, पावनी, लोक पावनी; कीर्त्ति; यशस्विनी; मेधा; विमेधा; शुक्रसुंदरी; अश्विनी: कृत्तिका, पुण्य, तेजस्का, चंद्रमण्डला, सूक्ष्मासूक्ष्म, वलाका, वरदा, भयनाशिनी, वरदा, अभयदा, मुक्तिबंध विनाशिनी, कामुका, कामदा, कान्ता कामाख्या, कुलसुन्दरी, दु:खदा, सुखदा मोक्षा, मोक्षदार्थ, प्रकाशिनी, दुष्टा, दुष्टमति, सर्वकार्यविनाशिनी, शुक्राधारा, शुक्ररूपा, शुक्रसिन्धु, निवासिनी, शुक्रालया, शुक्रभोगा, शुक्रपूजा, सदारति, शुक्र

जासदारतिः ॥ शुक्रपूज्या शुक्रहोमसन्तुष्टा शुक्रवत्सला । शुक्रमूर्त्तिः शुक्रदेहा शुक्रपूजकपुत्रिणी ॥ शुक्रस्था शुक्रिणी शुक्रसंस्पृहा शुक्रसुन्दरी । शुक्रस्नाता शुक्रकरी शुक्रसेव्यातिशुक्रिणी ॥ महाशुक्रा शुक्रभवा शुक्रवृष्टिविधायिनी । शुक्राभिधेया शुक्रार्हा शुक्रवन्दकवन्दिता ॥ शुक्रानन्दकरी शुक्रसदानन्दाभिधायिका । शुक्रोत्सवा सदाशुक्रपूर्णा शुक्रमनोरमा ॥ शुक्रपूजकसर्वस्वा शुक्रनिन्दकनाशिनी । शुक्रात्मिका-शुक्रसम्पत् शुक्राकर्षणकारिणी ॥ शारदा साधकप्राणा साधकासक्तमानसा । साधकोत्तमसर्वस्वा साधकाभक्तरक्तपा ॥ साधकानन्दसन्तोषा साधकानन्दकारिणी । आत्मविद्या ब्रह्मविद्या, परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ त्रिकूटस्था पञ्चकूटा सर्वकूटशरीरिणी । सर्ववर्णमयी वर्णजपमालाविधायिनी ॥

श्रीशिव उवाच ।

इति श्रीकालिकानामसहस्रं शिवभाषितम् । गुह्याद्गुह्यतरं साक्षात् महापातकनाशनम् ॥ पूजाकाले निशीथे च स-

---

पूज्या,शुक्रहोम, सन्तुष्टा, शुक्रवत्सला, शुक्रमूर्त्ति,शुक्र, देहा, शुक्रपूजक, पुत्रिणी शुक्रस्था, शुक्रिणी, शुक्रसंस्पृहा, शुक्रसुन्दरी, शुक्रस्नाता,शुक्रकरी, शुक्र,सेव्या अतिशुक्रिणी, महाशुक्रा,शुक्र भवा,शुक्रवृष्टि,विधायिनी, शुक्राभिधेया, शुक्रार्हा शुक्रवंदन- वंदिता,शुक्रानन्दकरी, शुक्रसदानदाभिधायिका,शुक्रोत्सवा, सदा-शुक्र, पूर्णा,शुक्रमनोरमा, शुक्रपूजकसर्वस्वा, शुक्रनिंदक, नाशिनी,शुक्रात्मिका शुक्रसम्पत्, शुक्राकर्षण, कारिणी, सारदा, साधकप्राणा, साधकासक्तमानसा साधकोत्तम, सर्वस्वा,साधका,भक्त,रक्तपा, साधकानन्द सन्तोषा, साधकानद कारिणी, आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या, परब्रह्म स्वरूपिणी, त्रिकूटस्था, पचकूटा, सर्व कूट, शरीरिणी, सर्ववर्ण मयी और वर्ण जयमाला विधायिनी ॥

महादेव कथित श्री कालिका के यह सहस्रनाम गुह्य से गुह्यतर और साक्षात महापातक विनाश करते हैं रात्रि अथवा दोनों सध्याओं में पूजा के

न्ध्ययोरुभयोरपि। लभते गाणपत्यं स यः पठेत् साधकोत्तमः॥ यः पठेत् पाठयेद्वापि शृणोति श्रावयेदथ। सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति कालिकापुरम्॥ श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि यः कश्चिन्मानवःस्मरेत्। दुर्गं दुर्गशतं तीर्त्वा स याति परमां गतिम्॥ वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याङ्गना। श्रुत्वा स्तोत्रमिदं पुत्रान् लभते चिरजीविनः॥ यं यं कामयते कामं पठन् स्तोत्रमनुत्तमम्। देवीपादप्रसादेन तत्तदाप्नोति निश्चितम्॥ स्वयम्भूकुसुमैः शुक्रैः सुगन्धिकुसुमान्वितैः। जवायावकसिंदूररक्तचन्दनसंयुतैः॥ मत्स्यमांसादिभिर्धीरो मधुभिः साज्यपायसैः भक्त्योपनीतैर्मन्त्रेण शोधितैः सह पञ्चमैः॥ पञ्चोपचारनैवेद्यैर्बलिभिर्बहुशोणितैः। धूपदीपैर्महादेवीं पूजयित्वा मनोहरैः॥ जप्त्वा महामनुस्तोत्रं पठेद् भक्तिसमन्वितः। अनन्यचेताः स्थिरधीर्मुक्तकेशो दिगम्बरः॥ शवारूढश्चितास्थो

समय इसका पाठ करने से साधकोत्तम और गाणपत्य प्राप्त होजाता है। जो व्यक्ति इसका पाठ करता है और कराता है अथवा जो व्यक्ति इस सहस्र नामको सुनता और सुनाता है वह सर्वदा पापों से छूटकर कालिका पुर में गमन करता है। श्रद्धा से अथवा अश्रद्धा से जो कोई इसको श्रवण करता है वह दुर्ग और शतदुर्ग उत्तरणकर परम गतिको प्राप्त होता है। जो स्त्री वंध्या, वा काकवंध्या, या मृतवत्सा है, वह इस स्तोत्र के सुनने से चिर जीवी पुत्रलाभ करती है। जो जो कामना करीजाय, इस स्तोत्रके पाठ करने और देवी के प्रसाद से निसंदेह वह सब पूर्ण होती हैं। भक्ति सहित स्वयम्भू कुसुम, शुक्र, सुगंधित पुष्पयुक्त जवा (गुडहल) यावक (लाखका रंग) सिंदूर, लाल चंदन, मत्स्यमांसादि, मधु, घृत सहित खीर, शोधित पञ्चमकार सहित और पंचोपचार सहकृत् नैवेद्य, बहुत रुधिर युक्त अनेक बलि, एवं मनोहर धूप और दीप निवेदनपूर्वक भक्तियुक्तहो महामनु जपकर इस स्तोत्रको पढे। जो व्यक्ति मुक्तकेश, नग्नवेश, स्थिर मन और अनन्य चित्तसे शव में आरोहण, वा चिता भूमि में अवस्थान, वा श्मशानालय में

वा श्मशानालयमागतः। शून्यालयगतो वापि शय्यास्थो वा शिवात्मकः॥ स भवेत् कालिकापुत्र इतिख्याति मुपागतः। सर्वविद्यावतां श्रेष्ठो धनेन च धनाधिपः॥ वायुतुल्यबलो लोके दुर्जयः शत्रुमर्दनः। सर्वसङ्कटमुत्तीर्णः सर्वसिद्धिसमन्वितः॥ मधुमत्या स्वयं देव्या सेव्यमानःस्मरोपमः। महेश इव योगीन्द्रःसर्वसत्त्वपुरस्कृतः॥ कामिनीकामरूपोऽसौ सर्वाकर्षणकारकः। जलसूर्य्येन्दुवायूनां स्तम्भकोराजवल्लभः॥ यशस्वी सत्कविर्धीमान् सन्मन्त्री कोकिलस्वरः। बहुपुत्री गजाश्वानामीश्वरो धार्मिकःकृती॥ मार्कण्डेय इवायुष्मान् जरापलितवर्जितः। नवयौवनयुक्तःस्यादपि वर्षसहस्रभाक्॥ बहु किं कथ्यते तस्य पठतःस्तोत्रमुत्तमम्। न किंचिद्दुर्लभं लोके यदयत् मनसि वर्त्तते॥ ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्ग

गमन अथवा शून्यालय (सूना मकान) में विराजमान, किम्वा शय्या पर शयन करके इसप्रकार से पाठ करें, तो वह व्यक्ति शिवमय और कालिका के पुत्र नाम से सर्वत्र विख्यात होता है। और समस्त विद्वानों में अग्रगण्य होता है। धन में कुवेर की समान और वायु की समान बलयुक्त होकर सब लोकों से दुर्जय होता है और शत्रुगणों का मर्दन सब प्रकारके संकट से पार उतरना सर्व प्रकारकी सिद्धि संकलन और कामदेवकी समान अधिगमन करता है। स्वयं देवी मधुमती उसकी सेवा में प्रवृत्त होती है। वह महादेवजी की समान योगीन्द्र और समस्त सत्वका अग्रणी कामिनीगणों को कामरूप, सबका आकर्षण करनेवाला, जल, सूर्य और वायु का स्तम्भिक राजवल्लभ, यशस्वी, सत्कवि, परमबुद्धिमान, सब विषयों में अच्छी परामर्श देने को समर्थ, कोकिल की समानकलकण्ठ, अनेक पुत्रोंका पिता, गज और अश्वादि सबका ईश्वर धार्मिक, कृतीमार्कण्डेयकी समान दीर्घायु जराहीन, पलित विहीन नवयौवन युक्त और सहस्र वर्ष जीवी होता है। अधिक कहने से और क्या है? इस उत्तम स्तोत्रके पाठ करने से जो कुछ मन में इच्छा होती है, वह कुछ दुर्लभ नहीं होती। ब्रह्महत्या, सुरापान,

नागमः । सर्वमाशु भवत्येव स्तवस्यास्य प्रसादतः ॥ रजस्व-लाभगं पश्यन् जप्त्वा कालीं महामनुम् । स्तवेनानेन संस्तुत्य साधकः किं न साधयेत् ॥ परदारपरो वापि जप्त्वा मंत्रं पठन् स्तवम् । कुवेर इव वित्ताढ्यो जायते साधकोत्तमः ॥ अष्टोत्तरशतंजप्त्वा योनिमामन्त्र्य तत्त्ववित् । संगम्य पठनादस्य सर्वविद्येश्वरो भवेत् ॥ दिगम्बरो मुक्तकेशः शय्यास्थो मैथुनी नरः । जप्त्वा स्तुत्वा महाकालीं खेचरो जायतेऽचिरात् ॥ शुक्रोत्सारणकाले च जपपूजापरायणः । श्मशानकालिकां स्तुत्वा वाणीव सत्कविर्भवेत् ॥ आलोकयन् चिंतयन् वा विवस्त्रां परयोषिताम् । जप्त्वा स्तुत्वा महाकालीं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सुरतेषु मनुं जप्त्वा स्तुत्वा भगवतीं शिवाम् । सर्वपापैः परित्यक्तो मानवः स्यात् शुकोपमः ॥ कुहुपूर्णेन्दुसं-

---

चौर्य, गुरुपत्नी गमन, इत्यादि समस्त पातक इस स्तवके प्रसाद से शीघ्र नष्ट होते है । उदकी का कुल मंदिर देखकर काली और तदीय महामन्त्र के जप सहित इस स्तोत्र का पाठ करने से साधक किस वस्तु का साधन नहीं करसक्ता ? जो व्यक्ति परदार परायण अर्थात् पराई स्त्री में रत है, वह भी मंत्र जपने के पीछे इस स्तव का पाठ करने से कुवेर की समान वित्ताढ्य (धनवान) और साधकोत्तम होते हैं । तत्त्ववित् साधकयोनि आमन्त्रण करके संगम के पीछे इस स्तव का पाठ करने से सम्पूर्ण विद्या का ईश्वर होता है । जो व्यक्ति दिगम्बर (नग्न) मुक्तकेश (खुलेबाल) शय्यास्थ (शय्यापर स्थित) और मैथुनी होकर महाकाली का जप और स्तव करता है, वह शीघ्र खेचर होता है शुक्रोत्सारण समय में जप पूजा परायण होकर श्मशान कालिका का स्तव करने से साक्षात् वाणी की समान सत्कवि होजाता है । वसन हीन पराई स्त्री का दर्शन या चिन्तन करके महाकाली का जप और स्तव करने से सब प्रकार के पाप दूर होते हैं । सुरत समय मंत्र जप और भगवती शिवा का स्तव करने से मनुष्य शुक के सदृश

कांतिचतुर्दश्यष्टमीषु च । नवम्यां मङ्गलदिने पठेत् स्तोत्रं सुसाधकः ॥ भौमावास्यां निशीथे च चतुष्पथगतो नरः । मासभक्तबलिं दत्त्वा सदग्धमीनशोणितम् ॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पठन्नामसहस्रकम् । सोऽदर्शनो भवेदाशु देवगंधर्व सेवितः ॥ येन तेन प्रकारेण कालीस्तुतिपरायणः । स्तम्भ येदखिलान् लोकान् राजानमपि मोहयेत् ॥ आकर्षयेद्देवकन्यां वशयेदपि केशवम् । मारयेदखिलान् दुष्टानुच्चाटयति शात्रवान् नरमार्जारमहिषच्छागमूषिकशोणितैः।सास्थिमांसैःसमधुभिः सौवीरैःदुग्धपायसैः॥ योनिलक्षणतोयेनभगलिंगामृतेन च । शुक्रैः पूजाजपान्ते तु कालीं सन्तर्प्य साधकः ॥ सहस्रनाम-भिर्दिव्यैः स्तौति भक्तिपरायणः । मातेव दक्षिणा तस्य सर्वत्र हितकारिणी ॥ परनिन्दापरद्रोहपरदारपराय च । खलाय

और सर्व पाप से रहित होता है । श्रेष्ठ साधक अमावस्या, पौर्णमासी, संक्रान्ति, चतुर्दशी (चौदश) अष्टमी और नवमी इन सब तिथि और मंगलवार में उल्लिखित स्तव पाठ करे । अमावस्या के निशीथ (रात्रि) समय चौराहे में गमन करके दग्ध मीन और शोणित सहित बलिप्रदान पूर्वक अष्टोत्तर शत नाम सहस्र जप करने से साधक अदर्शन होजाता है । एवं देव और गंधर्वगण सेवा करते हैं । जिस किसी प्रकार से कालीस्तुति परायण होकर इस स्तवका पाठ करने से साधक समस्त लोक को स्तम्भित राजाको भी मोहित, देवकन्या को भी आकर्षित, केशवको भी वशीकृत, समस्त दुष्टगणों को विनाशित और समस्त शत्रुगणों को उच्चाटित किया-जाता है । जो व्यक्ति अस्थि, मांस, मधु, दुग्ध पायस और योनिलक्षणा नुसार भग लिङ्गामृत और शुक्र प्रदान सहित जप और पूजा करके कालीका सन्तर्पण पूर्वक भक्ति परायण होकर दिव्य सहस्र नाम द्वारा स्तव करता है दक्षिण कालिका जननीकी समान सर्वत्र उसका हित करती हैं । जो व्यक्ति परनिन्दक, परद्रोही, परदार परायण, खल, परतन्त्र, भ्रष्ट, असाधक, शिव के प्रति भक्ति रहित, दुष्ट स्वभाव, दूषक, दुरात्मा, हरिभक्ति विहीन, पर-

परतन्त्राय भ्रष्टायासाधकाय च ॥ शिवाभक्ताय दुष्टाय दू-षकाय दुरात्मने । हरिभक्तिविहीनाय परदारपराय च ॥ पू-जाजपविहीनाय स्त्रीसुरानिन्दकाय च । न स्तवं दर्शयेद्देवि ! सन्दर्श्य शिवहा भवेत् ॥ कुलीनाय महोत्साय दुर्गाभक्ति-पराय च । वैष्णवाय विशुद्धाय भक्तियुक्ताय मन्त्रिणे ॥ अ-द्वैतानन्दरूपाय निवेदितरताय च । दद्यात् स्तोत्रं महाका-ल्याः साधकाय शिवाज्ञया ॥ गुरुविष्णुमहेशानामभेदेन म-हेश्वरीम् । स्वमन्त्रां भावयेत् मन्त्री महेशः स्यान्न संशयः ॥ स शाक्तः शिवभक्तश्च स एव वैष्णवोत्तमः । संपूज्य स्तौति यः कालीमद्वैतभावमावहन् ॥ देव्यानन्देन सानन्दो देवी-भक्तेन भक्तिमान् । स एव धन्यो यस्यार्थे महेशो व्यग्रमा-नसम् ॥ कामयित्वा यथाकामं स्तवमेन मुदीरयेत् । सर्वरो-गविनिर्मुक्तो जायते मदनोपमः ॥ चक्रं वा स्तव मेनं वा

दार पर, पूजा जप रहित, स्त्री निन्दक, और सुरा निंदक है, उसको इस स्तवका दर्शन भी न करावै । दिखाने से शिव घातक होता है । जो कु-लीन, महोत्साहयुक्त, दुर्गा के प्रति भक्ति युक्त, वैष्णव, विशुद्ध स्वभाव, भ-क्ति संयुक्त, मंत्र साधन तत्पर, और अद्वैतानंद स्वरूप, एवं महाकाली का साधक है, उसकोही शंकर की आज्ञा से यह स्तोत्र प्रदान करै । गुरु विष्णु और महेश्वर के अभेद में महेश्वरी की भावना करने से साधक साक्षात् म-हेश्वर होजाता है । इस में संदेह नहीं है । जो व्यक्ति अद्वैत भाव अवलम्बन पूर्वक कालीकी भली भांति पूजा करके स्तव करता है, वही शाक्त, वही शिव भक्त और वही वैष्णवोत्तम है । जो व्यक्ति देवी के आनन्द मेंही आनन्द मान और देवीकी भक्ति मेंही भक्तिमान है, वही धन्य है । श्री महादेव जी सदा उसकेही लिये व्यग्र चित्त रहते हैं । यथा—काम कामना करके इस स्तवका पाठ करने से सर्वरोग विनिर्मुक्त, और मदनोपम (कामदेवकी समान उपमा योग्य) होता है । जो व्यक्ति चक्र वा इस स्तव को यथा

धारयेदङ्गसङ्गतम्। विलिख्य विधिवत् साधुः स एव कालिका तनुः ॥ देव्यै निवेदितं यद्यत् तस्यांशं भक्षयेन्नरः। दिव्य-देहधरो भूत्वा देव्याः पार्श्वचरो भवेत् ॥ नैवेद्यनिन्दकं दृष्ट्वा नृत्यन्ति योगिनीगणाः। रक्तपानोद्यताः सर्वे मांसास्थिचर्वणोद्यताः ॥ तस्मान्निवेदितं देव्यै दृष्ट्वा श्रुत्वा च मानवः। न निन्देत् मनसा वाचा सर्वव्याधिपराङ्मुखः ॥ आत्मानं कालिकात्मानं भावयन् स्तौति यः शिवाम्। शिवोपमं गुरुं ध्यात्वा स एव श्रीसदाशिवः ॥

यस्यालये तिष्ठति नून मेतत् स्तोत्रं भवान्या लिखितं विधिज्ञैः। गोरोचनालक्तककुंकुमाक्तसिन्दूरकर्पूरमधुद्रवेण ॥ न तस्य चौरस्य भयं न दस्योर्मनोरथो नाशनिवह्निभीतिः। उत्पातवायो रपि नात्र शङ्का लक्ष्मीः स्वयं तत्र वसेदलोला।

विधि लिखकर अंगसंगत (अंग के संग) धारण करताहै, वही साधु और वही काली देह होता है। देवीको जो २ वस्तु निवेदन करीजाती है, उसका केवल अंशमात्र भक्षणकरने से दिव्यदेह और देवीका पार्श्वचर (निकट-वर्ती होजाता है। जो व्यक्ति नैवेद्य की निन्दा करता है, योगिनीगण उसको देखकर नाचती हैं, एवं उसका रक्त पीने में उद्यत और मांस व अस्थि चाबनेको उद्यत होती हैं। इसलिये देवी के उद्देश से निवेदित द्रव्य देखकर व सुनकर, वाक्य वा मन द्वारा निन्दा न करने से समस्त व्याधि दूर होती है। जो व्यक्ति आत्माको कालिकात्मा जानकर उसका ध्यान धारण सहित स्तव करता है, और गुरुको भी उसी की समान विचारता है, वही व्यक्ति साक्षात् श्री सदा शिव है। जो व्यक्ति विधि जाननेवाले व्यक्ति की सहायता से गोरोचना, महावर, कुंकुमाक्त सिंदूर, कपूर, और मधु मुद्रा द्वारा भवानी का यह स्तव लिखकर गृह में प्रतिष्ठापित करता है, उसको चोरभय नहीं रहता, उसका दस्यु [तस्कर] भय दूर होता है, इसके अतिरिक्त वज्र और अग्नि भय भी दूर होता है। उसके उस गृह में स्वयं लक्ष्मी अचल होकर वास करती है, और उत्पात वायुकी आशंका

परतन्त्राय भ्रष्टायासाधकाय च ॥ शिवाभक्ताय दुष्टाय दूषकाय दुरात्मने । हरिभक्तिविहीनाय परदारपराय च ॥ पूजाजपविहीनाय स्त्रीसुरानिन्दकाय च । न स्तवं दर्शयेद्देवि ! सन्दर्श्य शिवहा भवेत् ॥ कुलीनाय महोत्साय दुर्गाभक्तिपराय च । वैष्णवाय विशुद्धाय भक्तियुक्ताय मन्त्रिणे ॥ अद्वैतानन्दरूपाय निवेदितरताय च । दद्यात् स्तोत्रं महाकाल्याः साधकाय शिवाज्ञया ॥ गुरुविष्णुमहेशानामभेदेन महेश्वरीम् । स्वमन्त्रां भावयेत् मन्त्री महेशः स्यान्न संशयः ॥ स शाक्तः शिवभक्तश्च स एव वैष्णवोत्तमः । संपूज्य स्तौति यः कालीमद्वैतभावमावहन् ॥ देव्यानन्देन सानन्दो देवीभक्तेन भक्तिमान् । स एव धन्यो यस्यार्थे महेशो ... नसम् ॥ काम... गविनिर्मन्थे मन्त्रसिद्ध्यर्थमादौ पुरश्चरणविधिर्लिख्यते

तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

आदौ पुरस्क्रियां कुर्वन् नियमेन यथाविधि । लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः ॥ रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः

भी पद ग्रहण नहीं करसकी । जो व्यक्ति देवी कालिका के पादारविन्द में एकाग्र चित्त होकर यह अनन्त पुण्ययुक्त स्तव पाठ करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथ होकर सम्यक् प्रकार से पूजा फल के विधानको प्राप्त होता है ॥

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित
श्यामारहस्य श्रीपण्डितहरिशंकरकृत भाषाटीकासहित
चतुर्थपरिच्छेद ॥ ४ ॥

अब मन्त्रसिद्धि के लिये आदौ पुरश्चरण विधि कहते हैं । कालीतन्त्र में कहा है । यथा—प्रथम यथा विधि नियमा... दिन में हविष्याशी और

धारयेदङ्गसङ्गतम्। विलिख्य विधिवत् साधुः स एव कालिका तनुः॥ देव्यै निवेदितं यद्यत् तस्यांशं भक्षयेन्नरः। दिव्य-देहधरो भूत्वा देव्याः पार्श्वचरो भवेत्॥ नैवेद्यनिन्दकं दृष्ट्वा नृत्यन्ति योगिनीगणाः। रक्तपानोद्यताः सर्वे मांसास्थिचर्वणोद्यताः॥ तस्मान्निवेदितं देव्यै दृष्ट्वा श्रुत्वा च मानवः। न निन्देत् मनसा वाचा सर्वव्याधिपरांमुखः॥ आत्मानं कालिकात्मानं भावयन् स्तौति यः शिवाम्। शिवोपमं गुरुं ध्यात्वा स एव श्रीसदाशिवः॥

यस्यालये तिष्ठति नून मेतत् स्तोत्रं भवान्या लिखितं विधिज्ञैः। गोरोचनालक्तककुंकुमाक्तसिन्दूरकर्पूरमधुद्रवेण॥ न तस्य चौरस्य भयं न दस्योर्मनोरथो नाशनिवह्निभीतिः। तद्दशां... सर्पिषा दिवा। मधुना वासिता मिश्रतोयेन ... वसेदलोला। देवीञ्चाभिषिञ्चत्तोयैस्तर्पणञ्च दशांशतः तद्दशांश ५ और

पवित्र होकर पुरश्चरण पूर्वक एकलक्ष जप करै। फिर रात्रि में ताम्बूल पूरित वदन से शय्यापर शयन करके इसप्रकार लक्षमान जप करना चाहिये। तो साधक सिद्ध मंत्र और प्रयोग योग्य होता हैं, नहीं तो नहीं। जीवहीन देही जिस प्रकार कोई कार्य नहीं करसक्ता, पुरश्चरण हीन मंत्र दाता भी इसी प्रकार किसी प्रयोग के साधन में समर्थ नहीं होता। इस कारण साधक सत्तम आदि में पुरश्चर्या करै, कभी अनाचार में प्रवृत्त न हो इतस्ततः अर्थात् इधर उधर उच्चारण न करै, विशेषतः पशु हिंसा दूर करै। देवीके उद्देश से बलिदानके अतिरिक्त और सर्वत्र हिंसाका त्याग करै। अन्य मंत्र पुरस्काकार में निंदाका भी परित्याग करै। अनन्तर प्रयोग में प्रवृत्तहोना चाहिये। स्वतन्त्र में भी कहा है दिन में हविष्याशी और पवित्र होकर लक्ष जप और उसके दशांस में हवि॰ द्वारा होम करै। हे परमेश्वरी! दिवाभाग में तीर्थ सलिल दुग्ध, मधु, घृत और मधुवासित मिश्रजल द्वारा देवीको अभिषिक्त और दशांशतः जल द्वारा उनका तर्पण करना चाहिये।

कर्त्तव्यमवश्यकम् । यदि न्यूनाधिकं कुर्य्याद् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥

मुण्डमालायाम् ।

प्रातःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि । प्रथमेऽहनि यज्जप्तं तज्जप्तव्यं दिने दिने ॥ न्यूनाधिकं न जप्तव्यं आसमाप्तेः सदा जपेत् । संख्यापूर्णो निजद्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः ॥ यथोक्तकुण्डे जुहुयाद् यथाविधि समाहितः । अथवा प्रत्यहं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः । ततो होमदशांशन्तु जले संपूज्य देवताम् ॥

तर्पणादिकं कार्य्यमित्यादि । कुलसम्भवेऽपि ।

स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः । दिवा चैव प्रकर्त्तव्यं सर्वकामार्थसिद्धये ॥

ताराप्रदीपे च ।

विविच्य विधिवद्विद्वान् मण्डलं सुमनोहरम् । तस्मिन्

चाहिये । न्यूनाधिक करने से व्रत भ्रष्ट होता है । मुण्डमाला में भी कहा है कि प्रातकाल से आरंभ करके मध्यान्ह काल पर्यन्त जप करै । प्रथम दिन जितना जप करै, प्रति दिन उतनाही जप करना चाहिये । न्यूनाधिक जप न करै असमाप्ति में सर्वदा जप करै । संख्या पूर्ण होनेपर अपने द्रव्यसे जप संख्याका दशांश यथोक्त कुण्डमें समाहित होकर यथाविधि होम करै। अथवा प्रतिदिन जप करके उसका दशांश परिमाण होम करना चाहिये । अनन्तर जल में होम दशांश के परिमाण से देवता की पूजा करके तर्पणादि करै । कुलसंभव में कहा है—स्नानपूर्वक पवित्र हो, सफेद वस्त्र पहर एकाग्र चित्त से दिवाभाग में सर्व कामार्थ सिद्धि के लिये विहित विधान से जप करै । ताराप्रदीप में भी कहा है—विद्वान साधक विहित विधान से परम मनोहर

कलसमारोप्य क्वाथतोयैः प्रपूरयेत् ॥ निक्षिप्य नवरत्नानि तत्र गन्धाष्टकं पुनः । आवाह्य पूजयेत्तत्र देवीमावरणैः सह ॥ कलसाग्रे जपेत् मन्त्रं संख्यया पूरणावधि । ततः पूर्णे समागत्य गुरुदेवो विधानतः ॥ अभिषिञ्चेत् शिष्यमूर्ध्नि कलसोदरवारिभिः । ततः शिष्यः प्रयत्नेन धनाद्यैस्तोषयेद्गुरुम् ॥

तथैवं विधिना लक्षं प्रजप्य तद्दशांशहोमं तद्दशांशतर्पणं तद्दशांशाभिषेकं तद्दशांशब्राह्मणभोजनं कारयेत् । तदशक्तौ होमादिसंख्याद्विगुणजपो विप्रेण कार्य्यः । क्षत्रियेण त्रिगुणजपः वैश्येन चतुर्गुणजपः । शूद्रेण पञ्चगुणजपः कार्य्यः ।

तदुक्तं कुलप्रकाशे ।

यद्यदङ्गं विहीयेत् ततसंख्याद्विगुणं जपम् । कुर्वीत त्रिचतुःपञ्चसंख्यया साधकोत्तमः ॥

मण्डलकी विवेचनाकर उसमें कलश स्थापन पूर्वक क्वाथ सलिल से उसको पूर्ण करै । अनन्तर नवरत्न डालकर पुनर्वार गधाष्टक प्रदान पूर्वक देवीका आवरण के सहित आवाहन और पूजा करै । जबतक जप पूर्ण न हो तब तक कलश के आगे संख्यानुसार मंत्रका जप करना चाहिये। अनन्तर जप पूर्ण होनेपर गुरुदेव विधानानुसार कलसोदर जल से शिष्यके मस्तक में अभिषेक करै । तब शिष्य यत्न सहित धनादि प्रदान करके गुरुदेवको संतुष्ट करै ॥

इस प्रकार विधानानुसार लक्ष जप, जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक, और अभिषेक का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये ॥ इस में असमर्थ होने से होमादि संख्या को दूना जप करै । क्षत्रियों के पक्ष में- तिगुना जप उचित है वैश्य का चौगुना और शूद्रको पचगुना जप करना चाहिये। कुल प्रकाश में कहा है, यथा—जिस जिस अग की हानि हो, उस संख्याका दून. जप करै । अथवा तीन चार और पांचगुण भी जप

अन्यत्रापि ।

होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः । इतरेषाञ्च वर्णानां त्रिगुणादिः समीरितः ॥ गुरुं सन्तोषयेदेवं मन्त्राः सिध्यन्ति मन्त्रिणः ।

मुण्डमालायाञ्च ।

होमाद्यशक्तो देवेशि ! कुर्य्यात्तु द्विगुणं जपम् । यदि पूजाद्यशक्तः स्यात् द्रव्याभावेन सुन्दरि ! ॥ केवलं जपमात्रेण पुरश्चर्य्या विधीयते ॥

अथात्र ब्राह्मणभोजनमवश्यमेव ।

तदुक्तं कुलप्रकाशे—

एकमङ्गं विहीयेत मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् । अन्नैश्चतुर्विधैः देवि ! पदार्थैः षड्रसैरपि ॥ सुभोजितेषु विप्रेषु सर्वं हि सफलं भवेत् । सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य पञ्चाङ्गोपासनैव हि ॥ सर्वे मन्त्राश्च सिध्यन्ति तत् प्रसादात् कुलेश्वरी ! ।

करना चाहिये । अन्यत्रभी कहा है कि ब्राह्मण होम करने में असमर्थ होने से दूना जप करैं । अन्यान्यवर्ग गणोंके पक्ष में त्रिगुणादि जप विहित है । इसी प्रकार गुरुको सन्तुष्ट करै । तो समस्त मंत्र सिद्ध होते हैं । मुण्डमाला में कहा है, हे देवेशि ! होमादि में असमर्थ होने से दूना जप करै । हे सुन्दरी ! द्रव्याभावके कारण पूजादि में असमर्थ होने से केवल जप मात्रानुसार पुरश्चर्य विधान करै । इस स्थल में अवश्यही ब्राह्मण भोजन करावै ।

कुलप्रकाश में कहा है यथा—हे देवि ! चार प्रकार के अन्न और छै प्रकारके रस पदार्थ का ब्राह्मणगणों को भलीभांति भोजन कराने से समस्त सफल होता है । एकमात्र मंत्रके भलीभांति सिद्धहोनेपर पंचाङ्ग उपासनाही विधि विहित है । उसके प्रसादसे अन्यान्य समस्त मंत्र सिद्ध होतेहैं ।

अन्यत्रापि ।

सर्वदा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये । विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेत् सदा ॥

तन्त्रान्तरेऽपि ।

कृत्वा मन्त्रजपं मन्त्री पुरस्काराय संयतः । दशांशं जुहुयादग्नौ यथोक्तविधिना तु यः ॥ यद्वा जपचतुर्थांशं स्वाहान्तं मूलमुच्चरन् ततो होमदशांशंतु स्वाहान्तं तर्पयेज्जलैः॥ तर्पणस्य दशांशेन नमोऽन्तं मूलमुच्चरन् । अभिषिञ्चेत् स्वमूर्द्धानं जलैः कुम्भाख्यमुद्रया ॥

फेत्कारिण्यां ।

स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण कुर्य्याद्धोमं वलिं तथा । मन्त्रान्ते नाम संयोज्य तर्पयामीति तर्पणम् ॥

इति पाशावकल्पः । अथ एकवीराकल्पे विशेषो यथा

तदुक्तं कुलचूड़ामणौ ।

पुरश्चरणकालेऽपि परयोषां प्रपूज्य च । दीक्षितां वस्त्रपु-

अन्यत्रभी कहा है कृतसाङ्गत्व सिद्धिके लिये सर्वदा ब्राह्मणों को भोजन करावे । केवल ब्राह्मण गणों की आराधना करनेसेही अंगहीन भी पूर्णाङ्ग होता है । तंत्रांतर में भी कहा है कि, मंत्र साधक मंत्र जप पुरश्चरणके लिये संयत हो अग्नि में यथोक्त विधानानुसार द्वादशांश होम करे । अथवा जपका चतुर्थांश स्वाहान्त मूलमंत्र उच्चारण करके जल द्वारा होमका दशांश स्वाहान्त तर्पण करे । तर्पण के द्वादशांश नमोन्त मूलोच्चारण सहित कुलमुद्रा प्रदर्शन पूर्वक जल द्वारा अपनी मूर्द्धाका अभिषिक्त करे । फेत्कारिणी में कहा है, स्वाहान्त मंत्रसेही होम और वलिविधान करे । अनन्तर मंत्रके अंत में नाम मिलाकर "तर्पण करता हूं" यह कहकर तर्पण करना चाहिये । इसका नाम पाशव कल्प है । एक वीरा कल्प में भी इसी प्रकार कहा है । विशेष यथा—कुलचूडामणि में कहा है कि, पुरश्चरणके समयभी दीक्षिता पर-

ष्पाद्यैर्भोज्यैः पायससम्भवैः ॥ आरम्भकाले नियतं स्वयं पक्वान्नभोजनम्। नानाविधं पिष्टकञ्च नानारससमन्वितम्॥ दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम्। उपलाखण्डचूर्णं च नानाविधरसायनम् ॥ नारिकेलं कपित्थंच नागरङ्गं सुदर्शनम्। लिम्पाकं वीजपूरञ्च दाड़िमीफलमुत्तमम् ॥ नागरङ्गफलं चैव नानागन्ध विलेपनम्। चन्दनं मृगनाभिञ्च श्रीखण्डं नवपल्लवम्॥ टङ्कनं लोध्रकंचैव जलजंबनजं तथा।नानाशैलसमुद्भूतं नानालङ्कारभूषितम् ॥ शून्यगेहे समानीय अर्घोदक विभूपितम्। अमृतीकरणं कृत्वा शक्तीश्चाभिमुखं नयेत् ॥

शक्तिर्यथा—तदुक्तं तत्रैव।

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा। वेश्या नापितकन्या च रजकी योगिनी तथा ॥ विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गना ॥

अथ दीक्षिताष्टशक्तीः क्रमेण संस्थाप्य पूर्वावद्घटार्घ्य-

स्त्री की पूजा करके वस्त्र और पुष्पादि सहित पायस संभव विविध भोज्य वस्तु प्रदान करे। आरंभ काल में स्वयं नियत पक्वान्न भोजन, नाना प्रकार पिष्टक विविधरस, दूध, दधि, घृत, तक्र (मठा) नवनीति (माखन) शर्करा, उपलाखण्डचूर्ण, अनेक भांति रसायन, नारिकेल, (नारियल) कपित्थ, (कैथ) नागरंग (नारंगी) विविधगंध विलेपन, चंदन, मृगनाभि (कस्तूरी) श्रीखंड, नवपल्लव टङ्कन, जलज कमल, वनज (कमल एवं विविध शैलज लोध्र, व अनेक भांतिके अलंकार औ अर्घोदक (अर्घ्य का जल) शून्यगृह में लाय अमृतीकरण पूर्वक समस्त शक्तिके सन्मुख करै। समस्त शक्ति यथा—उस में ही जैसा कहा है कुल भूषणा, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, वेश्या, नापित कन्या, रजकी; और योगिनी, यह आठ शक्ति हैं इन सबकाही भली भांति वैदग्ध्ययुक्त और कुलांगना होना आवश्यक है। अनन्तर दीक्षिता अष्ट शक्तिको यथाक्रम स्थापन करके पूर्वकी समान घट और अर्घ्य पात्रादि भी प्र-

पात्रादिकं स्थापयित्वा अर्घ्योदकेन तामभ्युक्ष्य अमृतमन्त्रेण धेनु मुद्रया अमृतीकृत्य अष्टशक्तिरूपभेदं ज्ञात्वा ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां संज्ञादिनामकरणं क्रमेण कृत्वा आसनादिकं गन्धपुष्पं दद्यात् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

अष्टकन्यारूपभेदं विलोक्यामर्षचेष्टितम् । ब्राह्मण्याद्यष्ट शक्तीनां नामभिःकृतसंज्ञकाः ॥ आसनंच ततो दत्वा स्वागतं च पुनः पुनः । अर्घ्यं पाद्यंच पानीयं मधुपर्कं जलं तथा ॥ स्नापयेद्गन्धपुष्पाद्यैः केशसंस्कारमाचरेत् । धूपयित्वा ततः केशान् कौशेयंच निवेदयेत् ततः स्नानान्तरे पीठमास्तीर्य्य पादुकाद्वयम् । दत्वा तत्र समासीनां नानालङ्कारभूषणैः ॥ भूषयित्वाऽनुलेपंच गन्धं माल्यं निवेदयेत् ॥

ततस्तां तां शक्तिं पूजाप्रकरणोक्तक्रमेण ध्यात्वा तासां

तिष्ठापन पूर्वक अर्घ्य के जलसे अभ्युक्षण और अमृत मंत्र सहित धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण के पीछे अष्टशक्ति के रूप से अवगत होकर ब्राह्मण्यादि अष्ट शक्ति की संज्ञा और यथाक्रमसे नाम करण समाहित करके आसनादि गंध पुष्प दान करना चाहिये उस में ही कहा है; यथा अष्टकन्याका रूप भेद और अमर्ष चेष्टित विलोकन पूर्वक ब्राह्मणादि अष्टशक्तिके नाम द्वारा संज्ञा साधन वारंवार स्वागतवाद सहित आसन सह अर्घ्य, पाद्य, पानीय मधुपर्क और जल दान करे। अनन्तर गंध पुष्पादि द्वारा स्नान कराकर केश संस्करण समाहित और फिर केशपाश धूपित करके कौशेय निवेदन करना चाहिये । तदनन्तर स्थानान्तर में पीठ आस्तीर्ण और दो पादुका दान करके उक्त पीठ में विराजमान हो अनेक अलंकार और भूषण द्वारा उस को भूषित कर माल्य, गंध और अनुलेपन निवेदन करे । अनन्तर पूजा प्रकरणोक्त क्रमानुसार उन शक्तियों का ध्यान और उनके मस्तक में

मूर्ध्नि ब्रह्माण्यादिमातृः समावाह्य जीवन्यासादिकं गन्धपुष्पधूपदीपान् नानाद्रव्यानुरंजनादिकं दत्वा तासां सव्यकर्णे क्रमेण स्तोत्रं पठेत् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नि तासां समानयेत् । भोज्यं मण्डपमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने ॥ चर्व्यं चोष्यं लेह्यं पेयं भक्ष्यं भोज्यं निवेदयेत् ॥ अदीक्षिता यास्तास्तत्र ततो मायां निवेदयेत् । तासां सर्वेषु कर्णेषु ततस्तोत्रं समाचरेत् ॥ मातर्देवि ! नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे ! । कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ महेशि ! वरदे ! देवि ! परानन्दस्वरूपिणि ! । कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ कौमारि ! सर्वविघ्नेशे ! कुमारक्रीडने ! परे ! कृपयेत्यादि । विष्णुरूपधरे ! देवि ! विनतासुतवाहिनि ! ॥ कृपयेत्यादि । वाराहि ! वरदे ! देवि ! दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ! । कृपयेत्यादि ।

शक्ररूपधरे ! देवि ! शक्रादिसुरपूजिते ! ॥ कृपयेत्यादि । चामुण्डे ! मुण्डमालासृक्चर्चिते ! विघ्ननाशिनि ! कृपयेत्यादि । महालक्ष्मिर्महामाये ! क्षोभसन्तापनाशिनि ! ॥ कृपयेत्यादि । पितृमातृमये देवि ! पितृमातृवहिष्कृते ॥

एके ! वहुविधे ! देवि ! दिव्यरूपे ! नमोऽस्तुते ॥ एतत् स्तोत्रं पठेद्र यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः । वहुविघ्नान् समालोक्य तस्य विघ्नो न जायते ॥ कुलीनस्य द्वारदेवाः कथितास्तव पुत्रक ! । दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नार्चयेद्यदि ॥ तस्य-पूजाफलं वत्स ! नीयते यक्षराक्षसैः । आचम्य मुखवासादिताम्बूलञ्च निवेदयेत् ॥ ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धचन्दनपाङ्कितम् । विसृज्य प्रदक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी

हे शत्रुरूपधरे ! हे देवि ! हे शक्रादिसुर पूजिते ! कृपा इत्यादि । हे चामुण्डे ! हे मुण्डमाला से विगलित शोणित चर्चिते ! हे विघ्ननाशिनी ! कृपा इत्यादि । हे महालक्ष्मी ! हे महामाये ! हे क्षोभ सन्ताप विनाशिनी ! कृपा इत्यादि । हे पितिमातृमये ! हे देवि ! हे पितिमातृवहिष्कृते ! हे एके ! हे वहुविधे ! हे देवि ! हे दिव्यरूप धारिणी ! तुमको नमस्कार है । जो व्यक्ति संयत होकर कर्मारंभ के समय इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसको कभी किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता ॥

हे वत्स ! तुम्हारे निकट समस्त कुलीन द्वार देवताका वर्णन किया । [illegible]दा काल में और नित्य पूजा के समय यदि उनकी पूजा न करीजाय, हे वत्स ! उसकी समस्त पूजा यक्ष और राक्षसगणों से नीयमान अर्थात् [illegible]हण कराजाता है । यदि वह भोजनके समय व्रीडा परायण [लज्जायुक्त] [illegible] तो उस गृह के बाहर रहकर जबतक स्तोत्र पाठ करें, तबतक उनकी [illegible] होती है । आचमन करके मुख वासादि ताम्बूल निवेदन करे । अनं[illegible]र्वार गंध चंदन पङ्कित माल्यदान और प्रदक्षिणा करके वर प्रार्थना [illegible]विदा देकर सुखी होवे । और यदि गमन न करें, तो अपनी कन्या

भवेत् ॥ अन्या यदि न गच्छन्ति निजकन्या निजानुजा। अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका॥ वयसा जातितो वापि हीना वा परमा कला। पूज्या कुलवरैः सर्वैर्निजाहङ्कारवर्जितैः ॥ सर्वाभावे एकतरा पूजनीया प्रयत्नतः। संस्कृतासंस्कृता वापि सपतिर्निष्पतिश्च या ॥ पूर्वाभावे परा पूज्या मदंशयोपितो यतः। एकश्चेत् कुलशास्त्रज्ञः पूजार्हस्तत्र भैरव !॥ सर्वे सुरादयः पूज्याः सत्यं ब्रह्मशिवादय। एका चेत् युवती तत्र पूजिता चावलोकिता ॥ सर्वा एव परादेव्यः पूजिताः कुलभैरव ! । आदावन्ते च मध्ये च लक्षपूर्त्तौ विशेषतः ॥ न पूजयति चेत् कान्तां तदा विघ्नैर्विलुप्यते। पूर्वार्जितफलं नास्ति का कथा परजन्मनि ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदीच्छेदात्मनो हितम्। ममापि क्रोधसन्तापशमनं विघ्ननाशम् ॥ यत्नतः पूजनीयाः स्युः कुलाकुलजनाः सुत !।

अपनी अनुजा (अपनी वहन) और अग्रजा (बडी वहन) मातुलानी [माई] माता वा अपनी सपत्नी और वयस वा जाति में हीन होने से भी अन्यान्य परमाकन्या, इनकी कुलवर व्यक्ति अहंकार छोडकर पूजा करे। सबके अभाव में एककीही यत्नपूर्वक पूजा करें। इस विषयमें संस्कृता वा असस्कृता सधवा वा विधवाका विचार न करें। पूर्वा के अभाव में परा की पूजा करें। क्योंकि स्त्रीमात्रही मेरा अंशहै। हेभैरव। कुलशास्त्रज्ञ यदि एकहो, तो पूजाके योग्य पात्र है, इस में संदेह नहीं, यह सत्य है ब्रह्मा शिवादि और देवतादि सब की पूजा करें। किन्तु एकमात्र युवती भी उपस्थितक्षेत्रमें पूजिता और अवलोकिता होने से समस्त परमा देवीकी पूजा करीजातीहै। आदि, अन्त, मध्य, और विशेषतः लक्ष पूरण समय में यदि कान्ताकी पूजा न करी जाय, तो विघ्न समूह के आक्रमण में विलुप्त होना पडता है और पूर्वार्जित फल भी विनष्ट होता है पूर्व जन्म की बात और क्या कहूं अत एव यदि अपने हितकी कामना हो, और मेरे क्रोध सन्तापकी शान्ति और विघ्ननाश की अभिलाषा हो तो सर्व प्रयत्न सहित कुलाकुल समस्त जन

अथैतेन क्रमेण लक्षजपादौ मध्ये अन्ते च शक्तीः पूजयेत्। ततो रात्रौ प्रथमप्रहरगते पञ्चमेनैव देवीं संपूज्य गुरुं शिरसि हृदि देवींच ध्यात्वा शिवोऽहमिति भावयन् जपं कुर्य्यात् तृतीयप्रहरं यावत् ।

तदुक्तं मुण्डमालायाम् ।

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि । निशायाञ्च प्रजसव्यं रात्रिशेषे जपेन्न हि ॥

स्वतन्त्रेऽपि ।

रात्रौ मांसासवैर्देवीं पूजयित्वा विधानतः । ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो रमन् क्लेदयुतोऽपि वा ॥ जपेल्लक्षं ततो देवि ! होमयेत् ज्वलितानले । योनिकुण्डेस्थिते सर्पिर्मांसमत्स्ययुतं भृशम् ॥ दशांशं तर्पयेन्मद्यैर्मांसमिश्रैः सुसाधकः । तर्पणस्य दशांशन्तु अभिषिच्य जगन्मयीम् ॥ दशांशं भोजयेत् साधु साधकं कालिकाप्रियम् । मद्यं मांसञ्च मत्स्यंच चर्वणंच प्रदा-

---

की पूजा करे । तदनन्तर उल्लिखित क्रमानुसार लक्ष जप के आदि मध्य और अन्त में समस्त शक्ति की पूजा करनी चाहिये । अनन्तर रात्रि का प्रथम प्रहर बीतनेपर पंचमकार द्वारा देवी की पूजा करके रहस्यमाला की सहायता से मस्तक में गुरू और हृदय में देवी का ध्यान करताहुआ आत्मा को शिवस्वरूप जानकर जप करे । तीसरे पहर पर्यन्त इसी प्रकार जप करना चाहिये । मुण्डमाला में कहा है—रात्रि का प्रथम याम बीतने पर तृतीय याम पर्यंत जप करे । रात्रि के शेष में जप न करे । स्वतंत्र में भी कहाहै रात्रि में देवी की मांस और आसव द्वारा यथाविधानसे पूजा करके फिर स्वयं नग्न और नग्न स्त्री के संग संगत हो क्लिन्न देह (खेदयुक्त देह) से लक्ष जप और योनि कुण्डस्थित प्रज्वलित अग्नि में घृत मांस और मत्स्य युक्त होम करे । फिर होमका दशांश मद्य और मांस की सहायता से तर्पण करना चाहिये । तर्पण के दशांश में जगन्मयी का अभिषेक करके कालिका के प्रिय पात्र साधक को उसका दशांश भोजन करावै । एवं मद्य, मांस, मत्स्य

पयेत् ॥ ततस्तु तोपयेद्भक्तया गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये । एतत् कल्पद्वयाद्देवि ! मन्त्रैः सिध्यति निश्चितम् ॥ विना पीत्वा सुरां भुक्त्वा मांसं गत्वा रजस्वलाम् । यो जपेद्दक्षिणां देवीं तस्य दुःखं पदे पदे ॥

कालीतन्त्रेऽपि ।

तर्पणस्य विधिं वक्ष्ये येन कार्य्याणि साधयेत् । तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा ॥ मज्जाभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन कचेन च । आकर्षितायाः कन्यायाः कुलप्रक्षालनेन च ॥ मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि । मूषमार्जाररक्तेन तर्पयेत् परदेवताम् ॥ एवं तर्पणमात्रेण साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत् । कविता जायते तस्य द्राक्षारसपरम्परा ॥ बृहस्पतिसमो भूत्वा दिविवद्भुवि मोदते । न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥

और तर्पण प्रदान करके स्वर्णादि प्रदान पूर्वक भक्ति सहित गुरुके सन्तोष साधन में प्रवृत्त होना चाहिये । हे देवि ! इस प्रकार दोनों कल्पका अनुष्ठान करने से निसंदेह मत्रसिद्धि होती है सुरापान, मांस भोजन, और रजस्वला स्त्री से विना गमन किये दक्षिण कालिका का जप करने से पद पद में दुःख ग्रस्त होता है । काली तत्र में भी कहा है, जिसके द्वारा कार्य मात्रकी सिद्धि होती है, वही तर्पण विधि कहता हू । रक्तधारा मिश्रित जल, स्वकीय कच (अपने वाल) और मज्जा, आकर्षित कन्याकाकुल प्रक्षालन, भेड़ और भैंसे का रक्त, नर शोणित, मूषिक और माज्जार की असृक (चरवी) इन सब के द्वारा परदेवता कालिकाका तर्पणकरै । तर्पण करतेही साक्षात् सिद्धीश्वर होजाता है । मुखसे द्राक्षा रस परम्परा की समान कविता लहरी निकलती है, बृहस्पति की समान होकर स्वर्गकी समान पृथिवी में भी परमसुख पूर्वक विहार किया जाताहै, पाप पुण्य कुछ नहीं रहता और निसंदेह जीवन्मुक्ति लाभ होती है ।

उत्तरतन्त्रेऽपि ।

योनिरूपं हि कुण्डं वै कृत्वा वितस्तिमात्रतः । हस्तविस्तारितस्तावत् कृत्वा चापि तथाप्यधः ॥ तत्र कार्य्या हि मन्त्रेण अग्निस्थापनिका क्रिया । महाकालाय देवाय दद्याच्च प्रथमाहुतिम् ॥ एवमाद्येन मांसेन भक्तेन रुचिरेण च । कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ॥ आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात् सुधीः ॥

कुलसम्भवेऽपि ।

रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुनेनापि तत्त्वतः । प्रकर्त्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ॥ द्विजानां चैव सर्वेषां दिवा विधिरिहोच्यते ॥ शूद्राणाञ्च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम् । यद्यत् कामयते कामं तत्तदाप्नोति नित्यशः ॥

कालिकाश्रुतौ च ।

अथ हैनां कालिकामनुजापी यः सदा । श्रद्धाज्ञानवैराग्ययुक्तः शाम्भवदीक्षासु रतः ।

उत्तर तंत्र में भी कहा है अधोदिक में एक हाथ विस्तारित वितस्ति प्रमाण योनिरूप कुण्ड निर्माण करके उस में मंत्रानुसार अग्निस्थापन क्रिया करै और भगवान् महाकालको प्रथम आहुति प्रदान करै । इस प्रकार उत्कृष्ट मांस, रुचिरभक्त, कृष्ण पुष्प, विशेषतः घृत सहित रक्त, और आमिषादि से श्मशान में होम करै । कुलोद्भव में भी कहा है, रात्रिकाल के समय नग्नवेश और खुले केश मिथुन धर्मका अनुसरण पूर्वक यथा तत्व प्रयत्न सहित सर्व कामार्थ सिद्धिके लिये कर्त्तव्यानुष्ठान में प्रवृत्त होना चाहिये । समस्त द्विजाति और शूद्रगणों की दिवाविधि इस स्थल में वर्णित होती है । तो रात्रि में ही अभीष्ट महा फल होता है, जो जो कामना करीजाती है, नित्य वह सब लाभ होती है । कालिका श्रुतिमें भी कहा है । जो व्यक्ति सर्वदा श्रद्धात्मा, ज्ञान और वैराग्यानुयुक्त और शाम्भव, दीक्षा, परायण

शाक्तेषु वा दिवा ब्रह्मचारी रात्रौ नग्नो मैथुनासक्तमानसः ॥

जपपूजादिनियमो योषित्सु प्रियकरः सुभगोदकेन तर्पणम्। तेनैव पूजनं सर्वदा कालीरूपमात्मानं विभावयेत् । स शाक्तो भवति । सर्वहत्यां तरते । अथ पञ्चमसर्वयोषिदाकारेण सर्वमाप्नोति विद्यां पशुं धनं धान्यं सर्वशक्तिञ्च कवित्वञ्च नान्यः परमः पन्था विद्यतेऽतो मोक्षाय ज्ञानाय धर्माय तत्सर्वं भूतं भव्यं यत्किंचिद्दृश्यादृश्यमानं स्थावरजङ्गमं तत्सर्वम् । कालिकातन्त्रे तु, तत् प्रोक्तं वैदिकश्रुति मनुजापी सपाप्मानं तरति। सतु अगम्यागमनं तरति । स भ्रूणहत्यां सर्वपापं तरति । सर्वसुखमाप्नोति सर्वं जानाति सर्वन्यासी तरति भवति स विविक्तो भवति सर्ववेदाध्यायी भवति स सर्वजापी भवति स सर्वशास्त्रार्थवेत्ता भवति सर्वयज्ञाधिकारी

होकर देवी कालिका का जप करता है, एवं दिनमें ब्रह्मचारी, और रात्रि में मैथुनासक्त चित्त और नग्न होकर जप पूजादि नियमानुष्ठान में प्रवृत्त होता है और स्त्री गणों का प्रियकर होकर सुभग जल से तर्पण पूजन और सर्वदा आत्मा को कालीरूप में चिन्तन करता है, वह सर्व योषिदासक्त और समस्त हत्या से उत्तीर्ण होता है । पञ्च मकार द्वारा विद्या, पशु, धन, धान्य, सबका वशीकरण, तथा कवित्व इत्यादि समस्त विषय प्राप्त होता है । इस की अपेक्षा अन्य श्रेष्ठ पंथ नहीं है । इसके द्वारा मोक्षलाभ, ज्ञानलाभ और धर्मलाभ, होता है । भूत, भविष्यत, दृश्य, अदृश्य, स्थावर, जंगम जो कुछ है, यह समस्तही इसका स्वरूप है। कालिका तंत्र में भी कहा है, यथा—जो व्यक्ति मंत्र जप करता है, वह श्रुत और स्मृत सब से अवगत होता है, समस्त पापों से उत्तीर्ण होता है, अगम्यागमन अतिक्रम करता है, भ्रूणहत्या (गर्भ गिराना) का पातक दूर होता है। इस प्रकार वह संपूर्ण पापों से छूट जाता है और सपूर्ण सुख लाभ करता है, सर्वज्ञ होता है, सर्व संन्यासी और समस्त शास्त्र के अर्थ से अवगत होता है, इसके अ

भवति । अरयो मित्रभूता भवन्ति । इत्याह भगवान् शिवः । निर्विकल्पेन मनसा यः सर्व्वं करोति अथैवं पुरश्चरणशीलः प्रयोगार्हो भवति । अथादौ शक्तिशुद्धिर्विलिख्यते । अदीक्षिताङ्गनासङ्गात् निन्दाश्रुतेः ।

तदुक्तं भावचूडामणौ—

अदीक्षिताङ्गनासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते । तत्कथाश्रवणे श्रद्धा तत्तल्पागमनं यदि । स कुलीनः कथं देवीं पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥

श्रीक्रमेऽपि ।

संशोधनमनाचर्य्य स्त्रीषु मर्त्त्यापु साधकः । कृतेऽपि सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति चण्डिका ॥

तस्मात् शक्तिशुद्धिः कार्य्या । तदुक्तं कौलतन्त्रे ।

अभिषेकाद् भावशुद्धिर्मन्त्रस्योच्चारणात् शुचिः । रति

तिरिक्त सर्व वेदाध्यायी, सर्वजापी, सर्वयज्ञों का अधिकारी, सब पापों से मुक्त, और हम दोनों का मित्र होता है । भगवान शिवने इस प्रकार कहा है कि जो व्यक्ति निर्विकल्प चित्त से समस्त करसक्ता है और पुरश्चरण करता है, वही प्रयोग योग्य होता है ।

अब प्रथम शक्तिशुद्धि लिखीजाती है । क्योंकि अदीक्षिता अगना (स्त्री) के संसर्ग से मनुष्य को निन्दनीय होना पडता है, इस प्रकार श्रुति प्रसिद्ध है । भावचूडामणि में कहा है । यथा—अदीक्षिता स्त्री का संसर्ग करनेसे सिद्धिकी हानि होती है । ऐसी स्त्री की बात सुनने में श्रद्धा और उसकी शय्या में गमन करने से वह व्यक्ति किसप्रकार परमेश्वरीकी पूजा करसक्ता है ? श्रीक्रम में भी कहा है—साधक स्त्री पुरुषका संशोधन न करके प्रवृत्त होनेसे सिद्धिका व्याघात (विघ्न) होताहै और देवी चण्डिका भी क्रोधित होती है । इसीलिये शक्ति शुद्धि करनी चाहिये । कौलतन्त्र में कहा है, यथा—अभिषेक में प्रवृत्त होने से भाव शुद्धि होती है, मन्त्र के उच्चारण में

काले महेशानि ! दीक्षादानेन कन्यका ॥ सुरया रेतसा वापि जलेन मनुनाथवा ॥ सम्भोगेऽभिषिंचेन्नारीं रण्डां वा मन्त्रवर्जिताम् । आदौवालां समुच्चार्य त्रिपुरांच समुच्चरेत् ॥ नमःशब्दं समुच्चार्य इमां कान्तां ततो वदेत् । पवित्री कुरुशब्दान्ते मम शक्तिं कुरु प्रिये ! वह्निजायां समुच्चार्य्य शुद्धिमन्त्रं सुरेश्वरि ! अनेन मनुना देवि ! अभिशिक्ताः स्त्रियः सदा । रममाणो भ्रमेन्नित्यं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ इह लोके परं भोगं भुक्त्वा सिद्धि मवाप्नुयात् ॥

अन्यत्रापि ।

आनीय कन्यकां दिव्यां घृणालज्जा विवर्जिताम् । स्वकांन्ता परकान्तां वा दीक्षितां यौवनान्विताम् ॥ पूजकः पूजयेन्नित्यं वामपार्श्वे निवेश्य च । स्वीयकल्पोक्त विधिना न्यासजालं प्रविन्यसेत् ॥ ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ।

भी इसी प्रकार होती है । संभोग काल में सुरा, शुक्र, जल अथवा मंत्र द्वारा रंडा वा मंत्र वर्जिता स्त्रीको अभिषिक्त करे । प्रथम वाला पद प्रयोग करके फिर 'त्रिपुरायै' इस प्रकार शब्द उच्चारण पूर्वक नमः शब्द योजनान्तर 'इमां कान्तां' इसप्रकार कहै । फिर पवित्री कुरु शब्द प्रयोग करके 'ममशक्तिं कुरु' इस प्रकार पद योजना करने के पीछे स्वाहा शब्द उच्चारण करे । यही शुद्धि मंत्र है । हे देवि ! इस मंत्र द्वारा समस्त स्त्रियोंको अभिषिक्त करके सर्वदा विहार प्रसंग में भ्रमण करने से सर्व सिद्धि लाभ और ऐहिक समस्तभोग संग्रह करके परलोक में भी परमसिद्धि संकलन कर सक्ता है । अन्यत्र भी कहा है, कान्ता हो अथवा परकान्ता हो, जिसको घृणा नहीं, लज्जा नहीं और जिसकी दीक्षा हुई है, इसप्रकार नवयौवन शालिनी दिव्य स्वरूपिणी कन्या का लायकर वाम पार्श्व में स्थापन पूर्वक पूजक नित्य पूजा करे । और स्वकीय कल्पोक्त विधान से न्यास जाल प्रविन्यास में प्रवृत्त होवे । अनन्तर उस स्त्री के सहित संगत होकर त्रिभुवने

शक्तौ विशेषो यथा कुमारी तन्त्रे ।

नटी कपालिनी वेश्या रजकी नापिताङ्गना । ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका ॥ मालाकारस्य कन्यापि नवकन्याः प्रकीर्त्तिताः । एतासु कांचिदानीय ततस्तद्योनि मण्डले ॥ पूजयित्वा महादेवीं ततो मैथुनमारभेत् । धर्माधर्म हविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ॥ सुषुम्नावर्त्मना नित्य मक्षवृत्तो जुहोम्यहम् । स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्त्तितः ॥ ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् । प्रकाशाकाश हस्ताभ्या मवलम्ब्य महीस्रुचम् ॥ धर्माधर्म कलास्नेह पूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् । स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्त्तितः ॥

अथास्य प्रयोग.—निशायां शक्तिं पूर्वोक्तां स्ववामभागे समानीय तस्यागात्रे स्वकल्पोक्तन्यासान् विधाय, अदीक्षिता

श्वरी देवी का जप करे । तिनमें शक्ति का विशेष है । यथा—कुमारी तंत्र में कहा है, नटी, कपालिनी, वेश्या, धोबन, नाई की कन्या, ब्राह्मणी, शूद्र कन्या, गोपाल कन्या, माली की कन्या, यह नव कन्या कही गई हैं । इनमें किसी कन्याको लाकर उसके कुलागारमें महादेवीकी पूजा करके फिर मिथुन धर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये । धर्म और अधर्मरूप हवि द्वारा प्रज्वलित आत्मा रूप अग्नि में मनरूपी श्रुच द्वारा सुषुम्नावर्त्म योग में मैं होम करता हूं । यही कार्यारंभ का महामंत्र है । अनन्तर स्त्री से संगत होकर, त्रिभुवनेश्वरी देवी का जप करे प्रकाश और अप्रकाशरूप दोनों हाथकी सहायतासे उन्मनीरूप श्रुवपात्र अवलम्बन करके धर्म और अधर्म कलारूप स्नेहपूर्ण अग्नि में होम करता हूं । यही शुक्र त्यागका महामंत्र है ।

अब इसका प्रयोग कहाजाता है । रात्रि कालके समय पूर्वोक्त शक्तिको अपने वामभाग में आनयन और तिसके गात्र में स्वकल्पोक्त न्यास विधान

चेत्तदा पूर्वोक्ताभिषेकमन्त्रेण तीर्थादिना अभिषेकं कृत्वा तस्याः कर्णे अभेदबुद्ध्या मन्त्रमुच्चारयेदिति शक्तिशुद्धिः। ततो मकार पंचमेन देवीं संपूज्य मूलान्ते धर्माधर्मेत्यादि पठन् मातृपीठे पितृमुखं दत्वा जपं कुर्य्यात्। ततो मूलान्ते प्रकाशाकाशेत्यादि पठन् तत्वमुत्सृजेत्। अथवा मातृपीठे पितृमुखं दत्वा जपं कुर्य्यात् सावरणां देवीं ध्यात्वा शिवोऽहमिति भावयन् उभयोः सङ्गमं कृत्वा पूर्ववज्जपादिकं कुर्यादित्यपर प्रकारः।

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित श्यामारहस्ये पञ्चम परिच्छेदः।

और अदीक्षिता होने से पूर्वोक्त अभिषेक मंत्र से तीर्थादि द्वारा अभिषेक सम्पादन पूर्वक उसके कान में अभेद बुद्धि से मंत्र उच्चारण करै। इसकाही नाम शक्तिशुद्धि है। अनन्तर पंच मकार द्वारा देवी की पूजा करके मूलांत में धर्म और अधर्मरूपी हवि द्वारा, इत्यादि पाठ और मातृपीठ में पितृमुख दान पूर्वक जप करना चाहिये। अनन्तर मूलांत में प्रकाश और अप्रकाश रूप दोनों हाथों के द्वारा, इत्यादि पाठ करके तत्व उत्सर्जन अथवा मातृपीठमें पितृमुख दान पूर्वक जप करै। फिर आवरण सहित देवी का ध्यान और अपनेप को शिव विचार, दोनों का संगम साधन कर पूर्व की समान जपादि करना चाहिये।

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित श्यामारहस्य मुरादाबाद निवासी कात्यायनगोत्रोद्भव मिश्र सुखानन्द सूनु पंडित कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकासहितपञ्चमपरिच्छेद ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः परिच्छेदः ।

अथ मन्त्रभेदाः निरूप्यन्ते । तदुक्तं सिद्धेश्वरतन्त्रे। अथ वक्ष्यामि ते देवीं कालिकां भवदुःखहाम् । यां ज्ञात्वा साधको भोगान् भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ मूकोऽपि कवितामेति धनेन च धनाधिपः । वलेन पवनः साक्षात् रूपेण च मनोहराः ॥ मन्त्रोद्धारं शृणुष्वेमं गुह्याद् गुह्यतरं प्रिये ! । खान्तादिवह्निमारूढं वामनेत्रेण संयुतम् ॥ चन्द्रार्द्धविन्दुना मूर्ध्नि भूपितं परमेश्वरि ! । खान्तादि वामनेत्रस्थं वह्निचन्द्रसमन्वितम् ॥ वीजरत्नमिदं प्रोक्तं साक्षात् कल्पद्रुमं प्रिये ! । मादनं चन्द्रवीजस्थं भूतस्वरसमन्वितम् ॥ चन्द्रार्द्धविन्दुभूपाढ्यं सम्पूर्णं सिद्धिदं मनुम् । अस्यैवाशेषमाहात्म्यं वक्तुं नाहं महेश्वरि ! ॥ तथापि कथ्यते देवि ! संक्षेपादस्य यत्फलम् । मोक्षार्थी लभते मोक्षं कैवल्यं परमं पदम् ॥ देवीरूपं जगत् पश्येत् द्वैधं तत्र विवर्जयेत् ॥

अब देवी कालिका के समस्त मंत्र पृथक् पृथक् कहते हैं। सिद्धेश्वर तंत्रमें कहा है, यथा—अब तुम से देवी कालिका का वृत्तांत कहते हैं। वह संसारका दुख दूर करती हैं, उन के जान ने से साधक समस्त भोगों को भोग मुक्तिलाभ करता है, मूक (गूंगा) भी कवि होता है, और धन में कुवेर, वलमें पवन, और रूप में साक्षात् सब से मनोहर होता है । हे प्रिये ! जो गुह्य से भी गुह्यतर है; वही मंत्रोद्धार कहता हूं, श्रवण करो । वर्गादि अर्थात् क, वह्नि अर्थात् र, वामनेत्र अर्थात् दीर्घ ईकार, और चन्द्रार्द्ध विंदु अर्थात् ँ चंद्रविन्दु । इनके मिलने से (क+र+ई+ँ=क्रीं) यह पद बना । यही कालिका देवी का मंत्र है। इस मंत्रका माहात्म्य वर्णन करने में मेरी सामर्थ नहीं है, किन्तु तो भी संक्षेपसे इसके फलका वर्णन करता हूं। मोक्षार्थी, मोक्ष कैवल्य और परम पदको प्राप्त होता है । इस जगत्को देवी

अथ मन्त्रान्तरं तत्रैव तदुक्तम् ।

मन्त्रान्तरं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति ! सादरम् । यस्याराधनमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ अप्रकाश्यं परं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् । न कुत्रापि समाख्यातं तव स्नेहादिहोच्यते ॥ पूर्वोक्तमन्त्रराजस्य शेषवर्णद्वयं प्रिये ! । संहारसृष्टिमार्गेण बन्धुभ्योऽपि न दर्शयेत् ॥ मन्त्रस्य स्मरणादेव सकृदप्यस्य सुन्दरि ! । कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ न कुत्रापि समाख्यातं तव स्नेहादिहोच्यते । पूर्वोक्तमन्त्रराजस्य शेषवर्णद्वयं प्रिये ! ॥ संहारसृष्टिमात्रेण मूकः काव्यं करोति च । तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो मूकसंकुलाः ॥ द्वन्द्वभावं परित्यज्य किमन्यद्बहुजल्पितैः । यद्यत् प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः ॥ ऋषिः स्याद्भैरवो देवोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितम् । देवता कालिका प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्र-

---

रूपमें दर्शन करे । इस में किसी प्रकार द्वेष न करे । अनन्तर इस सिद्धेश्वर तंत्रमें ही मन्त्रांतर कहा है, यथा—हे पार्वती ! मन्त्रांतर वर्णन करता हूं, आदर पूर्वक श्रवण करो । इसकी आराधना मात्रसेही सब प्रकार की सिद्धि अधिकार में होती है । यह परम गुह्य है, जिस किसीको इसका प्रदान वा प्रकाश नहीं करना चाहिये । मैंने कहीं भी इसका वर्णन नहीं किया है। केवल तुम्हारे स्नेहवशतः कहता हूं । हे प्रिये ! पूर्वोक्त मंत्रराजके शेष दो वर्ण संहार सृष्टि मार्ग के क्रमसे बन्धुगणों को भी न दिखावे । हे सुन्दरी ! इस मंत्र के सकृत स्मरणमात्रसेही तत्काल कोटि जन्मार्जित (करोड़ जन्मके संचित) पातक नष्ट होते हैं यह मंत्र मूक व्यक्तिको भी कवि करता है, उसके केवल देखते ही वादीगण भी मूक और नितांत आकुल भावयुक्त होते हैं और तत्काल द्वन्द्वभाव परित्याग करते हैं अधिक और क्या कहूं 'जो जो मन में इच्छा करीजाय, वहनित्य प्राप्त होतीहै । इस मन्त्रके ऋषिभैरव,छंद अनुष्टुप,देवता कालिका, वर्ग वर्गफल प्रदान करते हैं । हे पार्वती ! आदर पूर्वक

दा ॥ ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति ! सादरम् ॥ नीलेन्दीवरसन्निभां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीम् । भास्वन्मौलि किरीटभोगिलसनां वीणां भुजैर्बिभ्रतीम् ॥ खड्गं मुण्डवराभयां स्मितमुखीं मोहान्धकारापहाम् । ध्यायेत् सम्यगनाकुलेन मनसा प्रेतासनां कालिकाम् एवं ध्यानपरो देवि ! सर्वान् कामानवाप्नुयात् । उक्तपीठे महेशानि ! ततः पूजां समाचरेत् ॥ रात्रौ द्वितीययामे च अशक्तौ दिवसेऽपि च । हेमादिपात्रमादायकुर्य्यान्मन्त्रं विचक्षणः ॥ अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं चतुर्द्वारसुशोभितम् । तन्मध्ये त्रिस्त्रिकोणं स्यात्तन्मध्ये विलिखेन्मनुम् ॥

अथ दक्षिणावत् प्रातःकृत्यादि व्यापकन्यासं समाचरेत् । तत्र विशेषो यथा तत्रैवोक्तम् ।

आचान्तो मूलमन्त्रेण शिखां बद्ध्वा तु मन्त्रतः । स्वा-

श्रवण करो इसका ध्यान कहता हूं । उसकी आभा नील कमलकी समान, तीन नयन, मोटे और ऊंचे पयोधर, भुज परम्परा में वीणा, खड्ग मुण्ड, वर और अभय शोभायमान, मुखमण्डल सस्मित, उसके देखने वा विचारने से मोहान्धकार दूर होजाता है । प्रेत उसका आसन है । भलीभांति अनाकुल चित्तसे उस कालिका का ध्यान करने से संपूर्ण कामना पूर्ण होतीहै । हे महेश्वरि ! दूसरे याम में पूजा करनी चाहिये । असमर्थ होने से दिन में ही करै । विलक्षण व्यक्ति होमादिके पात्र ग्रहण करके मंत्र करणमें प्रवृत्त होवे । चतुर्द्वार सुशोभित अष्टपद्म लिखै । तिन में एक त्रिकोण अंकित करके मंत्र विन्यास करै । अनन्तर दक्षिणावत् प्रातः कृत्यादि व्यापक न्यास करै, तिनमें विशेष यही है । उस में ही कहा है । यथा—मूलमंत्र से आचमन और शिखाबंधन पूर्वक स्वाहांत मूल उच्चारण करके "सर्ववश्य करी" इस प्रकार पद प्रयोग करै । हे देवि ! उल्लिखित मंत्रसे शिखाबाधिनी चाहिये । फिर मूलमंत्र उ-

वा कृत्वा जपेत् । गतिस्तस्यास्तीति नान्यस्य इह गतिः । ओं सत्यं तत् सत् ।

अथ हैनं गुरुं परितोष्य गोभूहिरण्यादिभिर्गृह्णीयात् मन्त्रराजन् । गुरुः शिष्याय सत्कुलीनाय विद्याभक्ताय शुश्रूषवे मन्त्रं दत्त्वा स्वयं परिपूज्य निशायां विहरेत् । एकाकी शिवगेहे लक्षं तदर्द्धं वा जप्त्वा मन्त्रं दद्यात् । ओं तत् सत् सत्यं नान्यप्रकारेण सिद्धिर्भवतीह कालिकामनोर्वा भावनेति त्रिपूर्वा मनोर्वा सर्वस्य दुर्गामनोर्वा स्वयं शिवोपरि । ओं तत् सत् इति सर्वाविद्यामिति पूर्वोक्तद्वाविंशत्यक्षरर्याः प्रथम वीजं वा वीजद्वयं वा वीजत्रयं वा केवलनाम वा वीजत्रयपुटितं नाम वा जपेदित्यर्थः ।

कालीहृदयविद्याश्च सिद्धविद्यां महोदयाम् । पुरा येन यथा जप्त्वा सिद्धिमापुर्दिवौकसः ॥ कामाक्षरं वह्निसंस्थ मि-

---

यथा—अनन्तर एक, दो, तीन, अथवा तीन नाम पुटित करके प्रथम समस्त विद्या का जप करै । इस लोक में केवल उसीकी सद्गति होती है, अन्यकी नहीं । अनन्तर गुरुको गौ, भूमि और सुवर्ण इत्यादि से सन्तुष्ट करके मंत्रराज ग्रहण करै । गुरू भी सत्कुलीन, विद्याभक्त, शुश्रूषा परायण शिष्यको उसका दान और स्त्रीको स्पर्श करके स्वयं भलीभांति उसकी पूजाकर रात्रि काल में विहार करैं । एकाकी शिव-गृह में लक्ष वा इसका आधा जपकर शिष्यको प्रदान करना चाहिये । इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से कालीमंत्र की सिद्धि नहीं होती । त्रिपुरामंत्र और दुर्गामंत्र की भी उक्त विधान से सिद्धि होती है । यहां समस्त विद्या शब्द में यही समझना चाहिये कि पूर्वोक्त द्वाविंशत्यक्षरा विद्या का प्रथम वीज, वा दो वीज वा तीनवीज अथवा केवल नाम किम्वा तीन वीज पुटित नाम जप करै । कालीहृदय विद्याही सिद्ध विद्या है । उसके प्रभाव से चतुर्वर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म, काम मोक्ष की प्राप्ति होती है । देवतागणोंने पहिले इस विद्या का जप करकेही सिद्धि लाभ करी है । कामाक्षर वह्निसंस्थ एवं रमा और नाद बिन्दु युक्त

न्दिरानादविन्दुभिः । मन्त्रराजमिदं ख्यातं दुर्लभं पापचेतसाम् ॥ सुलभं पुण्यचित्तानां साधकानां महात्मनाम् । त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्रे प्रबोधिका ॥ अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः । अनया सदृशी पूजा न हि सारस्वतप्रदा ॥ आकर्षण वशीकारमारणोच्चाटनं तथा । शांतिपुष्ट्यादिकर्माणि साधयेदनयाचिरात् ॥ किं वक्तव्यमजेनापि वर्णितुं नैव शक्यते । जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ॥ अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः । अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥ ध्यानपूजादिकं सर्वं स साधनपुरश्क्रियाम् । अनिरुद्धसरस्वत्याः समानां समुदीरयेत् ॥

अथ कुलचूड़ामणौ ।

ब्रह्मा सरस्वती गुप्तो देवतासुखसंयुता । वीजव्यक्तिसमाकीर्णः कालीमन्त्र उदाहृतः ॥ एकं वा द्विगुणं वापि । त्रि-

---

होनेसेही इस विद्या का उद्धार होता है । इसका नाम मंत्रराज है । यह पाप चेतागणों को दुर्लभ है, पुण्य चित्त महात्मागण सहजोंही लाभ करते हैं । विशेषतः यह विद्या त्रिगुण शालिनी और सर्व शास्त्रकी प्रबोध जननी है । इसकी समान विद्या वा इसकी सदृश जप अथवा इसकी समान सारस्वत प्रदा पूजा नहीं है । इस विद्या के प्रभाव से आकर्षण, वशीकरण, मारण, उच्चाटन, शान्ति और पुष्टादि समस्त कार्यों का शीघ्र साधन होसक्ता है । अधिक और क्या कहूं ? स्वयं ब्रह्मा भी जिह्वा कोटिसहस्र (करोड़ हज़ार जीभ) वा सौ करोड वक्र द्वारा भी इसका वर्णन नहीं करसके, इस की समान जिस प्रकार विद्या और जप नहीं है, इसी प्रकार इसकी समान ज्ञान भी नहीं है । और होगा भी नहीं । साधन पुरश्चरण एवं ध्यान और पुजादि समस्त अनुरुद्ध सरस्वती की समान है ॥

कुलचूडामणि में कहा है—क्रीं यह कालीमंत्र एक वा द्विगुण वा त्रिगुण

गुणं वापि भैरव ! । जप्त्वा कर्षयति स्वैरं स्थावरं जङ्गमादिकम् ॥ एषा गुह्या महाकाली गुह्याद् गुह्यतरा स्मृता ।

सिद्धेश्वरतन्त्रे च ।

शृणु देव ! प्रवक्ष्यामि एकाक्षरमनुं प्रिये ! । यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तश्च साधकः ॥ गुह्याद् गुह्यतरं मन्त्रं न देयं प्राणसंशये । खान्तं हि वह्निमारूढं सव्येतरदृगन्वितम् । चन्द्रविन्दुसमायुक्तं परं गुह्यं महेश्वरि ! ॥

अथ विशेषो यथा ।

तदुक्तं कुलचूडामणौ—

पूर्वं वीजं ततः शक्तिं वीजेन मूर्त्तिकल्पना । षड् दीर्घभाजा वीजेन कुर्य्यादङ्गानि नामतः ॥

अथास्या ध्यानं यथा ।

तदुक्तं तत्रैव ।

ध्यायेत् कालीं करालास्यां दंष्ट्राभीमविलोचनाम् । स्फु-

जप करने से इच्छानुसार स्थावर और जंगमादिको आकर्षण करसक्ता है। यह गुह्य महाकाली गुह्य से भी गुह्यतर है । सिद्धेश्वरतंत्र में भी कहा है । हे प्रिय ! एकाक्षर महामंत्र कहता हूं, श्रवण करो । जिसके विज्ञानमात्रसे साधक जीवन्मुक्त होता है । यह मंत्र गुह्यसे भी गुह्यतर है । प्राण संशय उपस्थित होने पर भी यह किसीको न दे हे महेश्वरी ! खान्त अर्थात् क, वह्नि संस्थ अर्थात् रकार युक्त, सव्येतर दृगन्वित अर्थात् दीर्घ ईकार युक्त और चन्द्र विन्दु संयुक्त होने से (क्रीं) यह पद बनता है, यही परम गुह्य एकाक्षर मंत्र है ॥

इस विषय में विशेष यथा—कुलचूडामणि में कहा है प्रथम वीज और फिर शक्ति स्थापन पूर्वक वीज द्वारा मूर्त्ति कल्पना कर छै (६) दीर्घस्वर युक्त वीज द्वारा नामानुसार अंग विधान करै ।

इसका ध्यान यथा—उस में ही कहा है, काली का ध्यान करै । वह कराल वदना, दंष्ट्राभीषणा, और विलोचना हैं । उनकी कांची शोभाय-

रच्छवकरश्रेणीकृतकाञ्चीं दिगम्बरीम् ॥ वीरासनसमासीनां महाकालोपरि स्थिताम्। श्रुतिमूलसमाकीर्णसृक्कणीं चण्डनादिनीम्॥ मुण्डमालागलद्रक्तचर्चितां पीवरस्तनीम्। मदिरास्वादनास्फालकम्पिताखिलमेदिनीम् ॥ वामहस्ते खड्गमुण्ड धारिणीं दक्षिणे करे। वराभययुतां घोरवदनां लोलजिह्विकाम् ॥ शकुन्तपक्षसंयुक्तबालकर्ण विभूषणाम्। शिवाभिर्घोररावाभिः सेवितां प्रणयोदिताम् ॥ चण्डहासचण्डनाददण्डास्फालैश्च भैरवैः। गृहीत्वा नरकङ्कालं जयशब्दपरायणैः ॥ सेवितां किल सिद्धौघै र्मुनिभिः सेवितां तथा। एवं तां कालिकां ध्यात्वा पूजयेत् कुलनायकः ॥ सर्व सिद्धिप्रदा देवी हेलयापि च चिन्तिता। ततः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते ॥

मान शवकर (मृतकहस्त) द्वारा बनीहुई है। वह दिगम्बरी (नग्न) वीरासन में विराजमान और महाकालके ऊपर अवस्थिति करती हैं। उनके होठ कर्ण मूलपर्यंत विस्तीर्ण हैं। उनका नाम मचण्ड है। मुण्डमाला द्वारा बिगलित रुधिर धारा से उनका कलेवर चर्चित होता है। उनके दोनों स्तन पीवर (मोटे) भावयुक्त हैं। वह मदिरा पान करके तज्जनित आस्फालन से संपूर्ण पृथ्वी को कम्पायमान करती हैं। उनकेवामहस्तमें खड्ग और मुंड, दक्षिण हस्त में वर और अभय है। वह घोर वदना और लोल रसना हैं घोररावा अर्थात् घोर शब्द करनेवाली समस्त शिवागण उनकी सेवा करती हैं। वह सबके प्रति प्रणय परायण हैं। समस्त भैरव प्रचंड हास्य, प्रचंड शब्द और प्रचंड आस्फालन सहित नर कङ्काल (मनुका खांखड) ग्रहण करके और समस्त सिद्ध संघ और मुनिगण जयजय शब्द से उनकी सेवा में प्रवृत्त होते हैं। कुलनायक इस प्रकार कालिका का ध्यान करके पूजा करै। उपेक्षा से ध्यान करने पर भी वह सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करती हैं। इसीलिये उनके नाम ने त्रिभुवन में दक्षिणा कहकर प्रसिद्धि लाभ करी है।

स्वतन्त्रेऽपि ।

ध्यानं शृणु वरारोहे ! साधकानां सुदुर्लभम् । शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम् ॥ हास्ययुक्तां त्रिनेत्राञ्च कपालकर्त्रिकाकराम् । मुक्तकेशीं लोलजिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः ॥ चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत् ॥ इति ॥

अथास्याः पूजनम्—सिद्धेश्वरतन्त्रमतेन दक्षिणावत् किन्तु अव्यवहितविद्यावदिति । तदुक्तम् ।

ऋषिन्यासं पूजनञ्च देव्यास्तु पूर्ववद्भवेदिति । पुरश्चरणेऽपि लक्षसंख्यजपः कार्य्यः ।

तदुक्तं तत्रैव ।

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः । तद्दशांशं विधानेन ततो होमादिकल्पनम् ॥ पूर्वोक्तमन्त्रराजस्य जपमेवं वरानने ! । अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि कालिकामन्त्रमुत्त-

---

स्वतंत्र में भी कहा है, हे वरारोहे ! साधकगणों को जो ध्यान दुर्लभ है, वह श्रवण करो । वह शवासना, महाभीषणा, घोर दशना, वरमदा, हास्य शोभना, त्रिलोचना, कपाल और कर्तृकाधरा (कपाल और कैंची) मुक्तकेश, लोल रसना, चतुर्भुजा, वराभयकरा, और बारबार रुधिर पानकरती हैं। इसप्रकार उनका ध्यान करै ॥

अब उनकी पूजा लिखीजाती है । सिद्धेश्वरतंत्र के मत से दक्षिणावद् किन्तु अव्य वहित विद्यावत् है । यह कहा है । यथा—देवी का ऋषि न्यास और पूजा पूर्वकी समान करनी चाहिये। पुरश्चरण से भी लक्षसख्या में जप करना चाहिये । उसमेंही कहा है । यथा—इसप्रकार से ध्यान करके विधानानुसार एकलक्ष जप और इसके दशांश होमादि कल्पमें प्रवृत्त होवे । हे वरानने ! पूर्वोक्त मंत्रराज का इसीप्रकार जप करै । अब देवी कालिका का अन्यतर श्रेष्ठ मंत्र कहता हू, जिसके विज्ञानमात्र सेही साधक

मम् ॥ येन विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तश्च साधकः । स्कन्धारूढ़महाकाली शिवादीश्वरसंयुता ॥ चन्द्रार्द्धविन्दुनाक्रान्ता तत्परोज्वलनाक्षरम् । नानाविन्दुकलासार्द्धं महामन्त्रोदितः प्रिये ! ॥ इन्द्रारूढ़दिवानाथो भगतूर्य्यः स्वरान्वितः । कलाबिंदुसमायुक्तः कथितः कामतः प्रिये ! ॥ गोप्तव्योऽयं महामन्त्रो न देयो यस्य कस्यचित् । गुरुभक्ताय शान्ताय दद्याद्दान्ताय चैव हि ॥ ध्यानं पूजादिकं देवि ! सर्वं पूर्ववदाचरेत् । एकलक्षेण सिद्धिः स्यात् पुरश्चरणकर्मणि ॥ इति ॥

अथ प्रकारान्तरं तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि मन्त्रं कल्पद्रुमं परम् । येन जप्तेन विधिवत् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥ अस्य स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः । यस्य स्मरणमात्रेण वाचश्चित्रायते नृणाम् ॥ यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् । ये जपन्ति परां देवीं नियमेन च संस्थिताः ॥ देवास्तांस्तु नम-

---

जीवन्मुक्त होजाता है । "ह्रीं" यह महामंत्र गुप्त रक्खे । जिस किसी को इसका प्रदान न करे । जो व्यक्ति गुरुभक्त शान्त और दान्त (जितेन्द्रिय) है, उसकोही इसका प्रदान करना चाहिये । हे देवि ! इसका ध्यान और पूजादि समस्त पूर्ववत् विधानानुसार करे । पुरश्चरण कार्य में एकलक्ष जप से सिद्धि होती है ॥

अब प्रकारान्तर वर्णित होता है । कालीतंत्र में कहा है । यथा—इसके उपरान्त साक्षात् कल्पवृक्ष की समान सर्वोत्कृष्ट (सब से श्रेष्ठ) मंत्रकहता हूं । इसका विधिवत् जप करने से आठ प्रकार की सिद्धि हस्तगत होती है इसके स्मरण मात्रसेही समस्त महाआपद दूर होती हैं । और मनुष्यको विचित्र वाक्य उत्पन्न होते हैं । इसके विज्ञानमात्र सेही चार प्रकारकी मुक्ति और अमरत्व लाभ होता है । जो नियम के अनुसारी होकर परादेवीका

स्यन्ति किं पुनर्मानवादयः । बृहस्पतिसमो वाग्मी धनैर्धनपतिर्भवेत् ॥ कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां स यमोपमः । तस्य पादाम्बुजद्वन्द्वं राज्ञां किरीटभूषणम् ॥ तस्य भूतिं विलोक्यैव कुबेरोऽपि तिरस्कृतः । य एनां चिन्तयेद्देवीं नियतः पितृकानने ॥ तस्य चाज्ञाकराः सर्वे सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥ तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोपमः । संप्रदाये च वक्ता स य एनां वेत्ति तत्त्वतः ॥ अस्य विज्ञानमात्रेण कुलकोटीः समुद्धरेत् । नन्दन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा ॥ अपि नः स कुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति । स धन्यः स च विज्ञानी स कवि स च पण्डितः ॥ स कुलीन स च कृती स वशी स च साधकः । स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः ॥ स तीर्थसेवी पीठानां स निवासी स सर्वदः । स सोमपायी स व्रती स यज्वा स परन्तपः ॥

जप करता है, उसको संपूर्ण देवतागण नमस्कार करते हैं । मनुष्यादि की बात और क्या कहूं ? वह व्यक्ति बृहस्पति की समान वाग्मी, धन में धन पति, स्त्रीगणोंको कामदेवकी समान और शत्रुगणों को यमकी समान होता है, उनके दोनों चरणारविन्दों में राजा लोगों के किरीट का भूषण होताहै। उसका विभव देखकर कुबेर तिरस्कृत होते हैं, जो व्यक्ति पितृ कानन में नियम परायण होकर इस देवीकी चिंता करता है, अष्टसिद्धि उसकी आज्ञा कारी होती हैं । उस की ही जननी धन्य और उसी के पिता देवता की समान है, इस के विज्ञान मात्र से ही करोड कुल का उद्धार होता है । उस के पितृगण आनंदित होते हैं और आह्लाद में भर कर इस प्रकार गाथा गाते हैं कि, हमारे कुल में क्या कोई कुल ज्ञानी होगा ॥ १० ॥ जो व्यक्ति इस के प्रकृत स्वरूपसे अवगत हैं, वही धन्य, वही विज्ञानी, वहीकवि वही पण्डित, वही कुलीन, वही कृती, वही साधक, वही ब्राह्मण, वही वेदज्ञ वही अग्निहोत्री, वही दीक्षित, वही तीर्थ सेवी, वही सब पीठस्थल का अधिनिवासी, वही सर्वद, सोम पायी, व्रती, यागशील, परन्तप, और संन्यासी,

स संन्यासी स योगी च स मुक्तो ब्रह्मविच्च सः । स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः ॥ स च विज्ञानवेत्ता च य एनां वेत्ति तत्त्वतः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ एनां ध्यात्वा जपेन्मन्त्री सुखमोक्षमवाप्नुयात् ॥ विद्यारत्नं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णावतंसवत् । मायाद्वन्द्वं कूर्चयुग्मं मैत्रान्तं मादनत्रयम् ॥ मायाविन्द्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् । संहारक्रमयोगेन वीजसप्तकमुद्धरेत् ॥ एकविंशत्यक्षराढ्यस्ताराद्यः कालिकामनुः । पूर्वोक्तमन्त्रराजस्य कुर्य्यात् पूजां विचक्षणः ॥

भैरवतन्त्रेऽपि ।

मायाद्वयं कूर्चयुग्मं मैत्रान्तं मादनत्रयम् । मायावह्नीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ॥ संहारक्रमयोगेन वीजसप्तकमुद्धरेत् । एकविंशत्यक्षराढ्यस्ताराद्यो विश्वपूजितः ॥ आकाशं वामकर्णेन युतं विन्दुविभूषितम् । चतुर्थवीजमाख्यातं त्रैलोक्यवशकारणम् ॥ स्वाहान्तश्च त्रयोविंशत्यक्षरो मन्त्रराजकः । विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहा प्रणवविवर्जिता । ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ॥

वही योगी, वही मुक्त, वही ब्रह्मज्ञ, वही वैष्णव, वही शैव, वही सौर, वही गाणपत्य, और वही विज्ञान वेत्ता हैं । इस लिये सब प्रयत्न सहित सर्वदा सर्व अवस्था में इस का ध्यान करके जपकरै । तो सुखी और मोक्ष भागी होता है ।

अब उल्लिखित विद्या रत्न कहता हूं । यह कर्ण का साक्षात् अवतंश है, श्रवण करो। ओं ह्रीं, ह्रीं, हुं, हुं, क्रीं, क्रीं, क्रीं, ह्रं, हुं, ह्रीं, ह्रीं, यह एक विंशत्यक्षर मंत्र विश्व पूजित है, इस के उपरांत स्वाहा प्रयोग करने से त्रयो विंशत्यक्षर होता है । एवं स्वाहा और प्रणव निकालने से विंशत्यक्षरा महा विद्यारूप में परिणत होता है । इसकी ध्यान पूजादि समस्त दक्षिणावत् की समान उपाचरण करै ॥

सिद्धसारस्वततन्त्रेऽपि ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कालिकामन्त्रमुत्तमम् । मायाद्वयं कूर्चयुग्मं मैत्रान्तं मादनत्रयम् ॥ मायाविद्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् । संहारक्रमयोगेन वीजसप्तमुद्धरेत् ॥ द्वाविंशत्यक्षरी विद्या वह्निजायान्विता शुभा ॥ कालिकाया महाविद्या सिद्धिदा भुवनत्रये ॥ मायावीजैः षडङ्गानि महादेव्याः प्रकल्पयेत् ॥ भैरवो हि ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुप् काली च देवता ॥

अथ अन्यप्रकारम् । तदुक्तंकालीतन्त्रे ।

अथ वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धिविद्यां महोदयाम् । ईश्वरेण पुरा प्रोक्तां देवी हृदय संस्थिताम् ॥ अस्या ज्ञान प्रभावेण कलयामि जगत्त्रयम् । प्रणवं पूर्व मुच्चार्य्य हृल्लेखावीज मुद्धरेत् ॥ रतिवीजं समुद्धृत्य प्रपंचमभगान्वितम् । ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्त्तिता ॥ अनया सदृशी विद्या

सिद्धेश्वर तंत्र में भी कहा है । हे देवि ! श्रवण करो, उत्कृष्ट कालिका मंत्र कहता हूं । ॐ ह्रीं, ह्रीं, हुं, हु क्रीं, क्रीं, क्रीं, दक्षिणे कालिके क्रीं, क्रीं क्रीं, हुं, हु, ह्रीं, ह्रीं, स्वाहा । यह द्वाविंशत्यक्षरा विद्या साक्षात कालिका है । इसका नाम महा विद्या है । यह तीनों भुवनमें ही सिद्धि प्रदान करती है । माया वीज द्वारा देवी की षडङ्ग कल्पना करै । इस के ऋषि भैरव, छंद अनुष्टुप और देवता कालिका है ॥

काली तंत्र में अन्य प्रकार कहा है । यथा । जिस के द्वारा निर्वाण मुक्ति लाभ होती है, वही सिद्ध विद्या महाविद्या कीर्तन करताहूं । देवीकी हृदय स्थिता यह विद्या महा देव ने स्वयं पहिले कही है । मैं इस केही ज्ञान केप्रभाव से त्रिभुवनकी सृष्टि स्थिति और संहार करताहू । प्रथम प्रणव उच्चारण करके फिर हृल्लेखा वीज अर्थात् " ह्रीं " यह पद प्रयोग करै । फिर रति वीज अर्थात् ' क्रीं ' विन्यस्त करके भगान्वित अर्थात एकार संयुक्त प पञ्चम अर्थात् म मिलाकर स्वाहा के सहित अन्वित (युक्त) करै । इस का साकल्य में प्रयोग यही है । ओं ह्रीं क्रीं मे स्वाहा । इसका नाम विद्या

कालीतन्त्रे सुगोपिता । वीजंच वीजमस्याश्च हृल्लेखा शक्तिरुच्यते ॥ षड्दीर्घमायावीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् । अष्टाङ्कं ततोन्यस्य ध्यात्वा देवीं शिवो भवेत् ॥ खड्गोच्छिन्नेन्दुविम्बस्रवदमृतरसप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा सव्ये पाणौ कपालाद्गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती । दिग्वस्त्रा वद्धकांची मणिमयमुकुटाद्यैः संयुता दीप्तजिह्वा पायानीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढ़पादा ॥ जपेद्विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेण संयुतम् । होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित् ॥ त्रिकोणं कुण्डमासाद्य सिद्धविद्यः शिवो भवेत् । पूजनंच प्रयोगंच दक्षिणावदुपाचरेत् ॥ एकाक्षर्य्या महाकल्प समानं सर्वमेव वा । रक्तपद्मस्य होमेन साक्षाद्वै श्रवणो भवेत् ॥ विल्वपत्रस्य होमेन राज्यं भवति निश्चितम् । रक्तप्रसून होमेन वशये

राज्ञी है । कालीतन्त्र में इसकी समान विद्या परमगुप्त रूपसे रक्षित हुई है । बीज इसका बीज और हृल्लेखा इसकी शक्ति है । षड दीर्घ मायावीज द्वारा प्रणव युक्त करके कल्पना करै । अनन्तर अष्टाङ्गन्यास करके देवीका ध्यान करने से साक्षात् शिव होता है । इसकी पूजादि समस्त दक्षिण कालिकाकी पूजा के समान करनी चाहिये । इसका ध्यान यथा—खड्ग खंडित इन्दुखण्ड से जो अमृतरस विगलित होता है तिसके द्वारा उसका सर्वाङ्ग प्लावित है । उनके तीन नयन हैं । सव्य हस्त में नरकपाल है । उस कपाल से जो रुधिर गिरता है वह मुक्तकेशहुई उसको पान करती हैं, वह दिग्वस्त्रा हैं, उसकी कमर तगडी के द्वारा अलंकृत है, उसके मुकुटादि मणिमय है, उस की जिह्वा अतीव उज्जव भाव युक्त है । उसकी आभा नीलकमलकी समान है, उसके दोनों चरण प्रत्यालीढ हैं । इस मंत्रसे एकविंशति सहस्र अर्थात् इक्कीस हजार जप करै । इसका दशांश मृदु पुष्प द्वारा होम करै । त्रिकोण कुण्ड बनाकर इसप्रकार होम करने से विद्या सिद्ध और शिवस्वरूप लाभ होता है । लालकमल से होम करने पर साधक साक्षात् वैश्रवण (कुवेर) होजाता है । वेलपत्र के द्वारा होम करने से निसंदेह राज्य लाभ होता है,

दखिलं जगत् ॥ पीतपुष्पस्य होमेन स्तम्भयेत् विश्वमप्यथ। मालतीपुष्प होमेन साक्षाद्वाक्पति सन्निभः ॥ कृष्णपुष्पस्य होमेन शत्रून् मारयतेऽचिरात् । अत्र सर्वस्य होमेन संख्या स्यादयुतं किल ॥ अस्याः स्मरणमात्रेण महापातक कोटयः। सद्यः प्रलयमायान्ति साधकः खेचरो भवेत् ॥

अथ कालिकामन्त्रान्तरं तदुक्तं स्वतन्त्रे ।

श्मशानकालिकामन्त्रं शृणुष्वावहिता शिवे ! । वाग्बीं मायां ततो लक्ष्मीं कामबीजं ततःपरम् ॥ कालिका संपुटत्वेन चतुष्कं बीजमालिखेत् । एकादशार्णा देवेशि ! चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥ ऋषिर्भृगुर्वृहच्छन्दो देवता कालिकापरा । श्मशानाद्या च यां माये बीजशक्ती महेश्वरि ! ॥ कीलकं कामबीजंतु शृणु पूजाविधिं प्रिये ! चतुर्द्वित्रिश्चतुर्वर्णैर्विद्यामन्त्रं षडङ्गकम्॥

लाल पुष्प के द्वारा होम करनेसे समस्त जगत् वशीभूत होता है । पीलेपुष्प द्वारा होम करने से विश्व ससार स्तम्भित होता है । मालती पुष्प के द्वारा होम करने से साक्षात् वाक्पति की समानता लाभ होती है ! काले पुष्प के द्वारा होम करने से शत्रुकुलको तत्काल निर्मूल करसक्ता है । इस स्थल में सबकी होम संख्या अयुत (दश हजार) है । इसके स्मरणमात्र सेही करोड करोड महापातक तत्काल नष्ट होते है और साधक खेचरत्व लाभ करता है ॥

स्वतंत्र कालिका का महामंत्र कहागया है, यथा—हे शिवे ! श्मशानकालिका का मंत्र मन लगाकर श्रवणकरो ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं यह एकादशाक्षर मंत्र, श्मशान कालिका का मंत्र है । इसके द्वारा चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्षकी प्राप्ति होती है । इसके ऋषि भृगु, छन्द, बृहत्, देवता परात्पर रूपिणी कालिका, वाग्बीज और मायाशक्ति और कीलक कामबीज है ।

हे प्रिय ! इस की पूजा विधि का वर्णन करताहू, सुनो । चार, दो तीन

विन्यस्य ध्यानं कुर्वीत कालिकायाः समाहितः । अञ्जनाद्रि निभां देवीं श्मशानालयवासिनीम् ॥ त्रिनेत्रां मुक्तकेशींच शुष्कमांसातिभीषणाम् । पिङ्गाक्षीं वामहस्तेन मद्यपूर्णकपालकम् ॥ सद्यः कृत्तशिरो दक्षहस्तेन दधतीं शिवाम् । स्मितवक्त्रां सदा चाममांसचर्वणतत्पराम् ॥ नानालङ्कारभूषाङ्गीं नृत्योन्मत्तां सदासवैः । एवं ध्यात्वा जपेद्देवीं श्मशाने तु विशेषतः ॥ गृहे वापि गृहस्थश्च मत्स्यैर्मांसैः सुशोभनैः । नग्नो भूत्वा महापूजां कुर्य्याद्रात्रौ विशेषतः ॥ पद्मं चाष्टदलं वृत्तं तद्बाह्ये धरणीतलम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं मध्ये मूलं समालिखेत् ॥ दलेष्वष्टासु विलिखेत् कवर्गाद्यष्टवर्गकम् । धरण्यां विलिखेदाद्यं चतुष्कञ्च चतुष्ककम् ॥ पूर्वादि चोत्तरान्ताशां मध्ये देवीं प्रपूजयेत् । ब्राह्मयाद्याः पूजयेन्मातृद-

---

अथवा चारों वर्ण के द्वारा षडङ्ग विद्या मंत्र विन्यस्त कर समाहित हो देवी कालिका का ध्यान करै वह अञ्जन पर्वत की समान, श्मशानालय वासिनी त्रिनेत्रा मुक्तकेशी, शुष्कमांसा अतिभयंकर और पिङ्गाक्षी हैं । उनके वाम हस्त में मद्य पूर्ण कपाल दक्षिण हाथ में सद्य छिन्न मस्तक, और उनका वदन मण्डलस्मित विकसित (प्रसन्नता से खिलाहुआ) है । वह सर्वदा आम मांस चर्वण करती हैं, वह अनेक गहनों से भूषिताङ्गी और राशिराशि आम मांस पान करके सदा नृत्य में उन्मत्त है । इस प्रकार ध्यान करके जप करना चाहिये । विशेषतः श्मशान आश्रय करके जप करै । अथवा गृहस्थ घर में भी शोभित मत्स्य और मांस प्रदान पूर्वक नग्न होकर महापूजा करै । रात्रि में इसप्रकार पूजा करनाही विशेष विधि है । अष्टदल पद्म और उसके बाहर चतुर्द्वार युक्त धरणी तल में मूल अंकित करै । अष्टदल में कवर्गादि अष्टवर्ग लिखकर धरणी में आद्य चतुष्क प्रत्येक में अंकित करै मध्य में पूर्वादि उत्तर दिक् में देवीकी पूजा करनी चाहिये । पूर्व की समान अष्ट मातृदल में ब्राह्मी इत्यादि की अर्चना करै । हे प्रिये !

लेष्वष्टासु पूर्ववत् । भैरवानसिताङ्गाद्यान् धरण्यां पूजयेत् प्रिये ! ॥

अथ पुरश्चरणनियमो यथा—।तदुक्तं स्वतन्त्रे ।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशेन होमयेत् । वर्णलक्षं मन्त्रवर्णसंख्याजपमित्यर्थः । रजस्वलां स्त्रियं गत्वा रेतोरुधिरसंयुताम् ॥ मद्यं चाष्टविधं मांसं मत्स्यं बहुविधं प्रिये ! । नैवेद्यं चात्मसात् कृत्वा कालीभक्तिपरायणः ॥ तदा भोगश्च मोक्षश्च लभते नात्र संशयः ॥

अथ मन्त्रान्तरम् ।

कामबीजं समालिख्य कालिकायै पदं लिखेत् । नमोऽन्तेन च देवेशि ! सप्तार्णो मनुरुत्तमः ॥ सर्वाङ्गकालिका देवी अन्यत्

फिर धरणीतल पर असिताङ्ग इत्यादि भैरव गणों के पूजन में प्रवृत्त होना चाहिये ॥

अब पुरश्चरण—नियम कहाजाता है । यथा—स्वतंत्र में कहा है, वर्ण लक्ष मंत्र जपकर उसके दशांश में होम करै । वर्णलक्ष शब्द में मंत्र वर्णकी संख्यानुसार जप है । रजस्वला स्त्री के सहित संगत और काली के प्रति-भक्ति परायण होकर शुक्र शोणित संयुक्त मद्य आठ प्रकारका मांस, अनेक प्रकार के मत्स्य और नैवेद्य आत्मसात् (भक्षण करने) से भुक्ति (भोग) मुक्ति (मोक्ष) लाभ होती है । इसमें संदेह नहीं ॥

अब मन्त्रान्तर् लिखाजाता है । प्रथम 'क्लीं' फिर 'कालिकायै' और तदुपरान्त 'नमः' शब्द प्रयोग करै । अर्थात् 'क्लीं कालिकायै नमः' साधक यह

सर्वन्तु पूर्ववत् । गुरोश्चापि कृपां लब्ध्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित
श्यामारहस्ये मंत्रभेदविवरणंनाम
षष्ठः परिच्छेदः ।

अथ सप्तमः परिच्छेदः ।

अथ विद्यामाहात्म्यं ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

गुणं समस्तविद्यानां वाग्भिः स्तोतुं न शक्यते । वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ सर्वसिद्धिप्रदा भूमिरनिरुद्धसरस्वती । तस्मात् तस्या ज्ञानमात्रात् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥ अनिरुद्धसरस्वत्या ज्ञानमात्रेण साधकः । पाण्डित्ये च

सप्ताक्षर मंत्र गुरुकी कृपा से लाभ करने पर सब प्रकारकी सिद्धि लाभ करने में समर्थ होजाता है ॥

इतिश्री महामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित
श्यामारहस्येभाषाटीकासहितमन्त्रभेदविवरणनाम
षष्ठपरिच्छेदसमाप्त ॥ ६ ॥



अब विद्या माहात्म्य कहाजाता है । काली तंत्र में कहा है । यथा—करोड़ हजारवक्र और करोड़—शत जिह्वा प्राप्त होने पर भी वाग्मी व्यक्ति समस्त विद्याओं कास्तव नहीं करसकता । अनुरुद्ध सरस्वती सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करती है । इस लिये उनके ज्ञान मात्रसे आठ प्रकारकी सिद्धि संग्रह होती है । अधिक क्या साधक अनिरुद्ध—सरस्वती के ज्ञान मात्र से ही पाण्डित्य और कवित्व शक्ति में स्वयं वाक् पति की समान होता है ।

कवित्वे च वागीशसमतां व्रजेत् ॥ तस्य पाण्डित्यवैदग्ध्यं विचित्रपदजल्पनात् । देवा अपि विलज्जन्ते किं पुनर्मानुषादयः ॥ अपि चेत् त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् । अनिरुद्धसरस्वत्याः समानो नास्ति वै भुवि ॥ अस्या जपो ब्रह्मजपो महाशोके महोत्सवे । महामोहे महासौख्ये महादारिद्र्यसङ्कटे ॥ योगसंसाधनं सम्यग् ध्यानमस्या न संशयः । महापदि महापापे महाग्रहनिवारणे ॥ महाभयमहोत्पाते महाशोके महोत्सवे । महामोहे महासौख्ये महादारिद्र्यसङ्कटे ॥ महारण्ये महाशून्ये महाज्ञाने महारणे । दुरापदि दुरावासे दुर्भिक्षे दुर्निमित्तके ॥ समस्तक्लेशसंघाते स्मरणादेव नाशयेत् । अस्या ज्ञानं ज्ञानमेव ध्यानमस्याश्च चिन्तनम् ॥ तस्मादस्याः समा विद्या नास्ति तन्त्रे न संशयः । श्मशानशयनो वीरः कुलस्त्रीभिर्विहारवान् ॥ कुलामृतनिषेवी

उसके पाण्डित्य वैदग्ध (पांडित्य की चतुरता) और विचित्र पद जल्पना से देवता गण और पंडित गण लज्जित होते हैं,' मनुष्यादि की तो बातही क्या है, कदाचित् तुम्हारी समान स्त्री और मेरी समान पुरुषहो किन्तु अनिरुद्ध—सरस्वती की समान कोई नहीं है । इस का जप साक्षात् ब्रह्म जपहै। ज्ञान, शोक, महोत्सव, महामोह महा सौख्य, महा दारिद्रसंकट सर्वत्रही यह जप ब्रह्म जप होता है । इस का ध्यान भी सब प्रकार समुदय योग स्वरूप है, इस में संदेह नहीं । महा आपद, महापाप, महाग्रहनिवारण, महा भय महोत्पात, महा शोक ? महोत्सव, महा मोह, महा सौख्य, महा दारिद्र संकट, महा वन, महा शून्य, महा ज्ञान, महारण, दुरावास, दुर्भिक्ष, दुर्निमित्त और समस्त क्लेश उपस्थित होनेपर इसका स्मरणकरै । इसकाही ज्ञान ज्ञान है, इसकाही ध्यान आत्मचिन्तन है । इसी कारण तंत्रमें इसकी समान विद्या नहीं है । जो व्यक्ति श्मशान में शयन करके वीराचार अवलम्बन और कुल स्त्रीगणों के समभिव्याहार में विहार और कुलामृत निषेवण पूर्वक का-

च कालीतत्त्वार्थचिन्तकः । ब्रह्मादिर्भुवने तस्य समो नास्ति कुतः परः ॥ स एव सुकृती लोके स एव कुलभूषणः । धन्या च जननी तस्य येन देवी समर्चिता ॥ धनेन धननाथश्च तेजसा भास्करोपमः । वेगेन पवनो ह्येष येन देवी समर्चिता ॥ गानेन तुम्बुरुः साक्षात् दानेन वासवो यथा । दत्तात्रेयसमो ज्ञानी येन देवी समर्चिता ॥ वह्निरिव रिपोर्हन्ता गङ्गेव मलनाशकः । भुवि सूर्य्यसमः साक्षादिन्दोरिव सुखप्रदः ॥ पितृदेवसमः साक्षात् कालस्येवदुरासदः । समुद्र इव गम्भीरो निर्ऋतेरिव दुर्द्धरः ॥ बृहस्पतिसमो वक्ता धरणीसदृशः क्षमी । कन्दर्पसदृशः श्रीमान् येन देवी समर्चिता ॥ सर्वभाग्ययुतो लोके कुलज्ञानी भविष्यति । तेषां मध्येऽपि यः कोऽपि कालीसाधनतत्परः ॥ त्यजसि त्वं न कदाचित् पुमांसं परमं प्रियम् । मादृशन्तु क्वचित् काले त्यजसि त्वं शुचिस्मिते ! ॥

ली के तत्वार्थ की चिन्ता करता है, ब्रह्मादिक भी उसकी समान नहीं हो सकते, अन्यकी तो बातही क्या है ? वही व्यक्ति सुकृती, वही कुलभूषण और उसी की जननी धन्य है वही धन में कुबेर के समान, तेज में सूर्य के समान वेग में पवन के समान, गान में तुम्बुरु के समान, दान में वासवकी समान, और ज्ञान में दत्तात्रेय की समान, होता है और वही व्यक्ति अग्नि की समान शत्रुविनाश करता है, गंगा की समान मल नाशकरता है, चन्द्रमा की समान सुख देता है, अग्नि की समान पवित्रता साधन करता है । हे शम्भो ! वह व्यक्ति यमकी समान काळ को भी दुराक्रम्य वागीश्वर की समान गंभीर निर्ऋति की समान दुर्द्धर वृहस्पति की समान वक्ता धरणीकी समान क्षमा शील और कामदेव की समान स्त्री गणों को मनोहर होता है । आहा ! संसार में यही सौभाग्य है कि—मनुष्यको लोक में कुल ज्ञानी होना चाहिये और इस के अतिरिक्त काली साधन में तत्पर होना चाहिये । हे शुचिस्मते ! यद्यपि तुम मेरी समान व्यक्ति को किसी समय

किन्तु कालीज्ञानिनञ्च त्यद्द्यसि न कदाचन । न हि कालीसमा पूजा न हि कालीसमं फलम् ॥ न हि कालीसमं ज्ञानं न हि कालीसमं तपः । ये गुणाः परमेशस्य पञ्चकृत्यविधायिनः ॥ ते गुणा सन्ति सर्वेऽपि कालीतत्त्वस्य ज्ञानिनः । कालिकाहृदयज्ञानी कालीसाधनतत्परः ॥ देववत् मानुषो भूत्वा लभेत् मुक्तिं चतुर्विधाम् । इति ते कथितं सम्यक् कालिकातत्त्वमुत्तमम् ॥ अनेन सम्यगास्थाय सर्वकामफलं लभेत् ॥

इति श्यामारहस्ये विद्यामाहात्म्यकथनं नाम
सप्तमः परिच्छेदः ।

त्यागकरदो, किन्तु अपने परमप्रिय पुरुषको कभी नहीं छोडती हो, और जो व्यक्ति कालीज्ञान युक्त है अर्थात् जिसको काली का ज्ञान है, उसका भी तुम कभी त्याग नहीं करती हो । कालीकी समान पूजा नहीं, कालीकी समान फल नहीं, काली की समान ज्ञान नहीं और काली की समान तपस्या नहीं है, साक्षात् परमेश्वर का पंचकृत्य विधान करने से जो समस्त गुण उत्पन्न होते हैं, कालीतत्व के भी वही सब गुण हैं इसमें अन्यथा नहीं है । जो व्यक्ति कालीहृदय ज्ञानी और सत्य साधन में तत्पर है, वह मनुष्य होकर भी देवताकी समान होकर चार मकार की मुक्ति लाभ करता है । यह मैंने तुम्हारे निकट कालिकातत्वका वर्णन किया ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित
श्यामारहस्येभाषाटीकासहितविद्यामाहात्म्यकथननाम
सप्तमपरिच्छेदसमाप्त ॥ ७ ॥

अथ अष्टमः परिच्छेदः ।

अथ आचारक्रमो लिख्यते तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

ईश्वर उवाच ।

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते । सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारपारगः ॥ अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यानुष्ठान तत्परः । परायां देवतायाञ्च सर्वकर्मनिवेदकः ॥ अन्यमन्त्रार्चनश्रद्धा मन्यमन्त्रप्रपूजनम् । कुलस्त्रीवीरनिन्दाञ्च तथा वेश्योपसङ्गमम् ॥ स्त्रीषु रोषं प्रहारञ्च वर्जयेत् मतिमान् सदा । स्त्रीमयञ्च जगत् सर्वं चिन्तयेत् साधकोत्तमः ॥ स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियः । जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्द्ध्वं जपं चरेत् ॥ स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् विशेषात् कुलजां शुभाम् ॥ भक्षंस्ताम्बूलमद्यांश्च भक्ष्यद्रव्यान् यथारुचीन् । मांसमत्स्यदधिक्षौद्र पयः शाकाद्य

अब आचार क्रम लिखाजाता है । कालीतन्त्र में कहा है । यथा-ईश्वर (शंकर) ने कहा —अनन्तर जिसके द्वारा अमृत भोग कियाजाता है उसी आचार क्रमको कहता हूं । सर्व भूतोंके हितानुष्ठान में आसक्त और समयाचार परायण होना चाहिये, अनित्यकर्म त्याग और नित्यकर्म के अनुष्ठान में तत्परताका अवलम्बनकरै, परदेवतामें समस्त कर्म निवेदनकरै अन्य मंत्र की अर्चना में श्रद्धा, अन्य मंत्र की पूजा, कुलस्त्री और वीर व्यक्ति की निंदा, उन में वेश्योपहारण स्त्री गणों के प्रति क्रोध दिखाना और उनको प्रहरण इन सब बातों का सर्वदा परित्याग करै, समस्त जगत् को स्त्री मय देखे, और स्वयं भी स्त्री मयहो, स्त्री गणों के प्रति दोष परित्याग करै, विशेष प्रकार से उनकी पूजा करै, जपस्थान के ऊर्द्ध भाग में महा शंख निवेशित करके जप करै, स्त्री के एवं विशेष करके कुलजा और शुद्ध स्वभाव स्त्री के सहित संगतहो, उस को स्पर्श कर ताम्बूल, मद्य, यथा रुचि भक्ष्य द्रव्य, मांस, दधिक्षौद्र दुग्ध, पैक्षव, और भक्तादि अनेक प्रकारके खाद्य स्वयं

मैक्षवम् ॥ भक्ताद्यशेष भक्ष्याणि दत्वा तत्र जपं चरेत्। दिक्कालानियमो नास्ति स्थित्यादिनियमस्तथा ॥ न जपे कालनियमो नार्चादिषु वलिष्वपि । स्वेच्छानियम उक्तो हि महामन्त्रस्य साधने॥ वस्त्रासनस्थानदेहस्पर्शादिगेहबाधनात्॥ नास्त्यशुद्धिरिह क्वापि निर्विकल्पं मनश्चरेत् । सुगन्धि श्वेत लौहित्यकुसुमैरर्चयेत्ततः । वन्यैर्मरुकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः ॥ पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं भोगं गृहं सुखम् । सर्वन्त्र युवतीरूपं भावयेद् यतमानसः ॥ कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्य्यात् समाहितः । यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिस्तु जायते ॥ तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् । बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा ॥ कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत् । तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियं तथा॥ सर्वथा न च कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत्।

भक्षण और उस को प्रदान करके जप करे । इस विषय में दिक् काल का नियम और स्थित्यादि की भी व्यवस्था नहीं है, बलि और पूजा में भी इसी प्रकार कालादि का नियम नहीं है, केवल मन को निर्विकल्प (एकाग्र) करना चाहिये, किसी प्रकार द्वैधभाव का आश्रय न करे, सुन्दर गंध युक्त श्वेत और लाल वर्ण के कुल कुसुमसे एवं विल्व और मरुवकादि समस्त पुष्पद्वारा पूजा करे, तुलसीके द्वारा पूजा न करे,चर्व्य चोष्य लेह्य, पेय भोग और सुख, व गृह जिसमें मन आसक्तहो, उन सब को युवती रूप में भावना करे, यदि कुलजा स्त्री दिखाई दे तो सावधान होकर उसको नमस्कार करे, यदि भाग्यवश कुल दृष्टि संघटित हो, तो समकाल के समय ही उस की मन मन में पूजा करनी चाहिये । यह बाला हो यौवनोन्मत्ता, वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सित और दुष्टा, जो कोई क्यों नहो, नमस्कार करके चिन्ताकरे । उसको कभी प्रहार न करे, निन्दा न करे, उनको कुटिलता न दिखावे, अप्रिय अनुष्ठान न करे, भली भांति इन सब कार्यों को दूर करे, दूर न करने से सिद्धि में विघ्न होता है, स्त्री गणही देवता, स्त्री गणही प्राण, और स्त्री

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम् ॥ स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि । विपरीतरता सा तु भविता हृदयोपरि ॥ नाधर्मो जायते सुभ्रु ! किंच धर्मो महान् भवेत् । स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेत् हृष्टमानसः ॥ इत्याचारपरः श्रीमान् जपपूजादितत्परः । पानतः कुलतन्वींनां परतत्त्वे प्रलीयते ॥

कौलतन्त्रेऽपि ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कौलिकाचरणं यथा । पाने भ्रान्तिर्भवेद् यस्य घृणा स्याद्रक्तरेतसोः ॥ शुद्धौ चाशुद्धता भ्रांतिः पापशङ्का च मैथुने । स भ्रष्टः पूजयेद्देवीं चण्डीमंत्रं कथं जपेत् ॥ रोगी दुःखी भवेद्देवि ! रौरवे नरके वसेत् । पंचमात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः ॥ भावरूपा च या देवी रेतःप्रीता सदानघे ! । रेतसा तर्पणं तस्या मद्यैर्मांसैः समं

गणही विभूषा हैं, इस कारण सर्वदा स्त्री संगी होनाचाहिये, अन्यथा अपनी स्त्री का संसर्गी हो, उस स्त्री के हृदयोपरि विपरीतरताहोने से भी कुछ अधर्म नहीं होता; वरन महान् धर्म संचित होता है, इस विषय में स्वेच्छाचार लिखा गया है, परमहृष्ट चित्त से आचरण करे, इस प्रकार आचार परायण और पूजादिमें तत्पर होकर, कुलाङ्गनागणों का पान करने से परम तत्त्व में लयको प्राप्त होता है ॥

कौलतन्त्र में भी कहा है । हे देवि ! श्रवण करो, कौलका चरण कीर्तन करता हूं। पान में भ्रांतिमान, शोणित और शुक्र में घृणावान, शुद्धि में अशुद्धज्ञानवान् और मैथुन में पापशङ्कावान् हाने से, सर्व्वथा भ्रष्ट होजाता है । देवीकी पूजा में और उसके मन्त्र जप में फिर अधिकार नहीं रहता, रोग और दुःख समस्त सदा आक्रमण करते है, रौरव नरक में सदा वास होता है । पञ्च मकार की अपेक्षा शाक्तगणों के सुख और मोक्ष साधन का अन्य उपाय नहीं है । हे अनघे ! देवी चण्डिका भावरूप हैं इसलिये सर्व्वदाही रेत प्रिय हैं । इसीलिये मद्य और मांस की समान रेतः द्वारा

प्रिये ! ॥ केवलैः पंचमैर्देवि ! सिद्धो भवति साधकः। ध्यात्वा कुण्डलिनीं शक्तिं रमन् रेतो विमुञ्चयेत् ॥ अमन्त्रा च यदा नारी रसाद् यत्नात्तु लभ्यते । आत्मदेहस्वरूपेण तत्कर्णे मंत्रमुच्चरेत् ॥ ततश्च शक्तिरूपा स्यात् भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी रम्भा च उर्वशी मुख्या या नारी गगने भुवि ॥ पाताले वा स्थिता या च तस्या नाथस्तु कौलिकः । तस्यापि वर्ज्या या नार्य्यस्तस्याः शृणु विधिं प्रिये ! ॥ गुरुरेव शिवः साक्षात् तत्पत्नी परमेश्वरी। मनसा कर्मणा वाचा रमणं तत्रवर्जयेत्॥ तस्य देवपदे भक्तो मुक्तिं प्राप्य परां व्रजेत् । गुरोः स्नुषा गुरोः कन्या तथा च मन्त्रपुत्रिका ॥ एतस्या रमणं वर्ज्यं ब्रह्मघ्नं मानसेऽपि च। कौलिकस्य च पत्नी च सा साक्षादीश्वरी शिवे ! ॥ तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत्। मातापि गौरवाद्वर्ज्या अन्या वा विहिताः स्त्रियः ॥ भूतियागे

उनका तर्पण करे । हे देवि ! साधक केवल पञ्चमकार तत्त्व द्वाराही सिद्धि लाभ करता है । कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करके, रमण करता हुआ, रेत विसर्जन करे, मन्त्रहीन रमणी के रस और यत्न बलसे प्राप्त होने पर, आत्म देह स्वरूप उसके कानमें मन्त्र उच्चारण करै, तो वह शक्तिरूप होकर भोग और मुक्ति प्रदान करती हैं, आकाश, पाताल अथवा पृथिवी में रम्भा और उर्वशी प्रमुख जो सम्पूर्ण वराङ्गना हैं, कौलिकही उनके नाथ हैं । तिन में उन वर्जनीय रमणी की विधि श्रवण करो । गुरुही साक्षात् शिव और उनकी पत्नीही साक्षात् महेश्वरी है । अतएव कायमन वचन से उनके सहित ससर्ग परित्याग करै । गुरुकी पुत्रवधू, गुरुकी कन्या, अथवा गुरुकी मन्त्रपुत्रिका, इनका भी ससर्ग वर्जन करे, मन मन में भी संसर्गी होने से ब्रह्महत्या के पातक का भागी होना होता है । हे शिवे ! कौलिककी पत्नी भी साक्षात् महेश्वरी है, अतएव उस के संसर्गमात्र से कौलिक को नरक गामी होना होता है, जननी को भी गौरव सहित वर्जन करै. जननी की

च कर्त्तव्ये विचारो मंत्रवित्तमैः । अन्यस्थाने विचारे च देवीशापः प्रजायते ॥ शिवहीना च या शक्तिर्दूरं तां परिवर्जयेत् । अभिषेकाद् भवेत् शुद्धिर्मन्त्रोच्चारणतः श्रुतौ ॥ पंचमेन च देवेशि ! सर्वपापैः प्रमुच्यते । केवलेनाद्ययोगेन साधको भैरवो भवेत् ॥ द्वितीयेन महेशानि ! पूजको ब्रह्मरूपभाक् । केवलेन तृतीयेन महाभैरवतां व्रजेत् ॥ चतुर्थेन तु तत्त्वे न भुवि पूज्यैकनायकः । परे च परतां याति मम तुल्यः परेश्वरि ! ॥ पंचमेन भवेद्योगी सर्वसिद्धिपरायणः । इतीदं कथितं देवि ! सुगोप्यमतियत्नतः ॥ न देयं पशवे देवि ! कुलनिन्दापराय च । कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापविशुद्धये॥ याचयेदमृतं ज्ञानं तदभावे जलं पिबेत्। कुलाचारो हि यच्छक्त्या दत्तं पात्रन्तु भक्तितः ॥ नमस्कृत्य प्रगृह्णीयात् अन्यथा नरकं व्रजेत् ॥

समान सम्पूर्ण विहित स्त्री भी वर्ज्जनीय हैं । भूतियाग के समयही विचार करे । अन्य स्थल में विचार करने से देवी शाप देती है । जो शक्ति शिव हीन है, उसको दूरसेही विसर्ज्जन करे । अभिषेक और कर्ण में मन्त्र दान करनेसेही शुद्धि संघटित होती है । हे देवेशि ! पञ्चमकार तत्त्व द्वाराही सर्वप्रकार का पाप दूर होता है । केवल आदि योग सेही साधक भैरव होजाता है । द्वितीय योग में पूजा करने से ब्रह्मका स्वरूप प्राप्त होता है- केवल तृतीय द्वारा आराधना करने से, महाभैरव होजाता है. चतुर्थ तत्त्व द्वारा पूजा करने से, एक नायक एव मेरी समान होजाताहै. पञ्चतत्त्व द्वारा पूजा करने से सर्व्व सिद्धि परायण योगी होता है । हे देवि ! मैंने जो यह कहा, अति यत्न से और अत्यन्त गुप्तरूप से इसकी रक्षा करे । हे देवि ! पशु और कुलनिन्दक को इसका दान न करे । कुलाचार गृह में गमन कर के पाप शुद्धि के लिये भक्ति सहित ज्ञानरूप अमृत की प्रार्थना करे। उसके न होने से जल पान करे । कुलाचार शक्ति के द्वारा जो पात्र भक्तिपूर्वक दान करे, नमस्कार के पुरस्कार में उसे श्रद्धा सहित ग्रहण करे । इस के

अन्यत्रापि ।

वृथा कालं न गमयेत् द्यूतक्रीड़ादिना सुधीः । गमयेद्देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥ गुरोःकृपालापकथास्तोत्रागमविलोकनैः । गमयेदनिशं कालं न वदेत् परदूषणम् ॥ प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा प्रत्यहं प्रणमेद् गुरुम् । गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यञ्च विवर्जयेत् ॥ दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वञ्च गुरोरग्रे न कारयेत् । गुरुशय्यासनं यानं पादुकोपानहौ तथा ॥ स्नानोदकं तथा च्छायां लङ्घनं न कदाचन । श्रीगुरुं कुलशास्त्राणि पूजास्थानानि यानि च ॥ भक्त्या श्रीपूर्वकं देवि ! प्रणम्य परिकीर्त्तयेत् । गुरुनाम न भाषेत जपकालादृते प्रिये ! ॥ श्रीनाथदेवस्वामीति विवादे साधने वदेत् । उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् मन्त्रदः पिता ॥ तस्मान्मन्ये च सततं पितुरप्यधिकं

अन्यथा करने से, नरक में गमन करना होता है । अन्यत्र भी कहा है— सुबुद्धि व्यक्ति द्यूतक्रीडादि के द्वारा वृथा काल व्यतीत न करै, देवताकी पूजा जप याग और स्तवादि द्वारा उसको वितावे । अधिक क्या गुरुकी कृपा अलापवार्ता स्तोत्र और आगम विलोकन इत्यादि द्वारा सर्वदा काल विताने में प्रवृत्त होवे; पराये दूषणको दूर करै । प्रत्यक्ष अथवा अपरोक्ष में प्रतिदिन गुरुको प्रणाम करे । गुरु के सन्मुख में पृथक् पूजा और औद्धत्य त्याग करै और कभी दीक्षा व्याख्या और प्रभुत्व प्रकाश न करे । गुरुकी शय्या, आसन, यान, पादुका, उपानत्, स्नानकाजल, छाया इन सबकोकभी उलंघन न करै. श्री गुरु, कुलशास्त्र, पूजास्थान, इन सबको भक्ति सहित प्रणाम करके, श्री पूर्वक परिकीर्त्तन करे । हे प्रिये ! जप समय के अतिरिक्त और किसी समय गुरुका नाम उच्चारण न करै । विवाद और साधन समय में 'श्रीनाथ देवस्वामी' इसप्रकार कहना चाहिये । जनक और ब्रह्मदाता इनदोनों में मन्त्रदाताही श्रेष्ठ है। इसलिये गुरुको पिता की अपेक्षा भी सदा अधिक मान करना चाहिये । कुलाचार और गुरु इनकी मन २ में भी निंदा

गुरुम् । कुलाचारं गुरुं देवं मनसापि न निन्दयेत् ॥ कुलस्त्री-वीरनिन्दाञ्च वर्जयेत् मतिमान् सदा । अन्तः शाक्ता वहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः ॥ नानामूर्त्तिधराः कौलाः विचरन्ति महीतले ॥ निगमे तु—

गुरुणालोकितः शिष्य उत्तिष्ठेदासनं त्यजेत् । गुरुणा सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लङ्घयेत् ॥ रभसं मैथुनं मिथ्या यो वदेदन्तिके गुरोः । स याति नरकं घोरं भैरवेण च भाषितम् ॥ संक्रान्तिर्नवमी पूर्णा चाष्टमी च चतुर्दशी । एकादशी व्यतीपाते कर्मलोपं न कारयेत् ॥ तत्त्वहीनं कृतं कर्म जपकर्म च निष्फलम् । शाम्भवी कुप्यते तेभ्यो ब्रह्महत्या दिने दिने ॥

भावचूडामणौ च ।

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने निर्जने वने । शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् मुदा ॥ वीराणां जपकालस्तु सर्व-

---

न करे, वुद्धिमान व्यक्ति सर्वदा कुल स्त्री और वीरगणों की निन्दा परित्याग करे । कौलगण अन्तर में शाक्त, बाहिर शैव और सभा में वैष्णव इसप्रकार विविध मूर्त्ति धारण करके पृथिवी में विचरण करें । निगममें कहा है, गुरु के दर्शन मात्र सेही शिष्य आसन त्याग करके उठ खड़ा हो । गुरु जो कहे सत् वा असत् होने से भी, उसका उल्लंघन न करे । गुरुके निकटरभस मैथुन और मिथ्या कहने से, घोर नरक में गमन करना होता है । स्वयं भैरव ने भी यह कहा है । संक्रान्ति, नवमी, पौर्णिमा, अष्टमी, चतुर्दशी, एकादशी और व्यतीपात इन सम्पूर्ण में कर्त्तव्य कर्मका लोप न करे । तत्वहीन कर्म और फलहीन जप करने से शाम्भवी देवी कुपित होती हैं । और दिन दिन ब्रह्महत्या का भी पातक सञ्चित होता है । भावचूडामणि में कहा है—अकेले निर्ज्जन स्थान में, निर्ज्जन श्मशान में, शून्यगृह में, नदी पुलिन में निःशंक और मन के आनन्द में विहार करे । वीरगणों का जप

कालः प्रशस्यते । सर्वदेशे सर्वपीठे कर्त्तव्यं नात्र संशयः ॥

अन्यदुक्तम् ।

स्वकुलान्ते पुरश्चर्य्या कार्य्या रात्रौ च नान्यथा। वेदहीने द्विजे जात्या यथा न श्रुतिसंस्क्रिया ॥ विष्णुभक्तिं विना देवि ! भक्तिर्नैव यथा भवेत् । शक्तिज्ञानं विना मुक्तिर्यथा हास्याय कल्पते ॥ गुरुं विना तथा तंत्रे नाधिकारः कथञ्चन । पतिहीना यथा नारी सर्वकर्मविवार्जिता ॥ कुलं विना तथा दिव्यो वीरो वा मम साधकः । नाधिकारीति कौलेषु तस्माद् यत्नपरो भव ॥ अविनीतं कुलं यस्य स कथं मम पूजकः । तस्माद् यत्नात् तथा कार्य्यं यथा स्याद् विनयान्वितम् ॥ इति

तन्त्रचूडामणौ च ।

विष्णुभक्तो यदा देव ! कुलदीक्षापरो भवेत् । पुत्रदारधनं तस्य नाशयामि न संशयः ॥ कुलं देवं द्विजं हित्वा वैष्णवं

काल सर्व काल में ही प्रशस्त है, सब स्थान एव समस्त पीठ में करना चाहिये, इस में सन्देह नहीं । प्रकारान्तर में भी उद्देश किया है। यथा स्वकुलान्तमें पुरश्चरण करै । रात्रि में उसको करना चाहिये । इस के अन्यथा न करै वेदहीन ब्राह्मण में जिस प्रकार श्रुति का संस्कार नहीं होता, विष्णुभक्ति हीन व्यक्ति में जिस प्रकार भक्ति नहीं होती, शक्ति ज्ञान विना जिस प्रकार मुक्ति हास्य का कारण होती है, गुरुके अतिरिक्त तंत्र में भी ऐसेही किसी प्रकार अधिकार नहीं उत्पन्न होता । पतिहीन स्त्री जिस प्रकार किसी कार्य की नहीं, वीर अथवा मेरा साधक किसी प्रकार कुल विना भ्रष्ट होता है। किसी प्रकार कौल में अधिकारी नहीं होता । इस लिये यत्न परायण होवे । जो कुल विनय हीन है, वह किसप्रकार मेरे पूजक होसकते हैं ? अतएव जिस से विनयान्वित होजाय, यत्न पूर्वक उसको ही करै ॥

तन्त्र चूडामणि में कहा है । हे देवि ! विष्णु भक्त के कुल दीक्षापरायण होने से, मैं निसन्देह उसकी स्त्री, पुत्र और धन विनाश करती हूं । कुल

देशिकं यदि । करोति कुलशिष्योऽसौ भ्रष्टो भवति साधकः । हविरारोपमात्रेण वह्निर्दीप्तो यथा भवेत् । कुलदेवमुखात् तद्वत् तथा दीप्तो भवाम्यहम् ॥ दीक्षणात् पूजनाद्धोमात्तथा दृष्टय्यवलोकनात् । यत्किञ्चित् ज्ञानमात्रेण पशुना निर्जितोमृतः ॥ साधकस्य महापापं दत्त्वा तस्य हराम्यहम् । पशोर्विद्यां समासाद्य यदि पूजापरो भवेत् ॥ तस्य वक्त्रं समालोक्य कुल वक्त्रं विलोकयेत् । पशूपदिष्टं यत्किंचित् क्रियते कुलसाधकैः ॥ तत्तत्कर्म महादेव ! अभिचाराय कल्प्यते । यदि दैवात् पशोर्विद्यां लभ्यते कुलजैर्बुधैः ॥ द्विजस्य कौलिकीं प्राप्य पुनर्विद्या मुपालभेत् । अज्ञानाद् यत् कृतं कर्म नालोच्य कुलकौलिकीम् ॥ क्षमस्व देवि ! तत्पापं हर देवि ! कृपां कुरु । एवं प्रार्थ्य पुनर्दीक्षां कुर्य्यात् साधकसत्तमः ।

अन्यदुक्तं तत्रैव ।

मनसा वचसा देव ! कुलाकुलगुरुं यदि । निन्दां करोति

देव ब्राह्म को त्याग करके, वैष्णव को गुरु करने से, साधक को निश्चय ही भ्रष्ट होना पड़ता है । घृत के आरोपण मात्रसेही अग्नि जिस प्रकार प्रज्वलित हो उठती है, मैं कुल देव के मुखसेही उसी प्रकार जाग्रत होती हूं। पशुके निकट विद्या ग्रहण करके, पूजापरायण होने से, उसका वदन देख कर कुल वक्र अवलोकन करें । कुल साधक पशुगणों को जो कुछ उपदेश करें, हे महादेव ! वह समस्तभी अभिचार रूप से परिणत होता है । यदि दैवात् कुलज व्यक्तिगण पशुके निकट विद्या लाभ करले तो पुनर्वार कौलिक ब्राह्म के आश्रय में विद्या ग्रहण करें । अज्ञान वशत कुल कौलिक आलोचना करके जो किया है, हे देवि ! क्षमाकरके वह पाप हरण पूर्वक कृपा वितरण करो, इस प्रकार प्रार्थना करके, पुनर्वार दीक्षित होवें । इसीसे प्रकारान्तर में कहाहै । यथा—मन और वाक्य द्वारा कुलाकुलगुरुकी निंदा करने से उस

पापो यस्तस्योपरि च जायते ॥ एतत् शास्त्रप्रसङ्गन्तु एतत् पुस्तकदर्शनम् । पशोरग्रे न कर्त्तव्यं प्राणान्तेऽपि कदाचन ॥ कृत्वा सूर्य्यमुखं दृष्ट्वा स्मर्त्तव्यः कुलनायकः । पशुना यः सहालापः सहशय्या सहासनम् ॥ संसर्गश्चैव मेवात्र कुलीनस्य महात्मनः । पातकं न तु चैतेषां संचये पुण्यराशयः ॥ प्रभवन्ति न तीर्थानि न गङ्गा न च काशिका । महाविद्याजपादेव चत्वारि पातकानि च ॥ नश्यन्ति च न संसर्गःक्षयंयाति कदाचन । अज्ञानात् पशुसंसर्गो यदि दैवात् प्रजायते ॥ तदा द्वादशवर्षाख्यं व्रतार्थं यत्नमाचरेत् । कुलीनायाः समीपस्थः कुलसेवापरायणः ॥ उच्छिष्टभोजी तन्नामजापी च तत्पतेरपि । तदा ह्येतां समाभ्यर्च्य यत्नैश्च परितोष्य च ॥ शुचिर्भूत्वा परां विद्यां गृहीत्वा शुद्धिमाप्नुयात् । व्रताशक्तो यदि भवेत् सुवर्णं कुलतोषकृत् ॥ दद्यात् कुलाय पापानां क्षयार्थं कुलसाधकः ।

को पातक उत्पन्न होताहै । यह श्रेष्ठ शास्त्र और इस पुस्तक का दर्शन पशुगणों को प्राणान्त होनेपर भी न करावे । कराने से सूर्यमुख दर्शन करके कुलनायक का स्मरण करै । महात्मा कुलीन, पशु के सहित अलाप, शयन, अवस्थान और संसर्ग करने से, उन दोनों में जो पातक उत्पन्न होता है, वह क्षय होकर किसी क्रम से पुण्य संचय नहीं होता. तीर्थ गङ्गा और काशी भी उसको क्षय नहीं करसक्ती । अधिक क्या महाविद्या का जप करनेसे भी उल्लिखित चारों पातक क्षयको प्राप्त नहीं होते । अज्ञान वशतः दैवात् यदि पशुका संसर्ग संघटित हो तो द्वादश वर्षाख्य व्रतका आचरण करने के लिये यत्न करै । कुलीन के समीपस्थ और कुल सेवा परायण होकर, उसकी और उसके पति की उच्छिष्ट भोजन और नामजप सहित भक्ति पूर्वक उस की पूजा और परितोष विधान एवं पवित्र होकर, परा विद्या ग्रहण करने से, शुद्धि लाभ होती है । व्रत में असमर्थ होने से, कुल साधक कुल और पापक्षयार्थ सुवर्ण दान करै । ज्ञान पूर्वक संसर्ग करने पर किसी मत सेभी

ज्ञानात् संसर्गमासाद्य शुद्धिं प्राप्नोति नैव च ॥ पशुभ्यो भाषणाच्चैव योनिमालभ्य साधकः । नानाक्लेशसमायुक्तो नरकान् प्रतिपद्यते ॥ न चैवं दीक्षयेन्नाम न चान्यदर्शनञ्चरेत्। मम शास्त्रकथाञ्चाग्रे प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ कर्मणा मनसा वाचा पशुशास्त्राङ्गपूजनम् । प्रकुर्वन्ति महापापास्त्याज्याश्च कुलपांशुलाः ॥ निर्जीवकाष्ठे लोष्ट्रे वा शर्करायां तृणेऽपि वा। सर्वत्र चिन्तिता चाहं न पशोर्मित्रविग्रहे॥ चेतनाधिष्ठितं सर्व सुखं दुःखं प्रकल्पितम् । तत्रैव चेतनाभावान्नियमो नास्ति तादृशः ॥ प्रसन्ना तेन गोप्तव्या कुलीनैः सिद्धिहेतवे ।

अन्यदुक्तं तत्रैव ।

दीक्षायां कुलपूजायां शिष्यत्वे यदि वा गुरौ । लज्जापरं कुलं तत्र नित्यापि नित्यनिद्रिता ॥ अधस्ताद्दृष्टिमात्रेण तस्य विद्या ह्यधोमुखी । निमीलनान्मृता विद्या बोधनान्मारयेद्ध्रुवम् ॥ पार्श्वावलोकनेनैव व्याधि दारिद्र्यपीड़िता । चतुर्दिगवलोकेन उच्चाटनगता भवेत् ॥ एतादृशं कुलं देव !

शुद्धि लाभ नहीं होती । साधक पशु के सहित सम्भाषण करने से योनि आलभन पूर्वक नाना क्लेश भोग करके नरक परम्परा को प्राप्त होते हैं । यान, मन, और वाक्य द्वारा भी पशुशास्त्राङ्ग पूजा करने से महापापी कुल पांशुल और त्याज्य होता है । निर्जीव काष्ठ, लोष्ट्र, शर्करा, तृणसर्वत्रही मैं चिन्तिता होती हूं । केवल पशु के मित्र विग्रह में नहीं । दीक्षा कुल पूजा शिष्यत्व और गुरु इन सब में कुल यदि लज्जा परायण होकर अधोदृष्टि करे तो उसकी विद्या अधोमुखी होती है । नेत्र वन्दकरने से विद्या में मृत्यु होती हैं, बोधन अर्थात् आत्मा गौरव अवलंबन करने से नष्ट होजाता है पार्श्व अवलोकन करने से, व्याधि और दारिद्य पीड़ा उपस्थित होती है, चारों ओर अवलोकन करने से उच्चाटन गत होना पड़ता है ।

यदि कुर्य्यात् कथंचन तदा कुलगुरुं प्रार्थ्य कार्येद्वीचणं ततः॥ उपदेष्टा यदादेव!तदा पुत्री तु कन्यका॥ पूजार्हाच तदा देवी तदामाता नसंशयः॥ सर्वथा पितृपुत्रीभ्यां मूलयोगेन दृश्यते। तत्कृते पापबुद्ध्या वै उभौ नरकगामिनौ ॥ चुम्बके अन्यशास्त्रज्ञे पशुग्रामे च भैरव ! । न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं न च वाच्यं कथंचन ॥ एवं कृते गुरौ शिष्ये ममशापो भविष्यति।

शिवागमे च ।

शक्त्युच्छिष्टमविचार्य्य पिबेच्चक्रेश्वरो यदि ॥ घोरञ्च नरकं याति कुलमार्गे पतेद्ध्रुवम् । तस्माद्विचार्य्य यत्नेन शक्त्युच्छिष्टं पिबेत सुधीः ॥ आनन्दं कारयेद्वीरस्तत्त्वं निर्भ्रान्तितः पिबेत् । शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्मजनार्दनः ॥ शक्तिरिन्द्रावधिः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रोग्रहो ध्रुवम् । शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न जानाति नारकी ॥

वीरतन्त्रेऽपि ।

स्नानादिमानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः । पूजनं मा·

हे देवि ! यदि किसी भांतिसे इसप्रकार घटनाहो. तो कुलगुरुकी प्रार्थना करके उनको देखें । अन्य शास्त्रज्ञ और पशु इन से कभी न कहै. कहने से गुरु शिष्य दोनों को मैं शाप देती हूं । शिवागम में कहा है. चक्रेश्वर विचार विहीन होकर शक्तिकी उच्छिष्ट पान करने से घोर नरक में गमन करता है और कुलमार्ग से पतित होता है । इसलिये विचार करके शक्तिकी उच्छिष्ट यत्न सहित पान करे । भ्रांति रहित होकर तत्त्वपान और आनन्द करना चाहिये । शक्ति शिव और शिवही शक्ति हैं. और शक्तिही ब्रह्म, शक्तिही विष्णु, शक्तिही इन्द्रादि देवगण, शक्तिही चन्द्र और समस्त, ग्रह, फलतः सम्पूर्ण जगतही शक्तिरूप है । जो व्यक्ति यह नहीं जानते, वही नारकीहैं। वीरतन्त्र में भी कहा है, मानस जपही जप, मानसस्नानही स्नान मानस

नसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ॥ सर्व एव शुभ कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् । न विशेषो दिवा रात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ॥ सर्वदा पूजयेद्देवीं सुस्नातः कृतभोजनः । महानिश्यशुचौ देशे वलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥

एतेन दिवसेऽपि पञ्चतत्त्वेन संपूजनं कार्य्यमिति सूचितम् । यत्तु ।

रात्रावेव महापूजा कर्त्तव्या वीरवन्दिते ! ।

इति स्वतन्त्रवचनम् ।

न दिने सर्वथा कार्य्या शासनात् मन्त्रसुव्रते ! । हविष्याशी दिवा लक्षं पुरश्चारी तु यो जपेत् । तत्र मात्रं दिवा पूजा पशुवद्बुधवन्दिते ! ॥

इति स्वतन्त्रवचनम्, तत्तु पुरश्चरणविषये बोद्धव्यमिति । तत्र रात्रावेव इति शब्दस्वरसात् सामान्याधिकारपर इति ब्रूमः । कालीतन्त्रादिस्वरसाच्च । तत्तु जपेन कालनियमम् इति पुरैव लिखितम् ।

एवं छिन्नमस्तातन्त्रेऽपि ।

सिद्धमन्त्रे न दोषः स्यान्नाशौचे नियमेऽपि च । न क-

शौचही शौच, मानस पूजाही पूजा और मानस तर्पणादिही तर्पणहै सम्पूर्ण कालही शुभकाल है. अशुभ काल किसी काल में भी नहीं है । दिन,रात्रि, सन्ध्या और महारात्रि किसी में भी दोष नहीं है । स्नान और भोजन कर के सर्वदा देवीकी पूजा करै । महारात्रि में अपवित्र प्रदेश में मन्त्रोच्चारण के सहित वलिप्रदान करै इसके द्वारा दिन में भी पञ्चतत्त्व से पूजा करै, पवित्र होनेपर फिर जो कहा है. हे वीरवन्दते ! रात्रि मेंही पूजा करै । यह स्वतंत्र का वचन है । स्वतंत्रमें यह भी कहाहै, शासन वशतः दिनमें पूजा न करै हविष्याशी और पुरश्चारी होकर जो व्यक्ति लक्ष जप करताहै, इसमें दिनकी पूजामात्र पशुकी समान है । स्वतंत्रका यह वचन पुरश्चरण विषयक है छिन्नमस्ता तंत्र में भी कहा है, सिद्ध मंत्र में अशौच वा अनियम होने से

ल्पना दिवारात्रौ न च सन्ध्यावसानकम् ॥ सदैव पूजयेन्मन्त्री मैथुने तु विशेषतः ।

किन्तु—न पश्येत् पतितां नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम् ॥ दिवसे न रमेन्नारीं तद्योनिं नैव वीक्ष्ययेत् ॥

कुलार्णवेऽप्येवम् । तत्प्रकरणत्वात् पुरश्चर्णं वा इति ।

अथ रुद्रयामले ।

पशोः सम्भाषणाद्देवि ! मन्त्रसिद्धिर्न जायते । पशुस्तु द्विविधो देवि ! दीक्षितोऽपि भवेत् पशुः ॥ दीक्षितश्च कुलाचार निन्दको द्विविधः पशुः । गोलकेन सहालापात् स्पर्शात् सम्भावसंस्कृतात् ॥ न सिध्यति महेशानि ! सत्यं सत्यं वदाम्यहम् विकल्पिता न सिध्यन्ति जपात् सिध्यन्ति लोकदाः ॥ तस्मादेतत् परित्यज्य सिद्धिः स्यात् केवलाज्जपात् । वीरहत्या वृथापानं वीरजायानिषेवणम् ॥ महापातकमित्याहुः कौ·

दोष नहीं है । उसमें दिन रात्रि वा सन्ध्यावसान कल्पना भी नहीं है । सर्वदाही पूजा करे ॥

रुद्रयामल में कहा है—हे देवि ! पशुके सहित सम्भापण करने से मंत्र सिद्धि नहीं होती । पशु द्विविध, हैं दीक्षित भी पशु होता है, दीक्षित और कुलचार निंदक यह दो प्रकार के पशु हैं, हे महेशानि ! गोलोक के सहित आलाप उसको स्पर्श और उसके साहित सद्भाव करने से भी मैं सत्य २ कहता हूं, कि सिद्धि लाभ नहीं होती । जिसके मन में दुवधा है, उसको भी सिद्धि नहीं होती, । जप करने से सिद्ध होता है, इसलिये इसको परित्याग करके जप करै, तो सिद्धि लाभ होती है । हे कुलेश्वरी ! वीरहत्या, वृथापान, और वीरपत्नी गमन यह कई कार्य कौलिक गणों के महापापक

लिकानां कुलेश्वरि ! । अर्थाद्वा कामतो वापि लौल्यादपि च यो नरः । लिङ्गयोनिरतो मंत्री रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दागिरिविरचिते
श्यामारहस्ये पुरुपार्थ साधनाचार विवरणंनामा
ष्टमः परिच्छेदः ।

अथ नवमः परिच्छेदः ।

अथ कुण्डगोलोद्भवादिग्रहणविधिः ।
तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

आनीय प्रमदां मत्तां दीक्षितां यौवनान्विताम् । स्वकान्तां परकान्तां वा घृणालज्जाविवर्जिताम् ॥ परांमुखोपविष्टस्तु निशायामर्द्धरात्रके । हेतुयुक्तं सताम्बूलं दत्त्वा न्यासान् विधाय च ॥ मौली कुन्तलकर्षणं नयनयोराचुम्बनं गण्डयोर्दन्तेनाधरपीड़नं हृदि हतिर्मुष्टया च नाभौ भगे । कक्षा कण्ठकपोलमण्डलकुचश्रोणीषु देया नखाः । सीमन्ते लि-

---

हकर परिगणित हैं । जो व्यक्ति अर्थ काम और लोभ वशतः लिंगयोनि में रत होता है वह रौरवनरकमें गमन करता है ॥

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित
श्यामारहस्ये भाषाटीकासहितपुरुषार्थसाधनाचारविवरण
नामअष्टमपरिच्छेदसमाप्त ॥ ८ ॥

अब कुण्ड गोलोद्भवादि ग्रहण विधि कहीजाती है । तन्त्रान्तर में कहा है । यथा—अपनी स्त्री हो, अथवा पराई स्त्री हो, मत्त दीक्षित, यौवनान्वित और घृणा लज्जा रहित, स्त्रीको लाकर अर्द्धरात्रि में परांमुख बैठाकर

खनं नखैरुरसिजं गृह्णीत गाढ़ं ततः । कुर्वीताविरतं मनोभव गृहे मातङ्गलीलामिति ॥ जंघांगुष्ठपदोर्गुल्फहननं चान्योन्यतः कामिनोः ॥ आं ईं हुं ह्रीं ठ्लें अमुकीं द्रावय स्वाहा इति विन्यसेत् । ऐं ह्रींचपले चलच्चित्तान्तु रेतो मुंच द्वयं पठेत्॥ ठ्लुं क्लीं स्त्रीं क्लीं देवेशि ! द्राविणीवीजमुत्तमम् । तस्यां योनौ न्यसेद्विद्यां मैथुनं कारयेत् प्रिये ! ॥ शुद्धमन्त्रौषधेनैव योनिप्रमथनं चरेत् । मथ्यमाने पुनस्तस्यां जायते तत्त्वमुत्तमम्॥ गृह्णीयात् तत् प्रयत्नेन द्रव्यं कुलोद्भवं शुभम् । निःशङ्कमाहितं द्रव्यं गृहीत्वा तेन पूजयेत् ॥ सान्निध्यं जायते देवि ! सर्वकाममुपालभेत् । कुण्डोद्भवामृतं द्रव्यं कथितं दुर्लभं मया ॥

पञ्चमीयामलेऽपि ।

चर्व्यं चोष्यं निवेद्याथ वस्त्रालङ्करणादिकम् । पूजयेदक्षतैः शुक्रैस्तस्या मदनमन्दिरम् ॥ भावयेत् कामतत्त्वेन तासु तत्त्वं न चोत्सृजेत् । शुद्धमन्त्रौषधेनैव मथयेन्मदनालयम् ॥

हेतु युक्त ताम्बूल प्रदान सहित वक्ष्यमाण मंत्र से न्यास करै । यथा—आं ईं इत्यादि । तदीय कुलगृह में विद्यान्यास करके मैथुन धर्म में प्रवृत्त होना चाहिये । फिर शुद्ध मंत्रौषधी के द्वारा उस रति गृह को मथैं । मथने से उस में उत्तम तत्व उत्पन्न होता है । इसकाही नाम कुण्डोद्भव द्रव्य है । यह पवित्र द्रव्य अत्यन्त यत्न सहित ग्रहण करै । इस में किसी प्रकार की शंका न करै । ग्रहण करने के पीछे उसके द्वारा पूजा करै । पूजा करने से देवी का सान्निध्य (निकटता) लाभ और संपूर्ण कामना पूर्ण होती हैं । यह मैने इस कुण्डोद्भव अमृत का वर्णन किया । यह अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ है । पंचमी यामल में भी कहा है—चर्व, चोष्य, वस्त्र और अलंकारादि निवेदन करके अक्षत और शुक्र द्वारा उस के कुल मंदिर की पूजा और काम तत्व द्वारा भावना करै । उस में कभी तत्व उत्सर्जन न करै । शुद्ध

मथ्यमाने पुनस्तस्या जायते तत्त्वमुत्तमम्। गृह्णीयात् तत् प्रयत्नेन द्रव्यं कुण्डोद्भवं शुभम्॥

अथ शुद्धमन्त्रौषधं यथा तदुक्तं कुलोड्डीशे।

मायागच्छ पदं शुक्रस्तम्भनकारिणि ठद्वयम्॥ अनेनार्कोपरागे च जातीमूलं समानयेत्। एतद्धृत्वा साधकेन्द्रः शुक्रस्तम्भनमाचरेत्॥ इति। गोलोद्भवं तथा देव! गृह्यते च विधानवित्। कुलजां दीक्षितां मत्तां पतिहीनां विचक्षणाम्॥ शक्तियोग्यां स्वरूपाञ्च अनपत्यां समानयेत्। सुन्दरीं शोभनां दिव्यां पीनोन्नतपयोधराम्॥ द्विरष्टवर्षदेशीयां सदा कामाभिलाषिणीम्। पूर्वोक्तक्रमयोगेन कृत्वा न्यासादिकं ततः॥ तत्त्वं प्रगृह्य यत्नेन पूजार्थं साधकोत्तमः। इदं गोलोद्भवं द्रव्यं देवतासृष्टिकारकम्॥ अनेन पूजयेद् यो हि सर्वकाममुपालभेत्। स्वयम्भू कथयिष्यामि पूजार्थं साधकोत्तमः॥

मंत्रौषध द्वारा तदीय कुल गृह मथित करै। मथन करने से उस में पुनर्वार उत्तम तत्व उत्पन्न होता है। वह कुण्डोद्भव शुभ द्रव्य यत्न पूर्वक ग्रहण करै।

अब शुद्ध मंत्रौषध का वृतान्त कहते हैं। कुलोड्डीश में कहा है। यथा—"ह्रीं आगच्छ शुक्र स्तम्भन कारिणि स्वाहा" यह मंत्र उचारण पूर्वक सूर्य के उपराग समय में चमेली की जड़लावै। अनन्तर उसका धारण करके शुक्र स्तम्भन समाचरण करै। हे देव! इसी प्रकार विधानानुसार गोलोद्भव द्रव्य भी ग्रहण करै। कुलजा, दीक्षित, मत्त, पतिहीन विचक्षण, शक्ति योग्या, स्वरूपा, अनपत्या, सुन्दरी, शोभना, दिव्यापीनोन्नत पयोधरा, षोडशवर्ष देशीय, और सर्वदा कामाभिलाषिणी रमणी को लाकर, पूर्वोक्त क्रमयोगानुसार न्यासादि विधान और फिर पूजा के अर्थ यत्न पूर्वक तत्व ग्रहण करै। इसकाही नाम गोलोद्भव द्रव्य है। यह देवताओं काभी सृष्टि कारक है। जो व्यक्ति इस के द्वारा पूजा करता है, उस की समस्त कामना पूर्ण होती है। अब स्वयम्भू का कथन करते हैं। साधकोत्तम पूजा के

पूर्ववन्न्यासवर्य्यन्तु कारयेद्देवि ! सुन्दरि । तस्यास्तु मदनागारे पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥ स्वयमक्षोभितो भूत्वा साधकः पञ्चमीं यजेत् । स्वेच्छा ऋतुमती शक्तिः साक्षाद्देवी सुरेश्वरि ! ॥ तस्याः पुष्पं स्वयं यत्तद्रक्षणीयं प्रयत्नतः । वस्त्रालङ्कारपुष्पेण शक्तिञ्च पूजयेत् सदा ॥ यथा काले तथा पुष्पं स्वयं तद्गोपयेत् सकृत् । गृहीत्वा तत्प्रयत्नेन स्वयम्भू कुसुमं चरेत् ॥ स्वयम्भूपुष्पयोगेन साक्षतेन समर्चयेत् । विद्यां स्वभावतीं जप्त्वा क्षिप्रमाकर्षणादिकम् ॥ देवताश्च महानागा राक्षसा दानवाश्च ये राजानश्च स्त्रियः सर्वा नित्यं वश्या भवन्ति हि ॥

मुण्डमालायाम् ।

स्वयम्भू कुसुमं देवि ! त्रिविधं भुवि जायते । आषोड़शादनूढाया उत्तमा सर्वसिद्धिदा ॥ वलात्कारेण ऊढाया मध्यमा भोगवर्द्धिनी । रजोयोगवशादन्या चाधमा फलदायिनी ॥

अर्थ पूर्व की समान न्यास चर्य विधान करे । उस के कुलागार में परमेश्वरी की पूजा और स्वयं क्षोभ रहित होकर पंचमी की पूजा करे देवी शक्ति इच्छानुसार ऋतुमती होती हैं । उनके उस पुष्प की स्वयं अत्यन्त यत्न सहित रक्षा करे । वस्त्र, अलंकार और पुष्प द्वारा सर्वदा शक्ति की पूजा करनी चाहिये । शक्ति स्वयं यथा समय में वह पुष्प सकृत् गुप्त करती हैं । यत्न पूर्वक उसको ग्रहणकरके स्वयंभू कुसुम रूपमें व्यवहार करे । शीघ्रता सहित आकर्षणादि जपकरके अक्षत सहित स्वयम्भू द्वारा स्वभावती विद्या की पूजा में प्रवृत्त होना चाहिये । तो देवगण, महानागगण, राक्षसगण दानव गण, राजागण, और स्त्रीगण आदि नित्य सभी वशीभूत होतेहैं । मुण्डमाला में कहा है, हे देवि ! पृथ्वी में तीन प्रकार स्वयम्भू कुसुम उत्पन्न होता है । प्रथम सोलह वर्ष पर्यन्त अनूढा । इसके द्वारा उत्तमा सिद्धि लाभ होती है । दूसरा वलात्कार सहित ऊढा; यह मध्यम सिद्धि विधान करता है । तीसरा

तन्त्रचूड़ामणौ च ।

शृणु वत्स ! कुलद्रव्यमाहात्म्यं परमं शुभम् । यत् प्राप्य कुलदेवेन लभ्यते वाञ्छितं महत् ॥ अमावस्यातिथौ देवी स्वयम्भू मध्यवर्त्तिनी। अमृतं वर्षते सा तु त्रिदिनं पृथिवीतले तस्यां तिथौ कुलदेवि ! यदि त्रियां समुच्चरेत् । पूर्वसेवा भवत्यत्र प्रत्युच्चारणमेव हि ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलं वीक्ष्य जपं कुरु । दृष्टया च अमृतं देवगलितं परिगृह्य च ॥ साधयेत् साधनं सर्वं कुलाचारस्य सिद्धये । शिवहीना यदा शक्तिः सर्गादौ वर्षते यतः ॥ तदेव परमं द्रव्यं स्वयम्भूकुसुमाख्यकम् । स्वयम्भूकुसुमं द्रव्यं त्रैलोक्ये चापि दुर्लभम् ॥ कचिद्गन्धर्वराजेन लभ्यते वा नराधिपैः । यदि तल्लभ्यते देव ! लाक्षारससमन्वितम् कस्तूरीकुंकुमाक्तञ्च वटीं कृत्वा सुगोपयेत् । मन्त्रराजं समालिख्य पूजयेद् यदि साधकः ॥ येतेनाक्षतयोगेन मधुमतीसिद्धमानयेत् । सुप्तादिदोषयुक्ता ये मन्त्रा वि-

---

रजो योग से उत्पन्न, इस के द्वारा अधम सिद्धि लाभ होती हैं । तन्त्र चूडामणि में कहा है, हे वत्स ! कुल द्रव्य का माहात्म्य श्रवण करो । जिस के प्राप्त होने से कुल देव महत् वांछित लाभ करते हैं। देवी अमावस्यातिथि में स्वयंभू मध्य वर्त्तिनी होकर तीनदिन पृथ्वी तल में अमृत की वर्षा करतीं हैं। दृष्टि द्वारा वहदेव गलित अमृतग्रहण करके कुलाचार सिद्धि के लिये समस्त साधन का साधन करे । शक्ति शिव हीनहोकर सृष्टि की आदि में वर्षण करतीं हैं, इसी लिये उस परम द्रव्य को स्वयंभू कुसुम कहते हैं । यह स्वयभू कुसुम त्रिभुवन में दुर्लभ है । गंधर्वराज अथवा राजा लोग कदाचितही उस को प्राप्त होते हैं । हे देव ! यदि उसको लाभ कियाजाय, तो उसकी लाक्षारस, कस्तूरी और कुकुम में संयुक्त बटी करके अतीव गुप्तभाव से रक्षा करे । साधक मन्त्र राज लिखकर यदि इसकी पूजा करता है, तो देवी मधुमती सिद्धि समाधान करती हैं । अधिक क्या, जो सम्पूर्ण मंत्र और विद्या

द्याश्च कीर्त्तिताः ॥ प्रबुद्धास्तत्प्रयोगेण यावत् सा पुनरागता। ततः प्रयोगं विद्यानां मन्त्रादीनाञ्च कारयेत् ॥ एवं प्रबुद्धा भवति नैव तादृक् कदाचन । एतत् त्रयाणां मध्ये तु स्वयम्भू कुसुमं महत् ॥

श्रीक्रमेऽपि ।

कस्तूरीकुंकुमं रक्तचन्दनागुरुकादिकम् । नानासुगंधिकं दत्वा एकीकृत्य तु साधकः ॥ एतेनाक्षतयोगेन पूजयेत् परमेश्वरीम् । स्वयम्भू कुसुमैः पूजां प्रत्यहं यः समाचरेत् । तस्य मधुमतीसिद्धिरधीना देवि ! जायते ॥

अथ दूतीयजनविधिः ।

याममात्रगते रात्रौ कुलगेहगतः पुमान् ताम्बूलपूरितमुखो धूपामोदसुगन्धिभिः रक्तचन्दनलिप्ताङ्गो रक्तमाल्यानुलेपितः । रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारुणगृहेस्थितः ॥ रक्तमाल्येन संवीतो रक्तपुष्पविभूषितः । पञ्चीकरणसङ्केतैः पूजयेत् कुलनायिकाम् ॥

सुमादि दोष युक्त कहकर परिगणित हैं, उस प्रयोग से वह सम्पूर्ण प्रबुद्ध होती हैं । इसी लिये विद्या और मंत्र सबका प्रयोग करना चाहिये । तो वह समस्त इसी प्रकार प्रबुद्ध होते हैं, इनतीनों में स्वयभू कुसुमही प्रधानहै। श्री क्रममें भी कहा है, कस्तूरी, कुंकुम, लालचंदन, अगर इत्यादि अनेक प्रकार के सुगंधिक एकी कृत और दान करके अक्षत योग में परमेश्वरीकी पूजा करे, जो व्यक्ति प्रति दिन स्वयंभू कुसुम द्वारा पूजा करता है मधुमती सिद्धि उस के आधीन होती हैं ॥

इस के उपरान्त दूतीपूजादि लिखते हैं । रात्रि के याममात्र बीतनेपर धूपामेद सुगन्धि सहित ताम्बूल मुखमें पूर्ण करके रक्तचन्दन से लिप्तांग, रक्त माल्य से अनुलेपित रक्त पुष्प से अलंकृत, और रक्त वस्त्रसे आवृत होकर, कुलगृह में गमन करके लाक्षारुण गृह में अवस्थान पूर्वक पंचीकरण संकेत द्वारा कुलनायककी पूजा करे । कुलनायिका, यथा, उस में ही कहा है ।

कुलनायिका यथा । तदुक्तं तत्रैव ।

नटी कपालिनी वेश्या पुक्कसी नापिताङ्गना । रजकी रञ्जकी चैव सैरिन्ध्री च सुभाषिणी ॥ घटिका घटिका चैव तथा गोपालकन्यका । विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव वराङ्गनाः ॥ गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः। संगोपनरताः प्राय स्तरुण्यः सर्वसिद्धिदाः ॥ एवं यथोदितां प्रसूनतूलिकोपरि संस्थाप्य पूजामारभेत् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

अद्वैताचारसम्पन्नां घृणालज्जाविवर्जिताम् । सदनुष्ठाननिरतां सात्विकीं भक्तिसंयुताम् ॥ देवताभावसंयुक्तां गुरुभक्तां दृढव्रताम् । ईर्षालस्येन रहितां समयां भक्तवत्सलाम् ॥ चातुर्य्यौदार्य्यदाक्षिण्यकरुणादिकलान्विताम् । रूपयौवनसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम् ॥ सदा परिगृहीतां वा यद्वा सङ्केतमागताम् । अथवा तत्क्षणायातां मदनानलता-

---

नटी, कपालिनी, वेश्या पुक्सी, नापितांगना, रजकी रञ्जकी, सैरिन्ध्री, घटिका और गोपाल कन्या इन सब में ही भलीभांति, वैदग्ध्य युक्त, वरांगना, गुरु भक्त, देवभक्त, घृणा लज्जा रहित, संगोपनरत और प्राय, सबही तरुणी और सबही सर्व सिद्धिप्रद होती हैं । इस प्रकार प्रसून तूलिका के ऊपर स्थापन करके यथोक्त विधान से पूजा का आरम्भ करे । उस में ही कहा है । यथा, अद्वैता चारयुक्त घृणा लज्जा रहित सदनुष्ठान निरत, सत्वगुणान्वित, भक्तिसम्पन्न, देवता के प्रति सद्भाव शालिनी, गुरुभक्ति परायण दृढव्रत, ईर्षारहित, आलस्य विहीन भक्तवत्सल, चातुर्य्य (चतुरता) औदार्य (उदारता) दाक्षिण्य, और कारुण्यादि सम्पन्न, रूप यौवन विशिष्ट शील सौभाग्य शालिनी, सर्वदा परिगृहीत अथवा सकेत प्राप्त (मार्ग में प्राप्त हुई) किम्बा तत्क्षणात् उपस्थिता (तत्काल प्राप्तहुई) कामानल-सन्तापित,

पिताम् ॥ विलिप्तां रक्तगन्धेन रक्ताम्बर विभूषिताम् । सुगन्धिबद्धकुसुमां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ स्वधूपधूपितां तन्वीं दूतीकर्मणि योजयेत् । एवं भूतां यजेत्ताञ्च प्रसूनतूलिकोपरि ॥ व्यङ्गाङ्गीं विकृताङ्गीं वा सविकल्पकमानसाम् । वर्षीयसीं पापरतां क्रूरामत्यन्तलोलुपाम् ॥ अभक्तां मनसा दीनां वर्जयेत् साधकोत्तमः । समानीय कुलं सोऽपि गुरुभक्तमनन्तरम् ॥ स्नातं शुद्धदुकूलादि अनुलेपनशोभितम् स्वलंकृतं गतं श्रान्तिं स्वागतं चासनं तथा ॥ निवेश्य तूलिकामध्ये प्रसूनेन सुगन्धिना । चन्दनागुरुकर्पूर कस्तूरी कुंकुमादिभिः ॥ समाकीर्णे स्वपर्यङ्के पूजयेत् कुलनायिकाम् । अङ्गन्यासकरन्यासौ प्राणायामस्ततः परम् ॥ विधाय मातृका न्यासं कुलाङ्गेऽपि प्रविन्यसेत् । ततः पूर्वोक्तविधिना घटार्घ्य स्थापनादिकम् । विधाय तद्वराङ्गेषु पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥

रक्तगन्ध से विलिप्त रक्त वस्त्र से विभूषित, सुगन्धित कुसुम बद्ध, सर्वाभरण-सुशोभित स्वधूपधूपित, कृशतनु, ऐसी स्त्रीको दूती कार्य्यमें नियोजित और प्रसून तूलिकाके ऊपर पूजा करे । जिसका अंगविकृत, वाव्यागभावयुक्त जिसका मन द्वैत भाव युक्त, जिसको लोभ अतिप्रबल, जिसकी प्रवृत्ति पापमें आसक्त जिस के हृदय में कुटिलता, जिस की भक्ति, जिसकामन अति हीन और जिसकी अवस्था अधिक हुई है, इस प्रकार की रमणी को वर्जन करे । अनन्तर गुरु भक्त कुल आनयन होकर श्रमदूर करने से उसको स्वागत पूर्वक बैठाले । इस के उपरान्त तूलिका में निवेशित करके सुगन्धित, कुसुम, चन्दन, अगर, कर्पूर कस्तूरी, और कुंकुमादि द्वारा समाकीर्ण पर्यङ्क में कुलनायक की पूजा में प्रवृत्त होवे । प्रथम अङ्गन्यास और करन्यास, फिर प्राणायाम, तिसके पीछे मातृकान्यास, विधान करके कुलाङ्ग में भी न्यास करे, अनन्तर पूर्वोक्त विधान से घट अर्घ्य स्थापनादि विधान करके तिसके वराङ्ग में परमेश्वरी की पूजा करनी चाहिये । उसमें

तदुक्तं तत्रैव ।

पूजयेदपि पल्यङ्कमध्ये मण्डूकमग्रतः । कालाग्निरुद्रमाधारशक्तिं कूर्ममनन्तकम् ॥ वराहं पृथिवीं कन्दं मृणालं केशराण्यपि । पद्मञ्च कर्णिकाञ्चैव मण्डलञ्च समर्चयेत् ॥ धर्मं वैराग्यमैश्वर्यं ज्ञानमज्ञानमेव च । अनैश्वर्यमवैराग्यमधर्ममपि पूजयेत् ॥ आत्मतत्त्वं ज्ञानतत्त्वं परतत्त्वञ्च पूजयेत् । गन्धपुष्पाक्षतादीनि दत्त्वा तत्रैव धूपयेत् ॥ तस्योपरि कुलं स्थाप्यं पूजानुष्ठानमेव च । पूजयेच्च ततस्तस्यां पंचकामान् समाहितः ॥ ह्रींचैव कामबीजं क्लीं कन्दर्पो हुं च मन्मथः । ठ्लुं मकरकेतनश्चैव स्त्रीं चैव हि मनोभवः ॥ ओंकारादिनमोऽन्तंच कुसुमैर्गन्धसंयुतैः । अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु पूजयेत् कुलनायकः ॥ वटुकं भैरवंचैव दुर्गांच क्षेत्रपालकम् ॥

तन्त्रान्तरे च ।

वाग्भवं कामबीजंच स्त्रीबीजं कामराजकम् । हसल्ले मात्मकं दत्वा आधारशक्तिमुच्चरेत् ॥ श्रीपादुकां ततो दत्वा पू-

---

ही कहा है, *यथा*—पल्यङ्क में प्रथम मण्डूक की फिर कालाग्नि, रुद्र, आधार शक्ति, कूर्म, अनन्त, वराह, पृथिवी कन्द, मृणाल, केशर समूह, पद्मकर्णिका और मण्डल इनसबकी अर्चना एवं धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान अज्ञान, अनैश्वर्य, अवैराग्य और अधर्म इनकी पूजा करै । फिर आत्मतत्त्व, ज्ञानतत्त्व और परतत्त्वकी पूजा करके गन्ध, पुष्प और अक्षतादि दान करके उससेही धूपित करै, अनन्तर उसके ऊपर कुल और पूजानुष्ठान करके समाहित हो उसमें पञ्चकामकी अर्चना करनी चाहिये । ह्रीं क्लीं इत्यादि मंत्र से गन्ध पुष्पादि द्वारा पूजा करके, चारोंओर वटुक, भैरव, दुर्गा, और क्षेत्रपालादि की पूजा करै । तन्त्रान्तर में भी कहा है-प्रथम "ऐं क्लीं" इत्यादि प्रयोग करके आधार शक्ति का उच्चारण और फिर श्रीपादुका पद प्रयोग करके "पूज-

जयामि वदेत्ततः। अनेन मनुना तस्या ललाटे सुमनोहरम्॥ त्रिकोण तत्र संलिख्य सिन्दूराद्यैर्वरानने ! ॥

उत्तरतन्त्रे च।

तस्या मूर्ध्नि त्रिकोणंच यन्त्रमालिख्य साधकः। महाप्रेतासनं मध्ये अधो वालांच पूजयेत् ॥ मौली गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके। दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम् ॥ स्तनद्वये वसन्तंच मदनंच प्रपूजयेत्। मुखे सुधाकरं पृष्ठे ग्लुं वीजानन्तरोदिते ॥ दक्षिणांशं समाश्रित्य आशिरश्चरणावधि। पूज्याः कामकलास्तस्याः साधकाङ्क्षुसाधकः ॥ श्रद्धाप्रीतीरतिश्चैव भूतिः कान्तिर्मनोरमा। विमला मोदिनी घोरा मदनोत्पादिनी मदा ॥ मोहिनी दीपनी चैव शोधिनी शाङ्करी तथा ॥ रञ्जनी चैव मदना कला स्वरविभूषिता ॥ ततश्चन्द्रकलाः पूज्याः आशिरश्चरणावधि। पृष्ठा वशा च सुमना रतिः प्रीतिर्धृतिस्तथा ॥ सिद्धिः सौम्या

यामि" कहकर। इस मंत्र से उसके ललाट में सिन्दूरादि द्वारा सुमनोहर त्रिकोण लिखकर इत्यादि। उत्तर तंत्र में भी कहा है. तिसके मस्तक में त्रिकोण यन्त्र लिखकर मध्य में प्रेतासन के अधोभाग में बाला के मौलि में गणेश के केशाग्र में कुलाध्यक्ष के ललाट में दुर्गा के दोनों भौंओं में लक्ष्मी की जिह्वा में सरस्वती के दोनों स्तनों में वसन्त के और मदन के मुख में पूजा करै. और पृष्ठ में "ग्लूं" बीजका उच्चारण करना चाहिये। अनन्तर इसके दक्षिणांशको आश्रय करके चरणसे मस्तक पर्यन्त कामकला सबकी पूजा करै, श्रद्धा, प्रीति, रति, भूति, कान्ति विमला, मोदिनी, घोरा, मदनोत्पादिनी, मदा, मोहिनी, दीपनी, शोधनी, शङ्करी, रञ्जनी और मदना इनका नाम कहा है। चरणसे मस्तक पर्यन्त, उन उन चन्द्रकला कीभी पूजा करनी चाहिये, पृष्ठा, वशा, सुमना, रति.प्रीति, धृति, सिद्धि, सौम्या, मरीचि

मरीचिश्च तथा चैवांशुमालिनी । मदिरा शशिनीच्छाय तथा सम्पूर्णमण्डला ॥ तुष्टिश्च अमृता चैव पूज्याश्चन्द्रकला इमाः । स्वरैरेव प्रपूज्या हि सर्वकार्य्यार्थसिद्धये ॥

ललिताव्यासिदीपिकायान्तु ।

भगे तदीये विद्यन्ते नाड्यस्त्रिस्रः प्रधानिकाः । एका तु नाड़िका सौरी चान्द्री चान्या च नाड़िका ॥ आग्नेयी चापरा ज्ञेया पूजयेत्ताञ्च साधकः । अम्बु स्रवति चान्द्री हि पुष्पं स्रवति भानवी ॥ वीजं स्रवति चाग्नेयी तास्तु नामभिरर्चयेत् वाग्भवाद्यैर्नमोयुक्तैः पूजयेत् सुप्रसन्नधीः ॥

उत्तरतन्त्रेऽपि ।

पूजयेन्मदनागारे रक्तगन्धेन चर्च्चिते । भगमालामनुं प्रोच्य त्रितारानन्तरं तथा ॥ ऐं ह्रीं श्रीं हुं ब्लुं क्लिन्ने ततः परम् । सर्वाणीति भगानीति वशमानय मे ततः । स्त्रीं ह्रीं क्लीं ब्लीं क्लीं भगमालिन्यै नमः स्वाहा ॥ पूजयित्वा तु तच्चक्रं गन्धैः पुष्पै स्तथाक्षतैः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैः कुलसाधकः ॥

अंशुमालिनी, मदिरा, शशिनी, छाया, सम्पूर्ण मण्डला तुष्टि, अमृता यह चन्द्रकला हैं । सर्व कार्य्यार्थ सिद्धि के लिये, स्वर द्वारा इनकी पूजा करें । ललिता व्यासिदीपिका में कहा है, उनके वरांग में तीन प्रधान नाड़ी है पहली का नाम सौरी, दूसरी का नाम चान्द्री, और तीसरी का नाम आग्नेयी है। साधक उसकी पूजा करे, चान्द्री, नाड़ी जल, सौरी पुष्प और आग्नेयी वीज श्रवण करती हैं, प्रत्येक का नाम उच्चारण करके पूजा करे । प्रसन्नचित्त से वाग्वीजादि, नमः शब्द की सहायता से पूजा करनी चाहिये । उत्तर तंत्र में भी कहा है, तिसके वरांग को रक्त, गन्ध द्वारा चर्चित करके, उसमें भगमाला उच्चारण पूर्वक ' ऐं ह्रीं ' इत्यादि मंत्र प्रयोग के सहित पूजा करें। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और विविध नैवेद्य द्वारा तिस के

विधाय नन्दितां तांच तदुच्छिष्टं स्वयं हरेत् । अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिरस्तदनन्तरम् ॥ मूलमन्त्रं ततः ओं ह्रीं नमः शिवाय ततः परम् । यजेत्तु तत्पुरा घोरे सद्योजातेश्वरानपि॥ निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या च तदनन्तरम् । शान्तिश्च शान्त्यतीता च षडङ्गं तदनन्तरम् ॥ समग्रमविद्यामुच्चार्य त्रिकोणंचैव पूजयेत् ।

अन्यत्रापि ।

इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासोऽपि नैव च ॥
अथैनां विधिना षोड़शोपचारैः इष्टदेवीं प्रपूजयेत् ।

तदुक्तं उत्तरतन्त्रे ।

अवधूतेश्वरीं कुब्जां कामाख्यां समयामपि। राजेश्वरीं कालिकाञ्च तथा दिक्कर वासिनीम् ॥ महाचण्डेश्वरीं तारां पूजयेत्तत्र साधकः । तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्वा ताम्बूलमुत्तमम् ॥ शिवञ्च तत्र निःक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया ।

चक्रकी पूजा और उसको आनन्दिता करके, उसकी उच्छिष्ट स्वयं भोजन करे । तदनन्तर गंध और पुष्पादि द्वारा अपना मस्तक अर्चित करे । अनन्तर मूल मंत्र और 'ओं ह्रीं नमः शिवाय' कहकर सद्योजातेश्वर गणों की भी पूजा करे । फिर निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शांति, शान्तातीता, षडङ्ग और त्रिकोण, इन सबकी पूजा करे । अन्यत्र भी कहा है कि, इस में आवाहन और जीवन्यासभी नहीं है । अनन्तर यथा विधि षोडशउपचार द्वारा इष्टदेवी की पूजा करनी चाहिये । उत्तर तंत्र में भी कहा है, अवधूतेश्वरी कुब्जा, कामाख्या, समया, राजेश्वरी, कालिकादिकरवासिनी, महाचण्डेश्वरी, और तारा, इनकी पूजा करनी चाहिये । फिर उनकी आज्ञा ग्रहण और श्रेष्ठ ताम्बूल दान करके उसमें गजतुण्डाख्य मुद्रा द्वारा शिव निक्षेप करे । गज

गजतुण्डा मुद्रा यथा ।

अंगुष्ठानामिकामध्या योन्याकारेण योजयेत् । गजतुण्डाकृतिर्देवीम् इत्याह भगवान् हरः ॥

अत्राप्यारम्भे त्यागे च धर्माधर्महरीत्यादि मन्त्रद्वयं गुह्यवचनान्तरदर्शनात् तद्यथा ।

शिवशक्तिसमायोगो यत्र यत्र प्रजायते । तत्र तत्र स्वयं ग्राह्यो धर्माधर्मादिको मनुरिति ॥

ततोऽष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा अक्षुब्धो जपेत् ।

तदुक्तम् उत्तरतन्त्रे ।

प्रजपेत् क्षोभरहितश्चाष्टोत्तरसहस्रकम् । शतमष्टोत्तरं वापि अक्षुब्धस्थिरमानसः ॥ जपान्ते तज्जपं देव्यै समर्प्य तदनन्तरम् । क्षुब्धां मनोभवसुखैः पूजयेत् सुचिरां रसात् ॥ गलच्चक्रदलं तस्माद् गृहीत्वा कुण्डगोलकं । अर्घ्यस्थापनयन्त्राङ्कं चन्दनादिषु योजयेत् ॥

तुण्डा मुद्रा । यथा—अंगुष्ठ, अनामिका और मध्यमा योनि के आकार में योजना करे । तो गजतुण्डा कृति होती है । भगवान शिवने देवी से इस प्रकार कहा है, इस स्थान में आरम्भ और त्याग के समय धर्माधर्मरूप हवि द्वारा, इत्यादि मंत्र प्रयोग करना चाहिये । गृह्य वचनान्तर देखकरही इस प्रकार कहाजाता है । यथा—जिस जिस स्थल में शिवशक्ति का समायोग हो उस उस स्थल मेंही धर्माधर्मादि मंत्रका प्रयोग करे । अनन्तर क्षोभ रहित होकर अष्टोत्तर सहस्र वा अष्टोत्तर शत जप करे । उत्तर तंत्र में कहा है कि क्षोभ रहित होकर अविकृत और स्थिर चित्त से अष्टोत्तर सहस्र वा अष्टोत्तर शत जप करना चाहिये । जपके अन्त में वह जप देवीको समर्पण करके फिर मनोभव सुख के आवेश से क्षुब्धभावा कुल नासिकाकी पूजामें प्रवृत्त होवे । तिससे गलच्चक दल और कुंडगोलक ग्रहण करके चन्दनादि में अर्घ्य स्थापन यंत्राङ्क योजना करे । ज्ञानार्णव में विशेष निर्देश किया है।

ज्ञानार्णवे विशेषो यथा ।

शिवशक्तिसमायोगो योग एव न संशयः ॥ चीत्कारो यन्त्ररूपस्तु वचनं स्तवनं भवेत् ॥ आलिङ्गनन्तु कस्तूरी कर्पूरं चुम्बनं भवेत् । नखदन्तक्षतान्यत्र पुष्पाणि विविधानि च ॥ मैथुनं तर्पणं विद्धि वीर्य्यपातौ विसर्जनम् । इति ।

कुलार्णवे च ।

आलिङ्गनं चुम्बनं च स्तनयोर्मर्दनं ततः । दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकाशं लिङ्गघर्षणम् ॥ प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नवपुष्पाणि वर्जयेत् ॥

रुद्रयामलेऽपि ।

संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम् । कुलामृतं प्रयत्नेन गृह्णीयाद् दुर्लभं नरः ॥ तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत्त्रिपुरां पराम् । सान्निध्यात् तत्क्षणाद् याति प्रीता सिद्धिं प्रयच्छति ॥ समस्तदेवतानाञ्च तर्पणंच सदामृतैः गुरूणां साधकानांच सर्वेषां तर्पणं भवेत् ॥ तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तु-

---

यथा—शिव शक्ति का समायोगही योगहै इसमें संशय नहीं । शीतकार साक्षात् यंत्र वचन स्तव कस्तूरी आलिंगन, कपूर, चुंबन, विविध पुष्प नखदन्त क्षत, एवं तर्पण, मैथुन, और वीर्य पात विसर्जन, जाने । कुलार्णव में कहा है, आलिंगन, दर्शन, स्पर्शन, इत्यादि नव पुष्पको त्याग करना चाहिये । रुद्रयामल में कहा है- संयोगसेही परमानन्द स्वरूप सौख्य उत्पन्न होता है। प्रयत्न सहित कुलामृत ग्रहण करे । क्योंकि वह सहजमें प्राप्त नहीं होसक्ता। उसी दिव्य अमृत से देवी त्रिपुराका तर्पण करे । तो वह व्यक्ति देवी के सानिध्य से तत्काल सिद्धि लाभ करता है । अधिक क्या इस अमृत के द्वारा समस्त देवता, गुरुवर्ग, और साधकगणों का सर्वदा तर्पण होता है । उस अमृतसेही सब संतुष्ट होते हैं । साधक जो कामना करे वहीतत्काल

ष्टा भवन्ति च। यत्कामं कुरुते मन्त्री तत्क्षणादेव सिध्यति।
समयार्णवे च।
कुलामृतं समादाय ततोऽर्घ्ये वा क्षिपेत् बुधः॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते
श्यामारहस्ये कुसुमोत्पादनंनाम
नवमं परिच्छेदः।

अथ दशमः परिच्छेदः।

अथ सामान्यसाधनम्। तदुक्तं कालीतन्त्रे।

अथोच्यते कालिकायाः सामान्यं साधनं प्रिये!। कृतेन येन विधिना पलायन्ते महापदः॥ शिवाबलिश्च दातव्यः सर्वसिद्धिमभीप्सुभिः। महोत्पाते महायोगे महादोषे महाग्रहे॥ महापदि महायुद्धे महाविग्रहसंकुले। महादारिद्र्यशमने म-

---

सिद्ध करसक्ता है। समयार्णव में भी कहा है—कुलामृत ग्रहण अर्घ्य निक्षेप करै॥

इतिश्री महामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित
श्यामारहस्येपं० हरिशङ्करजीशास्त्रीकृतभाषाटीकासहितकुसुमोत्पाद
नामनवमपरिच्छेदसमाप्त॥ ९॥

अब सामान्य साधन कहाजाता है। कालीतंत्र में कहा है, हे प्रिये! अब कालिका का सामान्य साधन कहता हूं। इसका विधि पूर्वक अनुष्ठान करने से समस्त महा आपदा पलायन करतीं हैं संपूर्ण सिद्धि की कामना करनेवाले व्यक्तिगण शिवा बलिप्रदान करैं। महोत्पात, महायोग, महादोष, महाग्रह, महाआपद, महायुद्ध, महाविग्रह, महादारिद्रता, महा दुःस्वप्न महा-

हादुःस्वप्नदर्शने ॥ महाशान्तौ महारण्ये महास्वस्त्ययने तथा । घोराभिचारशमने घोरोपद्रवनाशने ॥ कूटयुद्धादिशमने कूटशत्रुनिवारणे । राजादिभयशान्त्यर्थं राजक्रोधोपशान्तये ॥ न ददाति वलिं यस्तु शिवायाः शिवतृप्तये । स पापिष्ठो नाधिकारी कुलदेव्याः प्रपूजने ॥ कुलीनं नावमन्येत कुलजां परिपूजयेत् । कुलजेषु प्रसन्नेषु कालिकासन्निधिर्भवेत् ॥ अहो धन्यवतां लोके जानाति कुलदर्शनम् । तेषां मध्ये च यः कोऽपि कुलदेवीं समर्चयेत् ॥ कुलाचारविहीनो यः पूजयेत् कालिकां नरः । स स्वर्गमोक्षभागी च नस्यात् सत्यं न संशयः ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं वलं पुष्टिर्महद्यशः । कविता भक्तिमुक्ती च कालिकापदपूजनात् ॥

कुलचूडामणौ ।

कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः । योगिनीपूजनं

शान्ति, महारण्य (महावन) महास्वस्तयन, घार अभिचार, घोर उपद्रव कूटयुद्धादि, कूटचक्र, राजादिभय, वा राजादि का क्रोध, इन सबकी शान्ति और निराकरण के लिये शिवावलि देनी चाहिये । जो व्यक्ति शिवकी तृप्ति के लिये शिवा बलिप्रदान नहीं करते, उन पापियों का कुलदेवता की पूजा में अधिकार नहीं है । कुलीन का अपमान न करे, कुलजा की पूजा करें । कुलजागणों के प्रसन्न होने से देवी कालिका का सान्निध्य लाभ होता है । अहो ! जो व्यक्ति कुल दर्शन से अवगत है । उनकी संसार में धन्यवान पुरुषों में गणना होती है । और उन में जो कोई देवी की अर्चना करता है, वही श्रेष्ठ है । कुलाचार विहीन होकर, कालिका की पूजा न करने से स्वर्ग और मोक्ष के लाभ से वञ्चित होना होता है । मैं सत्यही कहता हू. इस में कोई संदेह नहीं है. कालिका की पद पूजा करने से, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य बल, पुष्टि, महायश, कविता, भोग और मोक्ष लाभ होती हैं । कुलचूडामणि में कहा है । कुलवार की कुलाष्टमी

तत्र प्रधानं कुलपूजनम् ॥ यथा विष्णु तिथौ विष्णुः पूजितो वांछितप्रदः । तथा कुल तिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी ॥

अथ कुलवारादयो यथा तदुक्तं यामले ।

रविश्चन्द्रो गुरुः सौरिश्चत्वारश्च कुला मताः ॥ भौमशुक्रौ कुलाख्यौ तु बुधवारः कुलाकुलः । द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम् ॥ विषमाश्चाकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः । वारुणाद्रीभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम् ॥ कुलानि समधिष्ठानि शेषभान्यकुलानि च । तिथिवारे च नक्षत्रे अकुलस्थायिनो जनाः ॥ कुलाख्ये जापको नित्यं साम्यंचैव कुलाकुलम् ॥ एवं कुलवारादिकं ज्ञात्वा साधकः कर्म कुर्य्यात् ।

अथशिवावलिप्रकारः तदुक्तं कुळचूडामणौ ।

विल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः । मांसप्रधानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ॥ कालिकालीति वक्तव्ये

विशेष करके चतुर्दशी में योगिनी की पूजा ही प्रधान कुळ पूजा है । विष्णु तिथिमें विष्णु की पूजा करने से यह जिस प्रकार वांछितप्रदान करते हैं। कुल तिथि में दुर्गा की पूजा करने से, वह उसी प्रकार वरदायिनी होती हैं। कुळवारादि यथा—यामळ में कहा है- रवि, चन्द्र, गुरु, सौरि, यह चार वार कुळ वार कहकर परिगणित हैं, भौम और शुक्र वार को भी कुळवार कहा जाता है । बुधवार कुळाकुळ विख्यात है । द्वितीया, दशमी, षष्ठि यह कई तिथि भी कुळाकुळ शब्द में निर्दिष्ट हैं । सम्पूर्ण शेष तिथिही कुळतिथि हैं इन में जो विषम हैं, जिसप्रकार तृतीया और पंचमी, वह सबही अकुल है, वारुण, अभिजित्, आर्द्रा, मूल इन सवनक्षत्रों को कुळाकुळ कहते हैं, साधक इस प्रकार कुळवारादि से अवगत होकर, कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होवे ॥

अब शिवाबलिप्रकार कहा जाता है । कुलचूड़ामणि में कहा है, यथा—बेल की जड़, प्रान्त का श्मशान, इन सब स्थलों में सन्ध्याकाल के समय मांस प्रधान नैवेद्य निवेदन करनी चाहिये ' उस समय ' कालि कालि '

तत्रोमा शिवरूपिणी । पशुरूपा समायाति परिवारगणैः सह ॥ भुक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सुस्वरम् । तदैव मङ्गलं तस्य नान्यथा कुलदूषणम् ॥ अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेत् शिवाम् । नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ॥ तथैव कुलदेवीनां नित्यता कुलपूजने । पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने ॥ एकया भुज्यते यत्र शिवयादेव भैरव ! । शिवाभावेन तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम् ॥ जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानि च । गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने ॥ एकया भुज्यते यत्र शिवया देव भैरव ! । वांछनाद्द्विगुणं कर्म सगुणं साधयेद्यतः ॥ तेन सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं पूजनं महत् । राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके ॥ शुभाशुभानि कार्य्याणि विचिन्त्य वलिमाहरेत् । गृह्ण देवि ! महाभागे ! शिवे कालाग्निरूपिणि ! ॥ शुभाशुभफलं व्यक्तं

इसप्रकार वाक्य प्रयोग करने से, शिव रूपिणी उमा पशुरूप से परिवार गणों के सहित वहां समागत होती हैं । वह तत्समस्त भक्षण करके उनके ऐशान दिक में मुख उत्तोलन पूर्वक सुस्वर में शब्द करने से मंगल है, नहीं तो कुलदूषण है सदा अन्नदान द्वारा अवश्य शिवाका सन्तोष विधान करै । नित्यश्राद्ध, सन्ध्यावंदन, पितृतर्पण, कुल देवी गणों की पूजा यह सब कार्य नित्य साधन करै । जो व्यक्ति निर्ज्जन में पशुरूपा देवी शिवा की अर्चना नहीं करता, और जिस स्थल में एकमात्र शिवा भक्षण करै, शिवाके अभाव में उसका सम्पूर्ण विनष्ट होता है, इस में कोई सन्देह नहीं । अधिक क्या शिवा उस का जप, पूजा, और विधान एवं सुकृति इत्यादि जो कुछ है । वह सम्पूर्ण ही ग्रहण और शाप प्रदान करके निर्ज्जन में रोदन करती हैं । इस लिये सर्व प्रयत्न से शिवा की पूजा करै । राजादि का भय उपस्थित और देशान्तर भय संघटित होने से शुभाशुभ समस्त कार्य की भली भांति से चिन्ता करके, बलि आहरण करै । हे शिवे ! तुम्हीं कालाग्नि स्वरूपिणी

गृहि गृह्न वलिं तव । एवमुच्चार्य्य दातव्यो वलिः कुलजन-प्रियः ॥ यदि न गृह्यते वत्स ! तदा नैव शुभं भवेत् । शुभं यदि भवेत्तस्य भुज्यते तदशेषतः ॥ एवं ज्ञात्वा महादेव ! शांतिस्वस्त्ययनं चरेत् । कुलाचारं दक्षिणाख्यं कथितं तव सुव्रतम् ॥ न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः । निर्जने चैव कर्त्तव्यं न चैव जनसन्निधौ ॥ न पितुः सन्निधाने वा न मातुः सुतसन्निधौ । किं वा पक्षिपतङ्गादिदर्शने नैव कारयेत् ॥ पाताले मण्डले वापि गह्वरे वा सुयन्त्रिते । कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुले जपम् ॥ कुरुं कुलपतिश्चापि कुलमालां कुलाकुलम् । कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत् ॥ प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् प्रकाशाद् वन्धनादिकम् प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात् प्रकाशादेव हिंसनम् ॥ प्रकाशान्मृ-

---

तुम्हीं महाभाग, और तुम्हीं स्वप्रकाश और दिव्य लीलाविग्रह मयी हो । तुम यह वलिग्रहण करो, और शुभाशुभ फल व्यक्त करके कहो । इस प्रकार उच्चारण करके, वलिप्रदान करना चाहिये, हे वत्स ! शिवा यदि वलि ग्रहण न करैं तो शुभ नहीं होता । और यदि वह सम्पूर्ण भक्षण करैं, तो वह मंगल होता है, हे महादेव ! इस प्रकार अवगत होकर, शान्ति स्वस्त्ययन करै । तुम्हारे निकट यह दक्षिणाख्य कुलाचार कीर्त्तन किया । अपनी हितकामना की अभिलाष होने से किसी से भी इस को न कहै । निर्ज्जन ही में विधान करै । मनुष्य के समीप न करै । अधिक क्या पिता के समीप भी न करै । माता के और पुत्र के समीप भी न करै । अथवा पक्षी और पतंगादि के साक्षात में भी इस को न करै । कुल पुष्प कुलपूजा कुल द्रव्य, कुलजप, गुरु, कुलपति, कुलमाला, कुलाकुल, कुलचक्र, कुलध्यान यह समस्त सर्वथा प्रकाश न करै । प्रकाश करने से सिद्धि में विघ्न होताहै वन्धनादि संघटित होता है, मंत्र विनष्ट होता है । हिंसा आपतित होती है, और मृत्यु लाभ होती है । इस लिये किसी प्रकार से प्रकाश न करै ।

स्थुलाभः स्यात् न प्रकाश्यं कदाचन । पूजाकाले च देवेशि ! यदि कोऽप्यत्र गच्छति ॥ दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथान्तरम् । प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात् तत्प्रकाशेन दूषणम् ॥ गोपनाद्यदि व्यक्तः स्यात् न गुप्तिः साभिधीयते । कदाचिद ङ्गहानिस्तु न च व्यक्तिः कदाचन ॥

अथ समयाचारः । तदुक्तं तत्रैव ।

शृणु पुत्र ! रहस्यं मे समयाचारसम्भवम् । येन हीना न सिध्यन्ति जन्मकोटिसहस्रशः ॥ मानवः कुलशास्त्राणां कुल· चर्यानुसारिणाम् । उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ॥ परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा । पर्वते विपिने चैव निर्जने शून्यमण्डपे ॥ चतुष्पथे कलामध्ये यदि दैवाद् गति- र्भवेत् । चणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद् यथासुखम् ॥

हे देवेशि ! यदि कोई पूजा काल में तहांगमन करै तो उसको वैष्णवी मुद्रा और वैष्णवी न्यास दिखलावे । इस प्रकार प्रकाश वशसे यदि गुप्त किया जाये, तो उस में कोई दोष का विषय नहीं होसकता । और गोपन करने से, यदि प्रकाश होजाय, तो गोपन न करै । कदाचित् अंग हानि होने पर भी प्रकाश न करै ॥

अब समयाचार लिखते हैं । कुलचूडामणि में कहा है. हे पुत्र ! मेरे प्रति समयाचार रहस्य श्रवण करो । जिसके न होने से करोड सहस्र जन्ममें भी सिद्धिलाभ करनेकी सामर्थ उत्पन्न नहीं होती । सर्वदा सर्वत्र उदारचित्त और वैष्णव आचार में तत्पर होवें किसी के निन्दा करने से उसको सहन करै; सर्वदा मनुष्य के उपकार में रत होवे । पर्वत निर्जन वन, शून्यमण्डप और चौराहे में यदि दैवात् गमन कियाजाय तो क्षण काल ध्यान करके मंत्र जप और प्रणाम करने के पीछे यथा सुखसे गमन करै । गृध्रका दर्शन

गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितम् । क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम् ॥ कुररं श्येनभूकाको कृष्णमार्जारमेव च । पूर्णोदरि ! महाचण्डे ! मुक्तकेशि ! बलिप्रिये ! ॥ कुलाचारप्रसन्नास्ये ! नमस्ते शङ्करप्रिये ! । श्मशानस्थं शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् ॥ प्रणम्यानेन मन्त्रेण मन्त्री सुखमवाप्नुयात् । घोरदंष्ट्रे ! कठोराक्षि ! किंचिशब्दप्रणादिनि ! ॥ घुष्टघोररवास्फाले ! नमस्ते चितिवासिनि ! । रक्तवस्त्रां रक्तपुष्पां विलोक्य त्रिपुरात्मिकाम् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमाविमं मन्त्रमुदीरयन् । बन्धूकपुष्पसङ्काशे ! त्रिपुरे ! भयनाशिनि ! ॥ भाग्योदयसमुत्पन्ने ! नमस्ते वरवर्णिनि ! । कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रकम् ॥ हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपौरुषान् । महिषं कुलदेवं च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् ॥ जयदुर्गां स्मरेन्मन्त्री शतविघ्नैर्न

करनेसे देवीमहाकालीको गुप्तरूपसे नमस्कार करे। क्षेमङ्करी, जम्बूकी, यमदूतिका, कुरर, श्येन, भूकाक आकृष्णमार्जार अर्थात् कालीबिल्लीकादर्शन करने से इस प्रकार मंत्र कहे, हे पूर्णोदरी ! तुम्हीं महाचण्डा, मुक्तकेशी बलिप्रिया और शङ्करकी प्रिया हो, तुम्हीं कुलाचार प्रसन्नास्या हो । तुमको नमस्कार है श्मशान और शव देखनेपर प्रदक्षिणा के क्रम से अनुगमन करके प्रणाम पूर्वक वक्ष्यमाण मंत्र कहने से सुख लाभ होता है । मंत्र यथा—हे चितिवासिनी ! तुम्हारी दाढें अत्यन्त भयंकर है, तुम्हारे नेत्र अति कठोरहैं ।तुम किंचित शब्द से गर्जन और घुष्ट घोर रव से आस्फालन करती हो । तुम को नमस्कार है । रक्तवस्त्रा और रक्तपुष्पा त्रिपुरात्मिका के दर्शन करने से दण्डकी समान भूमि में वक्ष्यमाण मंत्र से प्रणाम करे । हे त्रिपुरे ! तुम भय नाशिनी हो, बन्धूक पुष्पकी समान तुम्हारी आभा है । हे वर वर्णिनी ! भाग्य उदय होने सेही तुम्हारा आविर्भाव हुआ है, तुमको नमस्कार है । कृष्णवस्त्र, पुष्प राजा, राजपुत्र, हस्ती, अश्व, रथ, शस्त्र, फलक, वीर पौरुष और महिष, इन सब के देखने पर महिष मर्दिनी जय दुर्गा का स्मरण करे,

लिष्यते। जयदेवि ! जगद्धात्रि ! त्रिपुराद्ये ! त्रिदैवते ! ॥ भक्तेभ्यो वरदे ! देवि ! महिषघ्नि ! नमोऽस्तुते। मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम् । दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्य विमृषेन्मनुम् ॥ घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये। नमामि वरदे देवि ! मुण्डमालाविभूपिते ! ॥ रक्तधारासमाकीर्णवदने ! त्वां नमाम्यहम् । एतेषां दर्शने देवि ! यदि नैवं प्रकुर्वते ॥ शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते। एतेषां मारणोच्चाटौ हिंसनं वाग्भवादिभिः ॥ कुरुते यदि पापात्मा मद्भक्तः स कथं भवेत् । प्रधानांशसमुद्भूता एते कुलजनप्रियाः ॥ डाकिन्यश्च तथा सर्वा मदंशाः शृणु भैरव ! । लब्धसिद्धिसमायोगात् डाकिनीहिंसनं यदि ॥

तो साधक शतविघ्नसे भी आक्रान्त नहीं होता तिस काल इस प्रकार मंत्र कहै, हे देवि ! जगद्धात्री तुम्हारी जय हो । हे त्रिपुरे ! तुम्हीं आद्य देवता हो । तुम्हीं त्रिदेवता हो । तुम्हीं भक्तोंको वर देती हो । तुमनेही महिषासुर का विनाश किया है । तुमको नमस्कार है । मद्यपात्र, मत्स्य, मांस और वरस्त्री के देखनेपर देवी भैरवी को प्रणाम करके यह मंत्र कहै, हे देवि वरदे ! हे मुण्डमाला विभूपिते ! मै घोर विघ्नविनाश और कुलाचार समृद्धिके लिये तुमको नमस्कार करता हूं । हे देवि ! तुम्हारा वदन मण्डल रुधिर धारासे समाकीर्ण है । तुम को नमस्कार करता हूं । हे देवि इनका दर्शन होनेपर यदि शक्ति मंत्र पुरस्कृत करके इस प्रकार अनुष्ठान न कियाजाय, तो उस की सिद्धि हानि होती है यदि पापात्मा वाग्भवादि द्वारा इसका मारण, उच्चाटन, और हिंसन करै, तो वह किस प्रकार से हमारा भक्त होसक्ता है ? हे भैरव ! सुनो । संपूर्ण कुलजन प्रियव्यक्ति मेरे प्रधान अंशसे उत्पन्न हैं, और समस्त डाकिनी मेरी ही अंश हैं । सिद्धियोग में प्राप्त होनेपर यदि कोई डाकिनीगणों की अथवा दानवगण, और विशेषकरके मेरे भक्तगण,

अथवा दानवानाञ्च मद्भक्तानां विशेषतः । वटुकानां भैरवाणां तस्य सिद्धिर्न जायते ॥

इतिश्रीमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते श्यामारहस्ये दशमः परिच्छेदः ।

अथ एकादशः परिच्छेदः ।

अथ मन्त्रसिद्धिप्रकारौ लिख्यते ।

तदुक्तं वीरतन्त्रे ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि गुरुसिद्धिपरम्पराम् । रहस्यं मंत्र सिद्धेस्तु पुरश्चर्यादिभिर्विना ॥ गोपितं कोटिशास्त्रेषु इदानीं प्रकटीकृतम् । एवं ज्ञात्वा विशेषज्ञो गोपयेत् प्रीतये मम ॥ एतत् प्रकाशनात् लोके महाहानिः पदे पदे ॥

वटुकगण और भैरवगणों की हिंसा करता है, तो सिद्धिलाभ से वंचित होता है ।

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित श्यामारहस्यभाषाटीकासहित सामान्यसाधननाम दशमपरिच्छेदसमाप्त ॥ १० ॥

अब मन्त्रसिद्धिकी विधि लिखते हैं । यह विधि वीरतन्त्रमें लिखीहै । अब इसके अनन्तर विशेष सिद्धि की परंपरा वर्णन करते हैं । पुरश्चरण आदि न करने से मन्त्रसिद्धि अवश्य गुप्त रहजाती है । जो विधि करोड़ों तन्त्र शास्त्रों में छिपी पड़ी थी उसी को अब प्रगट करते हैं । ऐसा जानकर विद्वान को चाहिये मेरी प्रीति के लिये इसे गुप्तही रक्खे । क्योंकि—इसे प्रकाशित करने से संसार मेंपग २ के ऊपर विशेष हानिहोगी । उग्र प्रभाव सपत्न भ-

शिवशिखिसितभानुं पञ्चमान्त्यस्वराढ्यं द्विनयमिदमपूर्वं वीजमुग्रप्रभायाः । क्षणमपि स्वमणीनां मण्डलांतर्विभाव्य च्यपयति दुरदृष्टं वादिराट् जायते सः ॥ १ ॥ स जयति रिपुवर्गान् वादिराज्ञो विवादे लसति च रमणीनां चित्तचौरश्चिरायुः । कलयति कविराजैरप्रदृष्टं सुकाव्यं मधुमतिरपि हेया किं पुनः सिद्धसङ्घाः ॥ २ ॥ कुलयुवतिसुयोनौ मन्त्रवर्णान् विलिख्य निखिलनिगमवर्णान् सुप्तदोषादिदृष्टान् । विदितगुरुकुलांतर्वाह्यवर्त्माविधिज्ञो मनुपुटितसुधीमान् साधयेद्दान्तचेताः ॥ ३ ॥ कुलपथमनुसन्ध्यां योऽपि तासां स्वभूमौ तव जननि ! जनोयं तर्पयेत्तीर्थतोयैः । रुधिरभवसुपुष्पैर्गन्धमाल्यानुलेपै रचितयुवतिवेशस्त्वद्धिया ध्यायते सः ॥ ४ ॥ परिचरति समस्तैर्न्यासपूर्वैः प्रसिद्धैस्तव परिकरजालैर्योनि

गवती का दूसरा यह अपूर्व वीज मंत्र है, कि शिव शिखि शुक्र और सूर्य इन के अन्त में छठेस्वर का संयोगकरके और मणिमय मण्डलके मध्य छिन भरभी ध्यानकरके जो देखता है वह वाग्मी होजाता है ॥ १ ॥ वह व्यक्ति राजा के समक्ष किसी प्रकार के वादविवाद में शत्रु वर्ग का जयकरता है, चिरंजीव होकर विलासवती स्त्रियों का चित्त चोर बनके सदा प्रसन्न रहता है । और विशेष क्या कहें वडे २ कवीश्वरों को भी दुष्प्रधर्ष ऐसे काव्य बनाने में समर्थ होजाता है ॥ २ सुन्दर कुलीन युवती स्त्री के......स्थान में मन्त्र के अक्षरों को लिखकर और स्वप्न दोष आदिमें देखेहुए समस्त निगमाक्षरों को गुरु कुल में कहकर वाह्यमार्ग विधि को जान के और अपने चित्तको अच्छी तरह दमन करके मनुवर्णों से संपुटित कर भली प्रकार साधन करे ॥ ३ ॥ जो व्यक्ति नित्यसंध्या के समय कुल क्रमागत विधिके अनुसार उनके उसी स्थान में हे मातः ! यह तुम्हारा दास तीर्थानीत जलों से तर्पण करता है । और गुड़हल के फूल और गन्धमालादि चन्दन से स्त्री का वेप बनाय तुम्हारा ध्यान करे ॥ ४ ॥ जो पुरुष न्यास पूर्वक समस्त तुम्हारी पूजाकी सामग्री से .....चक्र में पूजन करके सुन्दर कुल में उत्पन्न

चक्रे प्रपूज्य । सुविमलकुलजां त्वां ह्रीघृणाविर्जितां यः स्वयमपि रचिताङ्गः क्षोभकृद्योगिनीनाम् ॥ ५ ॥ पशुरिपुकुलचक्रं संस्पृशन्मध्यशाखां कुलपतिकुलनाथष्ठद्वयं योजयित्वा । मनुपुटितविमृग्यं योजयेत्तद्बहिर्यो जननि ! तव कलानां कोविदां कामरूपः ॥ ६ ॥ कुमतिरहितचित्तः संलिखेत्तां त्रिधा मे विगतभयविवादध्वान्तजालः सुधांशुः । तव चरणतलांत धूलिजालैर्विशालैः चिरकलितवपुस्तद्धर्मभिर्देवपूज्यैः ॥ ७ ॥ परिचरति स विज्ञो मोक्षचर्य्याधिपश्च मदनमदवधूनां वीजमुद्धृत्य शक्तिम् । तदनु कठिनवीजं ज्ञानचक्रं तदन्तर्यदि जपति मदन्तर्भावमासाद्य सद्यः ॥ ८ ॥ सुरनगरगतिज्ञैः सिद्धवृन्दैः प्रपूज्यः शिवभृगुमदपृथ्वीशक्तियुक्तः स्वसिद्धम् । हरिहरचतुरास्यस्वस्वभूतिं प्रसूतं परमवररसज्ञः क्षोभकृत् का-

---

हुई लज्जा और दया रहित तेराध्यान करता है वह योगियोंके भी चित्त में क्षोभ करताहै ॥ ५ ॥ हे जननि ! जो साधक मध्यशाखाका स्पर्श करपशुरिपु कुल चक्रकी कुलपति कुलनाथ और दो प—ट से युक्तकर और मनुवर्णसे अन्यथा युक्त कर पूजन करता है वोह काम रूप व्यक्ति तुम्हारी कलाओं को जानता है ॥ ६ ॥ अपने चित्त से कुमति को दूरकर उसे तीन मकार लिखे और अपने चित्तसे भयविपाद और कपट जालको दूरकर तुम्हारे चरणपांशुको शरीरमें लिप्तकर देवपूज्य मकारसे पूजन करै ॥ ७ ॥ जो साधक विशेष ज्ञान संपन्न और मोक्ष मार्गाचरण कर्ता वनके म........त्र........वा.... शक्ति का उद्धरण करके तत्पश्चात् कठिन वीज को फिर ज्ञान चक्र को लिख कर जपकरता है तब वह अपने का........संबन्धी मनोरथ सिद्धि को शीघ्रही प्राप्तहो जाता है ॥ ८ देव लोक में जाने के तई समर्थ ऐसे सिद्धों के द्वारा पूजनीय शिव भृगु मद और पृथ्वी का शक्ति से युक्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की निज २ विभूति से विभूपित सिद्ध यन्त्रकी पूजा करने से स्त्रियों के

मिनीनाम् ॥ ९ ॥ रतिपतिरपि वाचां श्रीपतिः सार्वभौमः मृगमदकठिनाधः कामबीजं तदग्रे । भुवनभयविनाशः क्षोभिणीं योजयित्वा जपति यदि सकृद्वा चिन्तते वीरसिंहः ॥ (कुलयुवतिकुलान्तः क्षोभकृत कामभावः) ॥१०॥ पाठांतरम्।

मदनमदलताधः शक्तिबीजं नियोज्य स्मरहरहरिरूपी कामरूपः कुवेरः । रिपुकुलहरिणाक्षी लोचनाम्भोजविप्रुड् विपुलजलनिषेकात् खण्डितांतःस्थतापः ॥ ११ ॥ शिवमृगमदमूलं लोभमूलं समूलं भजति यदि गुरूणां वर्ममूलं विमृग्यम् । निधिरपि निशिनाथो गीष्पतिः क्षुद्रचेताः यदि भवति तदेतन्मुख्यमुर्वीपतित्वम् ॥ १२ ॥ वरुणरण विवर्ज्य घ्राणमेकं विवर्ज्य तदुपरि मृगचिन्हं द्वन्द्वमेतद्भवान्याः । निखिलमनुवरेण्यं मोक्षदानैकदक्ष सदसदमयधर्मा क्षेपहन्मन्त्रराजम् ॥ १३ ॥ अनल शिरसिधर्मं वादिराजं स्वतंत्रम्

बराबर भावको जानकर उनके चित्त को क्षुभित करदेता है ॥ ९ ॥ फिर जो व्यक्ति कामबीज को स्थापित कर 'भुवनभयविनाशक्षोभिणी' यह संयुक्त कर एक बारभी जपकरता अथवा ध्यान करता है वोह काम तुल्य सुन्दर लक्ष्मीवान और समस्त भूमिका अधिपति होजाता है ॥ १० ॥ स्त्रियों की... यंत्र के नीचे शक्ति बीज को नियुक्त कर काम विष्णु और महादेव का इच्छानुसार रूपवना के अधिक जल से स्नान करने के कारण शरीर का सन्ताप शांत कर ॥ ११ ॥ जो व्यक्ति ध्यानकरता है वह क्षुद्रभी विशेष धर्मी और विद्वान् होजाता है विशेष क्या उसे सार्व भौमपदवीभी प्राप्त होजाती है ॥ १२ ॥ वरुण रणरहित एकघ्राण को छोड फिर भवानी के द्वन्द्वरूप उसके ऊपर मृगचिन्ह लिखकर सम्पूर्ण मंत्रों में श्रेष्ठ मोक्षदेने में निपुण ऐसे मंत्र-राजका जप करे ॥ १३ ॥ अग्नि बीज को उसके ऊपर स्थापनकर भवानी का बीज मंत्र जपने से सब सिद्धियें प्राप्त होती हैं इस की गुरुता को

भवसमनययुक्तं वीजमेतन्नशान्याः । द्वितयमपि विसानं वक्तुमीशो महेशःकिमिह कमलजन्मा जन्मधारासहस्रैः॥१४॥ इह भजति य एनं मन्त्रराजं सुभाग्यैः भवति जननि ! युष्मत्पादपद्मोत्थजन्मा । त्यजसि परपुमांसं माहशं क्वापि काले न खलु न पुनरर्घ्यं तस्य किञ्चित् कदाचित्॥ १५ ॥ विहितगुरुमुखाद्वा वालकाद्वा पशोर्वा लिखितमपि सुबुद्ध्या प्राप्य कस्मादकस्मात् । स्मररिपुपुरपारे मोक्षचर्य्याश्च पारे परमपदविलीनः सर्वसौभाग्यभोगैः ॥ १६ ॥ अनलपुरविभागे कालिकावक्त्रवीजं तदपि यदि विदध्यादच्युतं सान्तवर्णम् । नयनयुतलकारं मस्तके नामयुक्तं तदनु विकटदंष्ट्रासोत्कटं वीजयुक्तम् । जपति यदि समस्तं गुह्यगुह्यातिगुह्यं त्रिजगति किमिहास्ते क्लेशलभ्यं कथञ्चित् ॥ १७ ॥ क्रमपठितमपूर्वं सर्वमेवानुवर्ण्यं मनुमपि परवाच्यं तस्य मध्यस्थरूपम् । भजति यदि चिदानन्दात्मधृक्केवलोऽसौ विपिनभुवि मनुष्यः कौतुकी कामदेवः ॥ १८ ॥ इति ते कथितं सर्वं रहस्यं परमाद्भु-

---

केवल शिवजी वर्णन करसक्ते हैं और ब्रह्मा तौ सहस्रों जन्म में भी वर्णन नहीं करसक्ते ॥ १४ ॥ हे माता जो पुरुष तुम्हारे इस सर्वोत्तम मंत्रका जप करता है वह अवश्यही तुम्हारे चरणकमलों में प्राप्त होजाता है और जो पुरुष तुम्हारा मंत्र जप करने से विमुख हैं उनकी सुगति का कोई उपाय नहीं ॥ १५ ॥ विधानसे अथवा गुरु बालक या अज्ञानीके मुखसे सुनकर अथवा अपनी बुद्धिसे लिखकर किम्वा चाहें जिस प्रकारसे प्राप्त करके इस मंत्रको जप करने से संपूर्ण सौभाग्य को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ अनलपुर विभाग में कालिका मुखवीजको लिखकर फिर पूर्ण अन्त्यवर्ण लिखै फिर दो लकार लिखै पुनः मस्तकोपरि नामको युक्त करै तौ जप करने से उसे कुछभी दुष्प्राप्य नहीं रहता ॥ १७ ॥ इस अपूर्व मंत्रको क्रमसे पढके मध्य में मनुवर्ण का ध्यान करै और निर्जन बन में जपै तौ वह मनुष्य कामदेव की समान कौतुकी होजाता है ॥ १८ ॥

तम् । यथानुक्रमतो लोके किं न साधयति योगिराट् ॥

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्यामारहस्ये
मन्त्र साधनोपाय एकादशः परिच्छेदः ।

अथ द्वादशः परिच्छेदः ।

अथकाम्यप्रयोगोलिख्यते ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र सर्वगः । साधकः साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ॥ कुलागारं पुष्पितायाः दृष्ट्वा यो जपते नरः । अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः ॥ केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत् ॥

अयुतैकप्रमाणेति दिनत्रयं व्याप्य अयुतं जपेदित्यर्थः ।

हमने यह परम अद्भुत रहस्य तुमसे वर्णन किया इसके द्वारा योगी पुरुष भला क्या सिद्ध नहीं करसक्ता अर्थात्–सबकुछ सिद्ध प्राप्त होजाताहै ॥ १९ ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरि
विरचितश्यामारहस्यभाषाटीकासहित मन्त्रसाधनोपाय
एकादश परिच्छेदः ॥ ११ ॥

अथ कामप्रयोग लिखाजाता है । कालीतन्त्र में कहा है । इसके उपरान्त काम्यविधि कहता हूं । जिसके द्वारा साधक सर्वत्र सर्वज्ञ होकर सर्व देवगणोंको भी दुर्लभ सिद्धि साधन करता है । जो साधक पुष्पिताका कुलागार दर्शन करके स्थिरचित्त द्वारा एक अयुत केवल गुप्त भावसे जप करता है, वह विद्यानिधि होता है । यहां एक अयुत परिमाण शब्द से तीनदिन व्यापी अयुत जप करे, यही अर्थ है । यह रात्रिमेंही करे, दिनमें नहीं । क्योंकि दिन

इयन्तु रात्रावेव कर्त्तव्यं न तु दिवसे विविधविधिनिन्दाश्रुतेरिति ।

संस्कृताः प्राकृताः सर्वा लौकिका वैदिकास्तथा । वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य न चान्यथा ॥

कुलसर्वस्वेऽपि ।

ऋतुमत्या भगं पश्यन् यो जपेदयुतं नरः । अनुकूलाहि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत् ॥ छन्दोबद्धा परा वाणी तस्य वक्त्रात् प्रजायते ॥

अथ कालीतन्त्रे ।

अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयन्नरः । प्रजप्य चायुतं प्राज्ञ एतदेव फलं लभेत् ॥ नग्नां पररतां पश्यन् अयुतं यस्तु साधकः । प्रजपेत् स भवेत् सद्यो विद्याया वल्लभः स्वयम् ॥ तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुण्ठतां गताः । गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥ तन्नाम्ना सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः । तस्य वाक्यपरिचयात् जड़ा भवन्ति वाग्मिनः ॥

में विविध विधि निन्दा श्रुति हैं इस प्रकार जप करने से संस्कृत, प्राकृत, लौकिक, वैदिक, सभी साधक के वशीभूत होते हैं, इसमें अन्यथा नहीं होता । कुलसर्वस्व में भी कहा है, ऋतुमती का कुलागार देखकर अयुत जप करने से गद्यपद्यमयी छन्दोबद्ध उत्कृष्ट और अनुकूलवाणी वक्रसे (मुखसे) निकलती है । कालीतंत्रमें कहा है, अथवा मुक्तकेश होकर हविष्य भक्षण और अयुत जप करने से इसी प्रकार फल लाभ होता है । जो साधक पररताका दर्शन करके अयुत जप करता है, वह शीघ्र विद्यावल्लभ होता है । उसके दर्शनमात्रसे ही वादीगण कुण्ठित होते हैं सभामें उसके मुखसे गद्यपद्यमयी वाणी निकलती है । उसके नाममात्रसे सुधीगण सानन्दचित्तहो प्रणाम करते हैं उसके वाक्यके परिचयमात्रसे ही संपूर्ण वाग्मी जड़ होते हैं । सारसर्व-

सारसर्वस्वेऽपि ।

नग्नां परस्त्रियं वीक्ष्य यो जपेदयुतं नरः । स भवेत् सर्वविद्यानां पारगः सर्वदैव हि ॥ कवित्वं जायते तस्य वाचा जीवसमो भवेत् । अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयन्नरः ॥ प्रजपेदयुतं तावदेवं प्रतिनिधिर्भवेत् । धनकामस्तु यो विद्वान् महदैश्वर्यकामुकः ॥ बृहस्पतिसमो यस्तु कवित्वं कामयेन्नरः । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कुलमामन्त्र्य मन्त्रवित् ॥ मैथुनं यः प्रयात्येषः स तु सर्वफलं लभेत् । लतारतेषु जप्तव्यं महापातकमुक्तये ॥ लता यदि न संसर्गः तदा रेतः प्रयत्नतः । समुत्सार्य्य जपेन्मन्त्री धर्मकामार्थसिद्धये ॥ महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः । रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत् ॥ महाचीनद्रुमलतावेष्टनेन च यत् फलम् । तस्यापि षोड़शांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः । शवासनाधिकफलं लतागेहप्रवेशनम् ॥

स्त्रमें भी कहा है, नग्न परस्त्री का दर्शन करके अयुत जप करने से, सर्व्वदाही संपूर्ण विद्याका पारग, कवि और वृहस्पति की समान होजाता है । अथवा मुक्तकेश होकर, हविष्य भक्षण पूर्व्वक, अयुत जप करनेसे, उक्तरूप प्रतिनिधित्व लाभ होता है, जो व्यक्ति धन काम और अतिशय ऐश्वर्य्य काम एव वृहस्पति की समान कवित्व की कामना करता है । अष्टोत्तरशत जप और कुल आमन्त्रण करके, मैथुन करता है, उसकी समस्त कामनाही सफल होती हैं । लतारत में महापातक छुडानेकेलिये जप करना चाहिये, लताका यदि संसर्ग न हो तो यत्नसहित शुक्र समुत्सारण पूर्व्वक धर्म्म कामार्थ सिद्धकेलिये जप करे । साधकोत्तम रात्रिकाल में महाचीन द्रुमलता वेष्टित होकर यदि मन्त्र जप करे, तो कल्पलता होती है, महाचीन द्रुमलता वेष्टन द्वारा जो फल लाभ होता है, शव भी उसके षोडशांशका एकांशभी नहीं होसका, लतागृहमें प्रवेश करनेपर शवासन की अपेक्षा भी अधिक फल लाभ होता है ।

अथ विशेषो यथा । तदुक्तं कुलचूड़ामणौ ।

रजोऽवस्थां समालोक्य तन्मूलेऽभिष्टदेवताम् । पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं पूजयेन्मनुम् ॥ लक्षपीठफलं देव ! लभते नात्र संशयः । वेतालपादुकासिद्धिं खड्गसिद्धिश्च भैरव ! ॥ अञ्जनं तिलकं गुप्तिं साधयेत् साधकोत्तमः ॥

प्रजपेदिति । प्रतिदिनमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः ।

यत्र जापे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः । तत्रेयं गणना प्रोक्ता गजाष्टकसहस्रकम् ॥ पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः । तदा वादी सुसिद्धान्तः हतः चितितलं विशेत् ॥ पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयः शुद्धमानसः । कवित्वं लभते सोऽपि अमृतत्वञ्च गच्छति ॥ पद्मं दृष्ट्वा तथा विन्दुं खञ्जनं शिखिनं तथा । चामरं रविविम्बञ्च तिलपुष्पं सरोवरम् ॥ त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभा

इस विषयमें विशेष यह है यथा—कुलचूड़ामणिमें कहा है, रजोवस्था रमणीको देखकर महारात्रि कालके समय उसके मूलमें इष्ट देवताकी पूजा करके तीनदिन मन्त्र की आराधना करें । हे देवि ! इस में लक्षपीठफल लाभ होता है इसमें सन्देह नहींहै, और साधक इसके द्वारा वेतालसिद्धि, पादुकासिद्धि, खड्गादिसिद्धि, अञ्जन और तिलकसिद्धि एवं गुप्त साधन करता है । इस स्थल में प्रतिदिन अष्टोत्तरशत जप करना चाहिये, यही अभिप्रेत है । जिस जपमें वा जिस होम में मनीषिगणों ने जप संख्या निर्देश नहीं की है, उस में अष्टोत्तर सहस्र जप करना चाहिये, यही समझे । पृथिवी को ऋतुमती देखकर, नित्य सहस्र जप करनेपर, सुसिद्धांत वादीभी पराहत होकर, क्षिति तल में प्रवेश करते हैं, और पर्व्वत में हस्तारोपण करके, निर्भय और शुद्ध चित्तहोकर कवित्व और अमृत लाभ करते हैं, पद्म, विन्दु, खञ्जन, शिखी, चामर, रविविम्ब, तिलपुष्प, सरोवर और त्रिशूल दर्शन करके, शतशः शुद्ध

वतः । सुप्रसादं सुवचनं सुलोचनं सुहास्यकम् ॥ सुवेशं सुभगं गन्धं सुजनं सुखमेवच । लभते च यथा संख्यं शृणु पार्वति ! सादरम् । महाचीनक्रमेणैव देवीं ध्यात्वा प्रपूज्यच ॥ तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः । स भवेत् कुलदेवश्च कुलक्रमगतः शुचिः ॥ ब्रह्मतरोर्महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथा विधि । तत् सुधारसधारेण तर्पयेन्मातृकानने ॥ तिथिक्रमेणसंख्याभिर्लताभिर्वेष्टितो यदि । तदा मासेन सिद्धिःस्यात् सहस्रजपमानतः ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि दृश्यते । तदैव महती सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥ जपकल्पंमहादेवि ! शृणुष्वा कमलानने ॥ स्वयं कर्त्तुमशक्तश्चेत् सम्प्रदायविदोऽथवा ॥ देशिकेन पुरश्चर्य्यां कारयेन्मन्त्रसिद्धये ॥

तथाच योगिनीहृदये ।

तस्माज्जपं स्वयं कुर्य्याद् गुरुं वा कारयेद्बुधः । गुरोरभावे विप्रञ्च सर्वप्राणिहिते रतम् ॥ गृहीत्वा भाग्यतो मन्त्रमिमं

चित्तसे यथा संख्या जप करनेपर, सुप्रसाद, सुवचन, सुलोचन, सुहास्य, सुवेश, सुभग, सुगन्ध, सुजन, और सुखलाभ कियाजाता है, हे देवि ! सादर श्रवण करो । महाप्राचीन क्रमानुसार, देवीका ध्यान और पूजा करके, उस वृक्षोद्भव पुष्प द्वारा भक्तिभावसे पूजा करनी चाहिये । तो कुलदेव, कुलक्रमगत, और सर्व्वदा शुद्ध सत्त्व होजाता है, ब्रह्मतरुके महा पद्ममें देवीका यथा विधि ध्यान करके तदीय सुधारस धारा से मातृकानन में तर्पण करे। तिथि क्रमानुसार लतावेष्टित होकर, संख्या क्रमसे सहस्र जप करनेपर, एक महीने में सिद्धिलाभ होती है । अष्टमी और चतुर्दशी में द्विगुण प्रमाण जप करने से देवगणों को भी दुर्लभ महतीसिद्धि प्राप्त होजाती है । हे महादेवि ! जप कल्प श्रवण करो स्वयं जप करने में समर्थ होनेपर मंत्र सिद्धिके लिये गुरुद्वारा पुरश्चरण कराले, योगिनी हृदयमें कहा है, इसलिये स्वयं जप करे, अथवा गुरु द्वारा करावे गुरुके अभाव में संपूर्ण प्राणियोंके हित में निरत ब्राह्मणके द्वारा

सद्गुरुवक्त्रतः । पुरश्चर्य्यामवश्यं हि कुर्वीत विजितात्मनः ॥

उत्तरतन्त्रेऽपि ।

सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं पुरश्चरणमुत्तमम् । अन्यथा नाधिकारः स्यात् तस्य पूजादिषु प्रिये ! ॥ कारयित्वा पुरश्चर्य्यां मन्त्रिणं शास्त्रवेदिनम् । वस्त्रालङ्कारवसुभिः प्रीणयेद् देवताधिया । ततोऽस्य मन्त्रसिद्धिः स्याद् देवता च प्रसीदति ॥

अथ कुलसारे ।

एवंविधविधानेन पुरश्चारी भवेन्नरः । लक्षसंख्यं जपेद्देवि ! होमं कुर्य्यात्तद्दशांशतः ॥ विल्वपत्रेण वा देवि ! तथानीलाम्बुजेन च । शर्कराघृतयुक्तेन मधुयुक्तेन वा पुनः ॥ एवं हुत्वा ततो देवि ! तर्पणञ्च तथा पुनः । तर्पयेत् शुद्धदुग्धैश्च तथा च विमलैर्जलैः ॥ कुम्भाख्यमुद्रया देवि ! अभिषेकं स्वमूर्द्धनि । ब्राह्मणान् भोजयेद्द्रव्यैः पदार्थैः षड्रसैरपि ॥ विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद् यतः । गोभूहिरण्यवसुभिस्तर्पयेद्देशिकः

कराळेवे, भाग्य वशतः सद्गुरुके मुखसे मंत्र ग्रहणकरके अवश्य पुरश्चरण करे, उत्तर-तंत्रमेंभी कहा है, सर्व्वस्व देकर विहित विधानसे पुरश्चरण करे, न करने से पूजादि में अधिकार नहीं होता, शास्त्रवित् मंत्री द्वारा पुरश्चरण कराके देवता बुद्धिमें वस्त्र, अलङ्कार और धन द्वारा उसको प्रसन्न करे, तो मंत्रसिद्धि और देवताभी प्रसन्न होते हैं ॥

कुलासार में कहा है, इस प्रकार विधानानुसार पुरश्चरण करके लक्ष संख्या जप और उसका दशांश होम करे । विल्वपत्र अथवा नीलपद्म, शर्करा, घृत, और मधुयुक्त करके होम करना चाहिये, हे देवि ! इस प्रकार होम और तर्पण करके पुनर्व्वार शुद्ध दुग्ध द्वारा तर्पण और विमल जल द्वारा कुम्भमुद्रा के संयोगसे स्वकीय मस्तक में अभिषेक, और षड्विध- रसयुक्त द्रव्य द्वारा ब्राह्मणोंको भोजन करावे, ब्राह्मणगणों की आराधना मात्रसे अङ्गहीन भी साङ्ग होता है, गो, भूमि, स्वर्ण और धन द्वारा तर्पण करना चाहिये ।

सुधीः ॥ देशिकाय ततो देवि ! दक्षिणां विभवावधि । दातव्य परमप्रीत्य कार्य्यसिद्धिमभीप्सु भिः ॥ देशिके परितुष्टे च तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः । एवंविधं जपं कृत्वा सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥

अथ जपनियमः । तदुक्तं कुलार्णवे ।

लक्षमात्रं जपेद् यस्तु महापापैः प्रमुच्यते । लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मभवान्यपि । महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ चतुर्लक्षं जपेद्देवि ! महावागीश्वरो भवेत् । कुबेर इव देवेशि ! पञ्चलक्षात् न संशयः ॥ षड्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत् । सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरी मेलको भवेत् ॥ अष्टलक्षं जपन्मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नरः । अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये ! ॥ वरदास्तस्य राजानः योषितस्तु विशेषतः । नवलक्षप्रमाणानि यो जपेत् कालिकामनुम् ॥ रुद्रमूर्त्ति स्वयं कर्त्ता हर्त्ता साक्षान्न संशयः ।

अनन्तर देशिक को जिस प्रकार विभव है, तदनुसार कार्य्यसिद्धिकी अभिलाषासे परम प्रीतिपूर्व्वक दक्षिणादेवे । देशिकके परितुष्ट होनेपर सपूर्ण देवता तुष्ट होते हैं इस प्रकार जप करने से सर्व्वसिद्धि संग्रह होती है ।

इसके उपरान्त जप नियम कहते हैं । कुलार्णव में कहा है लक्षमात्र जप करने से समस्त महापातक दूर होते हैं, दो लक्ष जप करने से, सप्तजन्म समुद्भूत सम्पूर्ण पाप दूर होते हैं और सम्पूर्ण महापातक भी दूर होते हैं इसमें संदेह नहीं. हे देवि ! चार लक्ष जप करने से महावागीश्वर होजाता है पांच लक्ष जप करने से कुबेर की समान लाभ होती है. इसमें सन्देह नहीं । छय लक्ष जप करने से खेचरी मेलकत्व लाभ होती है । अष्ट लक्ष जप करने से, देवगण भी पूजा करते हैं. और अणिमादि अष्ट सिद्धि का नायक होजाता है । नरपतिगण विशेषतः योषिद्‌गण वरदान करते हैं। नव लक्ष प्रमाण से यह कालिका मंत्र जप करने से, साक्षात् स्वयं हर्त्ता कर्त्ता

सर्ववन्द्यः सदा सुस्थः सर्वसौभाग्यवान् भवेत् ॥ यत्र वा कुत्रचिद्भागे लिङ्गं स्यात् पश्चिमामुखम् । स्वयम्भूर्वाणलिङ्गं वा वृषशून्यं जलस्थितम् ॥ पश्चिमायतनं वात्र इतराद्वापि सुव्रते ! । शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां नद्यां पर्वतमस्तके । पवित्रे सुस्थले देवि ! जपेद्विद्यां प्रसन्नधीः ॥

अथ यामले ।

एवं कृतपुरश्चर्य्यः स्वयं वा गुरुणाऽथवा । सर्वकामसमृद्धिः स्यात् प्रयोगानथ चारयेत् ॥

भैरव तन्त्रेऽपि ।

महापीठे शिवक्षेत्रे शून्यागारे चतुष्पथे । पूजयित्वा गन्ध पुष्पैर्धूपदीपानुलेपनैः ॥ कालिकां परमेशानीं जपेदयुतमानकम् । अष्टम्यांच चतुर्दश्यां संक्रान्त्यां पूर्णिमातिथौ ॥ भौमकुह्वां विशेषेण स्वयं वा गुरुणाऽथवा । जपेत्सहस्रमानन्तु साष्ट शतमथापिवा ॥ होमयेन्मधुरोपेतैः पायसैः सर्वसिद्धये ॥

रुद्र मूर्त्ति होजाता है । इसमें सन्देह नहीं, और सम्पूर्णही वन्दना करते हैं. सर्वदाही स्वास्थ्य सुख भोग करता है । और सर्व विध सौभाग्यही संगृहीत होता है । लिङ्ग, वाणलिङ्ग अथवा स्वयम्भू लिङ्ग, पश्चिम मुख विराजमान हों इसप्रकार जो कोई स्थान हो, और शक्तिक्षेत्र, गंगाक्षेत्र, पर्वत शेखर और पवित्र सुस्थल में प्रसन्नचित्त से मंत्रजप करै ॥

यामल में कहा है—इसप्रकार स्वयं वा गुरुकी सहायता से पुरश्चरण कराकर सर्वविधि काम समृद्धि संग्रह पूर्वक सम्पूर्ण प्रयोग में प्रवृत्त होवै । भैरव तंत्र में भी कहा है, महापीठ, शिवक्षेत्र, शून्यागार, और चौराहे में गंध, पुष्प, धूप, दीप और अनुलेपन द्वारा परमेश्वरी कालिका की पूजा करके अयुत परिमाण जप करै । अष्टमी, चतुर्दशी, संक्रांति, पूर्णिमा और विशेषतः भौम, अमावस्या, इन समस्त में स्वयं वा गुरुकी सहायता से सहस्र वा साष्ट शत जप और सर्व सिद्धि के लिये मधुरोपेता पायस द्वारा होम करै ।

कुलसर्वस्वेऽपि।

कारयित्वा स्वस्त्ययनं द्विजेनागमवेदिना। प्रतोष्य दक्षिणाभिस्तं वसेत् कल्पायुतं दिवि ॥

कुलसारसंग्रहे ।

पुण्यकाले युगाद्यायां पुष्ये मूलोत्तरासु च। सुगन्धिकुसुमैर्देवीमर्चयित्वा वरानने ! ॥जपेत् साष्टसहस्रैस्तु तर्पयेद् दुग्धखण्डकैः । महतीं श्रियमाप्नोति राजानस्तस्य किङ्कराः॥

वीरतन्त्रे च ।

आनीय देशिकं शुद्धं जितेन्द्रियञ्चापि द्विजम् । कारयीत जपं रात्रौ पूजयित्वा महेश्वरीम् ॥ गन्धताम्बूल धूपाद्यै र्नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु साष्टं शतमथापि वा ॥ प्रत्यहं कारयेद्धीमान् यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत् । पूर्णमासे तु मन्त्रज्ञं तोषयेत् धनधान्यकैः ॥ पुत्रवत् पालयत्येषा कालिकासाधकं सदा । अवश्यं कालिकामन्त्रे जपो रात्रौ मतःप्रिये ! ॥

कुल सर्वस्व में भी कहा है. आगम वेदी ब्राह्मणके द्वारा स्वस्त्ययन समाहित करके दक्षिणा द्वारा उसका परितोष विधान करने से, अयुतकल्प तक स्वर्ग में वास करसक्ता है । कुलसार संग्रह में भी कहा है, पुण्यकाल, युगाद्या, पुष्य, मूल, उत्तरा, इन सब में सुगन्धि कुसुमसमूहसे देवी की अर्चना करके अष्टसहस्र जप और दुग्ध खण्ड द्वारा तर्पण करनेसे महासमृद्धि लाभ और राजागण भी सेवक होते हैं। वीरतंत्र में भी कहा है, जितेंद्रिय, शुद्ध स्वभाव, देशिकको लाकर, महेश्वरी की पूजा करके रात्रि में जप करावै। गंध, ताम्बूल, धूप और दीपादि पृथक् विधि नैवेद्य द्वारा जप करके, एक महीनेतक प्रतिदिन अष्टोत्तर सहस्र वा साष्ट सहस्र जप करना चाहिये। मास पूर्ण होने पर धन और धान्य द्वारा उसी मन्त्रज्ञको सन्तुष्ट करने पर देवी कालिका साधकको पुत्रकी समान पालन करती है। हे प्रिये ! रात्रि

पूज्यो गुरुः सदा चास्मिन् परमोऽपि गुरुस्तथा । परमेष्ठि गुरुश्चैव परापरगुरुस्तथा ॥ उत्तरोत्तरतश्चैषां प्रशस्ता जपकर्मणि । गुरुर्न रूक्षो द्रष्टव्यो नापि क्षुब्धस्तथैव च ॥ इदं रहस्यं देवेशि ! नाभक्ताय प्रदर्शयेत् । कुलज्ञाय सुशीलाय वदान्याय महात्मने ॥ गुरुभक्ताय शान्ताय सर्वभूतहिताय च । प्रदद्याद् देशिको देवि ! विधानं कालिकामतम् ॥ अथ निशायां दीक्षितायां कुलनायिकां समानीय व्यापक न्यासं कुर्यात् ।

प्रथमं साधकश्रेष्ठो देवीकूटस्य मन्त्रवित् । विलिख्य मन्त्रं पूर्वोक्तं पूजयेत्कुलवर्त्मना ॥ पीठदेवीं प्रथमे च पूजयेद् गन्धपुष्पकैः । महाभागं ततो मूलदेवीमावरणैःसह ॥ लक्षैकंतत्र जप्त्वा तु चोड्डीयानं ततोविशेत् । देवीकूटस्येति पादपद्मोपरि । तत्पीठे योगनिद्राख्यां पूजयित्वा ततो जपेत् ॥ निजेष्ट देवतां तत्र जपेत् लक्षं समाहितः । उड्डीयानमरुयुगमित्यर्थः ।

में कालिका के मन्त्रको अवश्य जप करै । जप समय गुरु, परमगुरु परमेष्ठी गुरु, और परापर गुरु इनकी सर्वदा पूजा करनी चाहिये, जप कार्य्य में इन की उत्तरोत्तरता प्रशस्तहै, गुरुको रुक्षभी न देखे, और क्षुब्ध भी न देखे हे देवि ! यह रहस्य अभक्त से न कहे, कुलज्ञ, सुशील, वदान्य, महात्मा, गुरुभक्त शान्त और सर्वभूत के हित में निरत, इस प्रकार व्यक्ति कोही विधानुसार यह कालिका मत प्रदान करे ॥

अनन्तर रात्रिकाल के समय दीक्षिता कुलनायिका को बुलाकर व्यापक न्यास करै । प्रथम साधक श्रेष्ठ देवी के पाद पद्मोपरि पूर्वोक्त मन्त्र लिखकर कुलवर्त्मानुसार पूजा करै । गन्ध पुष्प द्वारा आदि में पीठदेवी की अर्चना करके फिर सम्पूर्ण आवरण के सहित मूल देवी की पूजा करै । तहां लक्ष जप करके उरुयुग में प्रवेश और उसी पीठमें योग निद्राख्यकी पूजा करके जप करना चाहिये । वहां समाहित होकर अपने इष्टदेवकी अर्चनाके सहित

कामरूपं ततो ध्यात्वा तत्र कात्यायनीं जपेत्। कामरूपं प्रजापतिमित्यर्थः ।

तत्रापि लक्षमानेन जप्त्वा मन्त्रं समाहितः । ततःपूर्णगृहं गत्वा यजेच्चण्डीं ततो जपेत् ॥ पूर्णगिरौ शिरसि इत्यर्थः । यजेदाति मूलदेवीं सावरणां प्रपूज्य लक्षं जपेदित्यर्थः ॥

कामरूपान्तरे वत्स ! कामाख्यां प्रथमं यजेत् । कामरूपं विन्दुचक्रं जप्त्वा रात्रौ समाहितः॥ संख्यापूर्तौ पुनः पृच्छेत् का त्वं देवि ! कुलोत्तमे ! । एवं कृते विस्मृतश्चेत् स्वनाम गोत्रकान्यपि ॥ तत्रेष्टदैवतैरेव शृणुष्व वरमुत्तमम्। ततः प्रणम्य देवेशीं शृणुयाद्वरमुत्तमम् ॥ एवं जपवशादेव पुनः पूर्वोक्तमाचरेत् । अक्षोभितकुलाचारपरिचर्य्यापरायणः। अथवा सर्वपीठेषु यजेन्महिषमर्दिनीम् ॥ ततः प्रसन्ना भवति स्वैरं कुलवरं प्रिये ! । ततो जप्त्वा मूलमन्त्रं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

इतिपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्यामारहस्ये द्वादशः परिच्छेदः ।

लक्ष जप करे । फिर प्रजापतिका ध्यान करके कात्यायनी की अर्चना के अनन्तर तहां लक्ष जप और फिर मस्तक में समागत होकर चण्डीकी पूजा और जप करे । हे वत्स ! काम रूपान्तर में प्रथम कामाख्या की आराधना करके फिर रात्रि में समाहित होकर कामरूप विंदुचक्र का जप करे। संख्या पूर्ण होनेपर फिर पूंछे, हे देवि ! कुलोत्तमे ! तुम कौन हो ? इस प्रकार पूछनेपर वह यदि विस्मित हों, तो अपना नाम और गोत्र कहे । अथवा अक्षोभित चित्त से कुलाचार परिचर्या परायण होकर ,समस्त पीठ में देवी महिषमर्दिनी की पूजा करे । तो वह इच्छानुसार कुलवरके प्रति प्रसन्न होती है, अनन्तर मूलमन्त्र जप करने से सर्व सिद्धि का ईश्वर होता है ॥

इतिमहामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरि विरचित श्यामारहस्यभाषार्थकासहितद्वादश परिच्छेदसमाप्त ॥१२॥

अथ त्रयोदशः परिच्छेदः।

अत्र ग्रन्थगौरवभयात् महाभयादिपीठक्रमो न लिखितः। किन्तु सर्वपीठे महिषमर्दिनीपूजायाः विहितत्वात् तत् क्रमो लिख्यते ।

तदुक्तं कुलचूडामणौ ।

भैरव उवाच ।

मातर्महिषमर्दिन्याः सङ्केतं कथयस्व नः । कुलाचारस्य संसिद्धौ भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये ॥

श्रीदेव्युवाच ।

सृष्टिस्थितिविनाशानामादिभूता महेश्वरी । गोप्या सर्व प्रयत्नेन शृणु तां कथयामि ते ॥ त्रैलोक्यवीजभूतान्ते संवो धनपदं ततः । सृष्टिसंहारवर्णौ द्वौ निष्ठा महिषमर्दिनी ॥

अस्यार्थः—मदनरिपुशक्तिवीजान्ते महिषमर्दिनिपदमाभिमुख्यार्थेनोद्धृत्य वह्निललनामुद्धरेदिति ॥

अतिगुह्यतरा विद्या सृष्टिस्थितिविधायिनी । सर्वदेवस-

ग्रंथ गौरव के भय से महाभयादि पीठक्रम नहीं लिखी जाती । किन्तु सम्पूर्ण पीठ में महिषी मर्दिनी की पूजा प्राप्त होजाती हैं। इसलिये उसकाही क्रम लिखते हैं, कुलचूडामणि में कहा है, यथा--भैरव ने कहा हे मातः! कुलाचार ससिद्धि और भुक्ति मुक्ति प्रसिद्धि के लिये महिषी मर्दिनीका सकेत निर्देश कीजिये ॥

श्री देवीने कहा, सृष्टि स्थिति विनाशकी आदिभूत महेश्वरी को सर्व्व प्रयत्न से गुप्त रक्खे, मै तुम्हारे निकट उसका विषय वर्णन करती हूं, श्रवण करो। "ह्रीं महिषमर्दिनी स्वाहा" यह अति गुह्यतर विद्या सृष्टि स्थिति वि-

र्वसिद्धिबीजभूता सनातनी ॥ न कस्मैचित् प्रदातव्या क- थिता सिद्धिदायिनी । अत्यन्तगुरुभक्ताय शिष्याय यदि कथ्यते । तदाष्टवर्णं वक्तव्यं न बीजं नापि साधनम् ॥ साधरणी प्राणविद्या हृल्लेखा सिद्धिगोचरा । एतत्पूर्वस्थिता देवी गुरुसिद्धिप्रणाशिनी ॥ विशेषतः कलियुगे महासिद्धौ घदायिनी । गुरूणां कुलनाथानां महाशापप्रदायिनी ॥ जय दुर्गा त्वया प्रोक्ता परमा सिंहवाहिनी । त्रैलोक्यबीजभूतान्ते सा परा मर्दिनी कुलम् ॥ वरंवह्निप्रियायुक्ता देवाननसमन्वि ता । दत्ता ते परमा विद्या ङेयुक्ता हृदयान्विता ॥ सर्वत्र कुल शास्त्रज्ञे ! महाशापप्रदायिनी । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोप्तव्ये यं नवाक्षरी ॥ अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्ततः । नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोगायत्र्यमीरितम् ॥ देवता महिषघ्नीयं पूर्वं बीजं परापरा ॥

अथ अस्याः पूजाक्रमः । प्रातःकृत्यादि स्नानादिकं वि- धाय द्वारदेवताः पूजयेत् ॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

ऊर्द्ध्वोडुम्बरके विघ्नं महालक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ ततो द-

धान करती है, एवं सम्पूर्ण देवता और सम्पूर्ण सिद्धि की बीज स्वरूप है. मैंने जो तुम्हारे निकट यह सिद्धि दायिनी सनातनी विद्या वर्णनकी, किसी को भी इसका प्रदान न करना । जो व्यक्ति अत्यन्त गुरुभक्त है, उससे यदि कहना हो तो अष्टवर्ण मंत्र कहै, बीज वा साधन न कहै । यह विद्या कलियुग में महासिद्धि विधान करती है, और कुलनाथ गुरुगणको महाशाप प्रदान क- रती है । यह मंत्र अष्टलक्ष जप करै । जपका दशांश होम करना चाहिये । ना- रद इसके ऋषि, गायत्री इसका छन्द, महिषमर्दिनी इसकी देवता, और प- रापरा इसका पूर्व्वबीज है । इसकी पूजाका क्रम यह है, यथा—प्रातः कृत्या- दि और स्नानादि करके संपूर्ण द्वार देवताकी पूजा करै । तंत्रान्तर में कहा है, गूलरकी ऊर्द्ध्वशाखा में विघ्न, महालक्ष्मी और सरस्वती की, दक्षिणशा-

क्षिणशाखायां विघ्नं क्षेत्रे शमध्यतः । तयोः पार्श्वगते गंगा यमुने पुष्पवारिभिः ॥ देहल्या मर्चयेदस्त्रं प्रतिद्वारमिति क्रमात्। ततस्त्रिविधविद्योत्सारणं स्थापनं भूतशुद्धिं प्राणायामंच पूर्ववत् कृत्वा ऋष्यादिन्यासान् कुर्यात् । तदुक्तम् । नारदऋषिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीमहिषमर्दिनी देवता ह्रीं वीजं स्वाहा शक्तिर्महिषमर्दिनीकीलकं चतुर्वर्गे इत्यभिलप्य पूर्ववत् न्यसेत् । तदा करन्यासं कुर्य्याद् यथा । ओं महिषहिंसके ! हुं फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः। ओं महिषशत्रो ! सर्वे हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा ओं महिषं हिंसय हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट् । महिषं हन हन देवि ! हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं । ओं महिषमर्दिनि ! हुं फट् करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् । इति न्यस्य एवं पञ्चापश्चाङ्गेषु अङ्गन्यासं कृत्वा ऊर्द्ध्वोर्द्ध्वतालत्रयं कृत्वा दशदिग्बन्धनं कुर्य्यात् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

ओं महिषहिंसके ! हुं फट् हृदयाय नमो हृदि । ओं महिषशत्रो ! सर्वे हुं फट् शिर उदीरितम् ॥ ओं महिषं हिंसय हुं फट् शिखामन्त्र उदीरितम् । ओं महिषं हन हन देवि ! हुं फट् कवच इत्यपि ॥ ओं महिषमर्दिनि । हुं फट् अस्त्राणि शृणु भैरव ! ॥

खा में क्षेत्रेश की, मध्य में विघ्नकी और उनके पार्श्वगत गङ्गा एवं यमुना की पुष्पवारि द्वारा पूजा करके, देहली में अस्त्रकी अर्चना करै । इस प्रकार क्रमानुसार प्रति द्वारमें पूजा करनी चाहिये । अनन्तर तीनों विद्याका उत्सारण स्थापन, भूतशुद्धि और पूर्ववत् प्राणायाम् करके ऋष्यादि न्यास में प्रवृत्त होवे वही कहा है, यथा—नारदऋषि, गायत्रीछन्द, श्रीमहिषमर्दिनी कीलक, और चतुर्वर्ग विनियोग हैं, इस प्रकार करके, पूर्ववत् न्यास करै । तिस समय करन्यास करना चाहिये । यथा—ओं महिषहिंसके इत्यादि ।

ततः पूर्ववन्मातृकान्यासव्यापकन्यासौ कृत्वाकुलकुसुमादिना वृत्तषोड़शदलकेशराष्टदलाष्टवर्णयुक्तं वृत्तचतुरस्रं चतुर्द्वार कर्णिकाढ्यवीजात्मकं यन्त्रं निर्माय पुरतः सिंहासने संस्थाप्य तत्राधारशक्त्यादिपीठदेवताः च संपूज्य पूर्ववदर्घ्य स्थापनादिकं कृत्वा देवीं ध्यात्वा पूजयेत्

तदुक्तं तत्रैव ।

ध्यायेत् कालीं महादैत्य युद्धवासरसोन्मुखीम् । दक्षिणे चक्र खड्गौ च बाणशूलौ तथैव च ॥ वामे शंखं तथा चर्म धनुस्तर्जनमेव च । बिभ्रतीं कालतीव्रोरुमहिषाङ्गनिषेदुषीम् ॥ पीताम्बरधरां देवीं पीनोन्नतकुचद्वयाम् । जटामुकुटशोभाढ्यां पितृभूमिसुखावहाम्

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैः संपूज्य आवाहनादिकं कृत्वा षोड़शोपचारैः देवीं पूजयेत् । अङ्गमन्त्रैरङ्गानि संपूज्य कामा·

तदनन्तर पूर्ववत् मातृका न्यास और व्यापक न्यास करके कुल कुसुमादि द्वारा वृत्त षोड़शदल केशराष्ट दलाष्ट वर्णयुक्त वृत्तचारों ओर चतुर्द्वारकर्णिकाढ्य वीजात्मक यंत्रनिर्म्माण एवं सन्मुख सिंहासन में स्थापन पूर्व्वक उस में आधारशक्त्यादि पीठदेवताकी पूजा करे और पूर्व्ववत् अर्घ्यादि स्थापन सहित उसका ध्यान करे । उसी में कहा है, यथा—महादैत्य के सहित युद्धासवरसोन्मुखी देवी कालिका का ध्यान करे । उनके दक्षिण हस्त में चक्र खड्ग, शूल, और शव है, वाम हस्त में शंख, चर्म्म, धनु और तर्जन है । वह कालकी समान तीव्र प्रकृति और विपुल पराक्रम महिष के अंग में पद-न्यस्त कियेहुए हैं, उनके परिधेय पीतवर्ण हैं । उनके दोनों कुच पीनोन्नत हैं । जटा और मुकुट के संसर्ग से उनकी अतिशय शोभा प्रादुर्भूत हुई है । वह पितृ भूमिका सुख विधान करती हैं । इसप्रकार ध्यान करके मानस उपचार से पूजा करता हुआ आवाहनादि विधान के सहित षोडश उपचार से अर्चना करे । अङ्ग मंत्र द्वारा सम्पूर्ण अंगकी आराधना करके पूर्वोक्त

स्यां दिशि पर्य्यन्तं पूर्वोक्तप्रह्लादानन्दनाथादिगुरुपंक्तिं गुरुपरमगुरुपरमेष्टिगुरूंश्च पूजयेत् । पूर्वाद्यष्टदले आं दुर्गायै ईं वरवर्णिन्यै ऊं आद्यायै एं कनकप्रभायै ऐं कृत्तिकायै ओं अभयप्रदायै औं कन्यायै अः स्वरूपायै नम इति पूजयेत् ।

तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

आदौ दुर्गां ततो वर्णां ततोऽपि आद्यकाह्वयाम् । ततः कनकप्रभाञ्चैव कृत्तिकामभयप्रदाम् ॥ कन्यकाञ्च स्वरूपाञ्च यजे त्पूर्वादितः सुधीः ॥

कुलचूड़ामणौ ।

अष्टपत्रे यजेद्देवीं दुर्गाद्यां दीर्घपूर्विकाम् । दीर्घशब्देन अत्र पारिभाषिकंग्रहणम् । तेन आ ई ऊ ए ऐ ओ औ अः इति शारदाटीकाकारेणोक्तम् । ततो देव्या दक्षोर्द्ध्वहस्ततःपत्राग्रे यं चक्राय नमः वं खड्गाय नमः लं वाणाय नमः वं शूलाय नमः । वामोर्द्ध्वतः शं शङ्खाय नमः चं चर्मणे नमः हं तर्जनाय नमः सं धनुषे नमः इति पूजयेत् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

आयुधानि पलाशाग्रे यादिभिः क्रमशो यजेत् । ततोऽष्ट-

प्रह्लादानन्द नाथादि गुरु पंक्ति, गुरु परमगुरु और परमेष्टि गुरुकी पूजा करे। पूर्वादि अष्टदलमें "आं दुर्गायै" इत्यादि विधानसे अर्चना करनी चाहिये। तंत्रान्तरमें कहा है, आदिमें दुर्गाकी फिर वर्णाकी आद्याकी फिर तदनंतर यथाक्रमसे कनकप्रभा, कृत्तिका, अभयप्रदा, कन्याका और स्वरूपाकी पूर्वादि क्रमसे पूजा करे । कुलचूडामणि में कहा है, अष्टपत्र में दीर्घस्वर के सहित दुर्गाकी अर्चना करनी चाहिये । अनन्तर देवी के दक्षिण हस्त के ऊर्द्ध में पत्राग्र में "यंचक्राय" इत्यादि कहकर पूजा करे इसीसे यह कहाहै यथा— पात्राग्र में "यं" इत्यादि कहकर सम्पूर्ण आयुधकी क्रमानुसार पूजा करे ।

दलबाह्ये ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तीः प्रपूज्य चतुरस्रे पूर्वादिक्रमेण लोकपालान् तद्बहिस्तदस्त्राणि पूजयेत् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

ब्रह्माण्याद्यास्ततः पश्चात् लोकपालान् ततो बहिः । तदस्त्राणि सिद्धमन्त्री प्रयोगञ्च समाचरेत् ॥ ततः पुनर्देवीं संपूज्य यथाशक्ति जपं कृत्वा अर्घ्यजलपुष्पाभ्यां गुह्यातिगुह्यमन्त्रेण देव्या वामकरे जपं समर्प्य स्तुतिं कृत्वा प्रदक्षिणाष्टाङ्गप्रणामं विधाय देवीं स्वहृदि विसर्जयेदिति ।

अथ पुरश्चरणनियमो यथा ।

अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्ततः । ततो होमदशांशतर्पणं तद्दशांशाभिषेकं तद्दशांशब्राह्मणभोजनमिति पुरश्चरणाङ्गत्वाद् दक्षिणा । होमद्रव्यनियमो यथा ।

वशयेत्तिलहोमेन नरान्नरपतीनपि । सिद्धार्थैर्जुहुयान्मन्त्री

अनन्तर अष्टदल के बाहिर ब्राह्मणी इत्यादि अष्टशक्ति की पूजा करके चारों ओर पूर्वादि क्रमसे सम्पूर्ण लोकपालोंकी और उनके बाहिर अस्त्र समूहकी अर्चना करै। इसी से यह कहा है। यथा—प्रथम ब्राह्मणी इत्यादिकी फिर बाहिर सम्पूर्ण लोकपालोंकी और उनके अस्त्रसमूह का प्रयोग विधान करै। अनन्तर पुनर्वार देवीकी पूजा करके यथाशक्ति जप सहित अर्घ्यजल और पुष्प द्वारा गुह्याति गुह्य मंत्रसे देवीके वामहस्त में वह जप समर्पण और स्तव करके प्रदक्षिणा के सहित अष्टांग प्रणाम के पीछे देवीको अपने हृदय में विसर्जन करै ॥

पुरश्चरण का नियम यथा-अष्टलक्ष मंत्र से जप और उसका दशांश होम करके होम का दशांश तर्पण तर्पण का दशांश अभिषेक, अभिषेक का दशांश ब्राह्मणों को भोजन करावे। यह पुरश्चरण की अंगवशत दक्षिणा है, होम द्रव्य का नियम यथा—तिल द्वारा होम करने से राजागणों को वश में किया जाता है। सिद्धार्थ द्वारा होम करै, तो तत्क्षणात् मुक्त होता है।

रोगैर्मुच्येत तत्क्षणात् ॥ पद्मं हुत्वा यजेत् शत्रून् दूर्वाभि शान्तिमेव च। पलाशकुसुमैः पुष्टिर्धान्यैः धान्यश्रियं लभेत् ॥ काकपक्षैः कृतो होमो द्वेषं वितनुते नृणाम् । मरीचहोमैर्मरणं रिपुराप्नोति सर्वदा ॥ क्षुद्राभिचारभूतादीन् ध्यात्वा देवीं विनाशयेत् ।

कुलचूड़ामणौ ।

प्रयोगहोमसंशये सहस्रवसुसंज्ञकम् ॥ एषा विद्या महाविद्या न देया यस्य कस्यचित्। यदि भाग्यवशाद्देवि! कुलदेवी कुलोत्तमैः ॥ दीक्षिता कुलजाभिस्तु सिद्धिदा सैव नान्यथा ॥

गुप्तरहस्योक्तं महिषमर्दिन्याः कवचं लिख्यते ।

भैरव उवाच ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मर्दिन्याः कवचं शुभम् । यस्याराधनमात्रेण महाभैरवतां व्रजेत् ॥ देवैर्देवत्वाविषये सिद्धैः

पद्म द्वारा होम करने से सम्पूर्ण शत्रुओं को जीता जाता है । दूर्वा द्वारा होम करने से शांति प्राप्त होती है । पलाश कुसुम से पुष्टि और धान्य से धान्य समृद्धि लाभ होती है । काकपक्ष द्वारा होम करने से, लोकों के प्रति विद्वेष विस्तृत किया जाता है । मरीच द्वारा होम करने से शत्रु की सर्वदा मृत्यु होती है । और देवी का ध्यान करने से क्षुद्राभिचार भूतादि विनष्ट होजाते हैं । कुलचूड़ामणि में कहा है । प्रयोग और होम संशय में अष्ट सहस्र जप करे । यही विद्या महा विद्या है । जिस किसी को न देवे । हे देवी ! यदि भाग्य वश कुलोत्तम और कुलजागण कुल देवी को दीक्षिता करें । तो वही सिद्धि प्रदान करती हैं । इस के अन्यथा नहीं होती । अब गुप्तरहस्य कथित महिषमर्दिनी का कवच लिखते हैं ।

भैरव ने कहा हे देवि ! श्रवण करो महिषमर्दिनी का परम पवित्र कवच वर्णन करताहू, जिस की आराधना मात्र सेही महा भैरव होजाता है । देव

खचरसिद्धये । पन्नगैराक्षसैमर्त्यैर्मुनिभिः सेवितं सदा ॥ अस्याः कवचं महापुण्यं स्वयं वक्त्राद् विनिःसृतम् । भूप्रदेशे समे शुद्धे पुष्पप्रकरसंकुले । कल्पयेदासनं धीमान् कोमलं कम्बलासनम् ॥ वामे गुरुं पुनर्नत्वा दक्षिणे च गणाधिपम् । मध्ये तु मर्दिनीं नत्वा सर्वे रक्षन्तु मां सदा ॥ आग्नेय्यां नैर्ऋते पातु चैशान्यां वायवे तथा । उत्तरे पातु ललिता जिह्वाललनभीषणा ॥ कौमारी पश्चिमे पातु धनदा च दिशो दशः । शाकिनी डाकिनी पातु मर्दिनी पातु सर्वदा ॥ कल्पवृक्षः सदा पातु विघ्ने च रक्तदन्तिका । एतास्तु वरयोगिन्यो रक्षन्तु साधकाग्रतः ॥ पठित्वा पाठयित्वा च कवचं सिद्धिदायकम् । पठेन्मासत्रयं मन्त्री वारमेकं तथा निशि ॥ रात्रौ वारत्रयं जप्त्वा नाशयेद्विघ्नमेव च । जपन्मासत्रयं विद्यां राजानं वशमानयेत् ॥ भीतो भयात् प्रमुच्येत देवि ! सत्यं न

गण देवत्व सिद्धि के लिये, सिद्धगण खेचरत्व साधन के लिये, और पन्नग राक्षस, मर्त्य, और मुनिगण, स्व अभिलाष सम्पादनार्थ सर्वदा इस की सेवा करते हैं । यह महा पुण्य कवच स्वयं इनके मुख से निकला है । बुद्धिमान साधक, सम, शुद्ध और पुष्प समूह से समाकीर्ण भूमिप्रदेश में कोमल कम्बलासन कल्पना करके, वाम में गुरु, दक्षिण में गणाधिप और मध्य में मर्दिनी को प्रणाम करके कहै, सम्पूर्ण मेरी सर्वदा रक्षा करो । जिह्वा, ललना, भीषणा ललिता मेरे आग्नेयी, नैर्ऋत, ऐशान, वायव, और उत्तर में रक्षा करें । कौमारी पश्चिम में और धनदा दशोदिशाओं में रक्षा करें। शाकिनी, डाकिनी और मार्दिनी, मेरी सर्वदा रक्षा करें । कल्पवृक्ष और रक्तदन्तिका विघ्न के समय मेरी रक्षा करें । यह सब वरयोगिनी, साधक की अग्रतः रक्षा करें । यह सिद्धि दायक कवच पाठ करके और पाठ कराके, तीन महीने तक रात्रि में एकवार पाठ करे । रात्रिकाल के समय तीन वार जप करने से विघ्न नष्ट होते हैं । तीन महीने इस प्रकार जप करने से राजागणों को भी वश किया जाता है, और भय से मुक्त होता है ।

संशयः । अप्रकाश्य मिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ सत्कुलीनाय शान्ताय सुजने दम्भवर्जिते । दद्यात् स्तोत्रमिदं पुण्यं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥ कवचं यो न जानाति जपेन्महिषमर्दिनीम् । दारिद्र्यत्वं भवेत्तस्य सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ अनया सदृशी विद्या नास्ति तन्त्रेषु गोपिता ॥

इति कवचं समाप्तम् ।

अथ स्तुतिः तदुक्तं कुलचूडामणौ ।

भैरव उवाच ।

मच्चित्ते चर चण्डि ! चूर्णितदुराचारप्रचण्डासवे स्वैरं दारय भूवि दुर्धरदवद्रोहोर्मिमर्मास्पदः । तेनायं निरुपद्रुतो निरुपमश्रीपादपद्माटवीप्रान्तानन्तवशान्तरे मम मनोहंसश्चिरं नन्दतु ॥ १ ॥ हित्वा चण्डि ! हिरण्यदारणपटुप्रोद्दामदन्तांगुलिः स्फालत्कल्पसुमेरुसादरसटाटोपं नृसिंहं सुराः । मातस्तत् पशुपाशपेशलपटुश्रीपाद संसेविनं सेवन्ते करिवैरिणं किमरिभिर्भीतिर्भवत् सेविनाम् ॥ २ ॥ चण्डि ! त्वद्विषयान्तरचरणपदं श्रोत्रान्तरं चोद्धतं तत्त्वं पुरुष प्रकृत्यनुगतं ब्रह्मादिभिर्गीयते । तस्माद्देवि ! समस्तदैवत सुधासारैकधामस्फुरत् श्रीमत्पादसरोज चुम्बनपरं मामद्य सम्भावय ॥ ३ ॥ मन्निद्रा यदि वास्तु तत्कुलपथा-

---

यह सत्य कहता हूं । इस में संशय नहीं । यह कवच गुप्तरक्खे । प्रकाश न करें । जिस किसी को भी न देवे । सत्कुलीन, शांत, सुजन और दम्भ रहित व्यक्ति को ही यह सर्व कर्म फलप्रद पवित्र स्तोत्र प्रदान करें । जो व्यक्ति कवच न जानकर, महिषमर्दिनी का जपकरता है, मैं सत्य सत्य कहता हूं, उसको दारिद्र्य दुःख उपस्थित होता है । इस की समान सम्पूर्ण तंत्र में गुप्त विद्या दूसरी नहीं है । इति कवच समाप्त ॥

चाराद्वरं मास्तु वा कीर्त्तिः केशवकौशिकार्चनकरी नैवास्तु सत्सन्निधिः । मातर्ब्रह्महरिस्मरारिहुतभुग्दैत्यारिसेव्यापदश्रीमत्पादसरोजचिन्तनविधौ चित्तं सदैवास्तु नः ॥ ४ ॥ निर्दिष्टोऽस्मि यदि त्वदीयपदयुक्पूर्वापरीभावने निर्दिष्टस्य तदा ममापि विरलं किंवास्तु सिद्धास्पदम् । तस्माद्देवि ! कृपाभवाञ्छितभवं श्रीपादपद्मद्वयं मच्चित्ते क्षतसम्पदि प्रसरतु क्षेमङ्करि ! क्षम्यताम् ॥ ५ ॥ स्वात्मानं परिरभ्य भूतपतिरप्युन्मादमासादितः स्वैरं जीवनरक्षणे स च कृती नैवाभविष्यत् प्रभुः । देवाद्विच्युतचन्द्रचन्दनवनप्रागल्भगर्भस्रवन्माध्वीपूर्णभवत्पदैककमलामोदेन नास्वादितः ॥ ६ ॥ हाहा मातरनादिमोहजलधिव्याहारसिद्धाखिलब्रह्मानन्दरसाभिषेकानिरसस्वान्तोदरैर्मादृशः। अस्माकं सुरवृन्दनिर्भरमनस्तापाभिभूतिक्षमश्रीमद्भक्तिरसातिदुर्दिनपरीणाहः सदा सर्पतु ॥ ७ ॥ यत्पाद स्फुरदंशुजालजठराचण्डांशुकोटिस्खलत्स्वान्तध्वान्त विसारिनिर्मलचिदानन्दत्रयं दैवतम् । स्वर्गं संसृजते स्थितिं वितनुते सृष्टिं पुनर्लुम्पते प्रोद्भिन्नाञ्जननीलनीरजमहाचित्ते तदेवास्तु नः ॥ ८ ॥ या शश्वन्महिषच्छलस्फुरमिलद्गर्भाद्विधारस्फरद्रक्तान्तः प्रसरत्तमस्तमशिरो देत्यं समालम्बते । सा दुर्गा भयदुर्गदुर्गतिहरा लम्बान्तरत्रासिनी दृप्यद्दैवत वैरिमारणपटुर्जीयाज्जयाह्लादिनी ॥ ९ ॥ नृत्यत्खेटकचामरां जनचरच्चक्राद्यखड्गावर स्फायच्छैलशिलीं मुखोच्छलदनल्पाजिच्युतास्त्रायुधौ । वाग्झावात–विसर्पिनर्त्तिताशिरः साटोपदुष्टासुरत्रुट्यत्खण्डविखण्डिता खिलशकुन्तत्तृप्तिपपासाकुलैः ॥ १० ॥ काञ्चीकल्पविरामकालकालितां तीं-

नोरुसम्पादकोन्माद्यन्माहिषपतिर्य्यगायतशिरः शृङ्गान्तरालस्थले। वर्णैर्वर्णसुपत्रमध्यकलिते रक्षाश्रुती मातृभिः सेव्ये चारुवराङ्गने रणमुदा चूर्णायमानां स्मरेत्॥ ११॥ ऊर्द्ध्वाधःक्रमसव्यवामकरयोश्चक्रं दरं कर्तृका खेटं वाणधनुस्त्रिशूलभयकृन्मुद्रां दधानां शिवाम्। श्यामां नीलघनोच्चकुन्तलचयप्रोन्नद्धजूटास्फलद्धीरास्फाललसत्करालवदनां घोराट्टहासोद्भटाम्॥ १२॥ एवं ये भवदेवि! मूर्त्तिमनघां ध्यायन्ति दुर्गादिभिः। शक्राद्यैरपि पूजितां परपुरक्षोभादिकं कुर्वते। राज्यं शत्रुजयः सदर्थधिषणा काव्यामृतं देशिकः स्तम्भोच्चाटनमारणादिकृतिनां तेषां स्वयं जायते॥ १३॥ स्तोत्रं ते चरणारविन्दयुगलध्यानावधानान्मया मन्त्रोद्धारकुलोपचाररचितं गुप्तोपदेष्टा यदि। ये शृण्वन्ति पठन्ति देवि! सहसा श्रीमोक्षकामादयस्तेषां हस्तगता भवन्ति जगतां मातर्नमस्ते जयः। इति स्तुतिःसमाप्ता।

चितामध्ये च यो दद्याद् वलित्रितयमुत्तमम्। कालरात्रि महाकालि! कालिके! घोरनिस्वने!। गृहाणेमं वलिं मात र्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्। कालिकायं वलिं दत्त्वा पंचगव्यन सुन्दरि!॥ अस्थिसंप्रोक्षणंकृत्वा पीठमंत्रं न्यसेत्ततः। भूर्जे वा वटपत्रे वा तत्र पीठमनु न्यसेत्॥ पीठमास्तीर्यतस्मिन् वै न्यसे

हे कालिके! हे महाकालि! तुम्हीं कालरात्रि और तुम्हीं जगत्की जननी हो। मेरी यह वलि ग्रहण करो। और मुझ को अनुत्तम सिद्धि प्रदान करो। यह कहकर चिता में श्रेष्ठ विधान से तीन वलिप्रदान करें। हे सुन्दरि! वलिप्रदान करके पञ्चगव्य द्वारा अस्थि सम्प्रोक्षण पूर्वक पीठमंत्र न्यास करे। भोजपत्र वा वटपत्र पर पीठ मंत्र न्यस्त करना चाहिये। उस में पीठ आस्तीर्ण करके वीरासन न्यास करे। हे देवेशि उसी वीरासनद्वारा

द्वीरासनं ततः । वीरासनेन देवेशि ! रक्षां दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥ कूर्चयुग्मद्वयं देवि ! मायायुग्मं ततः परम् । कालिके ! घोर दंष्ट्रे ! च प्रचण्डे ! चण्डनायिके ! ॥ दानवान् द्रावयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयं ततः । शवशरीरमहाविघ्नं छेदय द्वितयं ततः॥ द्विठांते वर्मशस्त्रान्ते वीराद्वीऽयं मनुर्मतः । अनेन मंत्रेण लोष्टं पार्श्वे दिक्षु विनिः क्षिपेत् ॥ तन्मध्ये भैरवो देवो न विघ्नैःपरिभूयते । यदि प्रमादाद्देवेशि ! साधको भयविह्वलः ॥ ततस्तैस्तैः सुहृद्वर्गैं रक्षिता नाभिभूतयः । अर्केन्दुसितवात्या-लमूलैर्निर्मितवर्त्तिकाम् ॥ प्रदीपं तत्र संस्थाप्य अस्त्रं तत्र प्र-पूजयेत् । हते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते ॥ तद-धश्चास्त्रमन्त्रेण निखनेत् कुलदीपकम् । तत्तत् कल्पविधानेन भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् ॥ सोढ़ां वा तारकं वापि विन्यस्य पू-जनं ततः । मन्त्रध्यानपरो भूत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥ एका

चारोंओर रक्षा कल्पना करके प्रथम दोनों कूर्च अनन्तर "कालिका घोर-दंष्ट्रे प्रचण्ड चण्डे नायिके दानवान द्रावय हन हन शवशरीर महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा फट्" इस प्रकार प्रयोग करै । इसका नाम पीठ मन्त्र है। इस मंत्र द्वारा पार्श्व में और सम्पूर्ण दिशाओं में लोष्ट निक्षेप करै। तो फिर समस्त विघ्न आक्रमण नहीं करसक्ते । हे देवेशि ! साधक यदि प्रमाद वशतः भय विह्वल हो, तो उन्हीं २ सुहृद वर्गों से रक्षित होता है । फिर अभिभूत नहीं होता । तिस काल अर्केन्दु सित वात्याककी वर्त्तिका प्रदीप और अस्त्र तहां संस्थापन कर के पूजा करनी चाहिये । उस प्रदीपके विनष्ट होनेपर विघ्न परम्परा पराभूत करते हैं । उसके अधोभाग में अस्त्रमंत्र से कुलदीप खनित और तत्तत कल्प विधानानुसार भूत शुद्धि इत्यादि करे । एव षोढा अथवा तारक न्यास करके फिर पूजा में प्रवृत्त और मंत्र ध्यान परायण होकर अनन्य चित्त से जप करै । एकाक्षरी होनेपर बीस हजार

क्षरी यदि भवेत् दिक्सहस्रं ततो जपेत् । द्व्यक्षरे चाष्टसाहस्रं त्र्यक्षरे त्वयुतार्द्धकम् ॥ अतःपरन्तु मंत्रज्ञो गजांतकसहस्रकम् ॥ निशाप्रान्तं समारभ्य उदयांतं समाचरेत् ॥

अन्यत्रापि ।

पंचोपचारेण पुरतो देवतां परिपूजयेत् । यद्यसत्यभयं वापि नेत्रे वस्त्रेण बंधयेत् ॥ ततोऽर्द्धरात्रिपर्य्यन्तं यदि किञ्चिन्न पश्यति । जयदुर्गामनुनार्घ्यं तेनैव सर्षपान् क्षिपेत् ॥

जयदुर्गामन्त्रो यथा ।

तदुक्तं बृहन्मत्स्यसूक्ते ।

तारो दुर्गे युगं रक्षि ततो ढान्तं सलोचनम् । द्विठान्ता जयदुर्गेयं विद्या वेद्या दशाक्षरी ॥ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवःसृष्टिकारकः । पितॄणां स्वर्गतुष्ट्यर्थं मर्त्यानान्तु स रक्षकः ॥ भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः । इति

जप० द्व्यक्षरी होनेपर अष्टसहस्र त्र्यक्षरी होनेपर अयुतार्द्ध और इसके उपरांत आठहजार जपकरै । प्रातःकालसे उदयास्त पर्यंत जप करना चाहिये ॥

अन्यत्र भी कहा है-पंच उपचार से देवीकी भलीभांति पूजा करै । यदि असत्य भय हो, तो वस्त्र द्वारा दोनों नेत्र बंद करै । अनन्तर यदि अर्द्धरात्रि पर्यंत कुछ न देखा जाय, तो जय दुर्गा का मंत्र उच्चारण करके उसके द्वारा अर्घ्य प्रदान कर समस्त सरसों बखेरे । जय दुर्गा का मंत्र, यथा—वृहत् मत्स्यसूक्त में कहा है, प्रथम तार अर्थात् ओं फिर दुर्गे युग्म अर्थात् दुर्गे २ इसके उपरान्त सलोचन अर्थात् ह्रस्व इकार युक्त ढांत अर्थात् मूर्द्धन्य णकार सहित रक्षिपद प्रयोग करके फिर द्विठान्ता अर्थात् स्वाहा शब्द प्रयोग करै। तो "ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा" इस प्रकार मंत्र हुआ । यही जय दुर्गा का दशाक्षर मंत्र है यह मंत्र उच्चारण करके समस्त तिल बखेरे, तिस काल इस प्रकार कहना चाहिये "तिलोसि इत्यादि,, । यह कहकर ईशानादि दिशा

क्षिप्त्वा तिलानात्मचतुर्भागे शिवादितः ॥ ततः सप्तपदं ग-
त्वा पुनस्तत्रैव संविशेत् । देवं तत्रापि संपूज्य पूजयेन्मनुमु-
त्तमम् ॥ निर्भयः प्रजपेद् यावत् सिद्धिरग्रे भवेन्नरः । तत्
सत्यं कारयित्वा च वरयेद्वर मुत्तमम् ॥ यदा वलिं प्रार्थयतेनरं
कुंजर मेव वा । दिनांतरे च दास्यामि स्वीकृत्य च गृहं व्र-
जेत ॥ परेऽह्नि च ततो दद्यात् पिष्टेन नवकुंजरान् ॥

यवोद्भवेन धान्योद्भवेन वा । तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

यव चेत्रमयं वापि शालिधान्योद्भवंच वा । चन्द्रहासेन
विधिवत् तत्तन्मन्त्रेण घातयेत् ॥ चन्द्रहासेनार्द्धचन्द्राकृति
खड्गेन इत्यर्थः ।

नीलतन्त्रेऽपि ।

जपादौ तु वलिं दद्यात् पश्चादपि वलिं हरेत् । जपान्ते
जपमध्ये वा देहि देहीति भाषते ॥ तदापि च वलिं दद्यात्
महिषं छागमेव वा । न दिक्षु वीक्षणं किंचिन्न च बन्धुस-

के क्रम से आत्म चतुर्भाग में सम्पूर्ण तिल बखेरकर सात (पद) चलकर उसी स्थान में प्रवेश और देवता की पूजा करके मन्त्र की पूजा करै । अनंतर निर्भय होकर जबतक सिद्धि सन्मुख न हो तबतक जप करना चाहिये । सिद्धि सन्मुख होनेपर उसको सत्य पाशमें बद्ध करके वरकी प्रार्थना करै । तिस काल वह सिद्धि नर वा हस्ती जिस किसी बलिकी प्रार्थना करै, दिनान्तर में दिव कहकर स्वीकार करके गृह में गमन करै । दूसरे दिन यव वा धान्यके क्षोद्र द्वारा विनिर्मित नौ (९) कुञ्जर प्रदान करैं । तन्त्रान्तर में भी कहा है, यथा—चन्द्रहास अर्थात् अर्द्धचन्द्राकृति खड्ग द्वारा क्षेत्रमय वा शालि धान्यमय तत्तत् हस्त्यादि यथा विधानसे मन्त्रोच्चारण पूर्वक निपातित करै । नीलतंत्र में कहा है—जपके आदि में वलिप्रदान पूर्वक शेष में भी वलिप्रदान करै । और जप के अन्त में वा जप में जब दो दो कहै, तबही छाग वा मेष की बलि देवे । किसी ओर भी दृष्टिपात न करै । अथवा

मागमः ॥ जलादिदुर्गसर्पाणां दक्षिणां विभवावधि । गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा प्रदापयेत् ॥ सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किंचन । बहु मन्त्र रतः पुन्सः का कथा शिव एव सः ॥

श्मशानविशेषो यथा तदुक्तं कुलसद्भावे ।

श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः । जपेदयुतसंख्यन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ तत्रैव प्रेतमारुह्य प्रजपेन्मन्त्रमुत्तमम् । अयुतं मैथुनीभूत्वा विभीः सत्यपरायणः ॥ स याति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्लभाम् । आकर्षणवशीकारमारणोच्चाटनादिकम् ॥ स्तम्भनं मोहनञ्चैव द्रावणं त्रासनं तथा । वाग्मित्वञ्च धनित्वञ्च बहुपुत्रत्वमेव च ॥ बहुवल्लभतामेति सर्वप्रियत्वमेव हि । स याति खेचरत्वं च देवैरपि सुदुर्लभम् ॥

बंधबान्धवोंके सहित सम्मिलित न होवे । अकेलेही इस कार्यको करै । जिस प्रकार अपना विभव हो उसी के अनुसार गुरुको अथवा गुरुके पुत्रको वा गुरुकी स्त्री को दक्षिणा देनी चाहिये । यदि एकमात्र भली भांति सिद्ध न हो तो भी कुछ असाध्य नहीं होता । इस स्थल में बहुत मंत्र रत पुरुषका अधिक क्या वर्णन करें वह व्यक्ति साक्षात् शिव है ॥

श्मशान में और विशेष विधि है जिस किसी प्रकार से मंत्र साधन नहीं होता। कुलसद्भाव में कहा है–श्मशानालय में जाय मुक्त केश और दिगम्बर होकर सर्वकामार्थ सिद्धि के लिये अयुत जप करे । प्रेत के ऊपर आरोहण करके इसप्रकार अनुष्ठान में प्रवृत्त होवे । मैथुनीभूत और सत्य परायण होकर भय दूर करने के उपरान्त इस प्रकार अयुत जप करने से देवगणोंको भी सुदुर्लभ परम सिद्धि लाभ होती है । अधिक क्या ? आकर्षण, वशीकरण मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, द्रावण, त्रासन, वाग्मित्व, धनित्व, बहु पुत्र और बहु वल्लभा इन सम्पूर्ण की प्राप्ति होती है । इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण का प्रिय होजाता है, और देवगणोंको भी दुर्लभ खेचरत्व लाभ

न जरा न च मृत्युश्च न रोगो न च घातनम् । अथवा स भवे-
न्नित्यं कर्त्तुर्विंशतिसिद्धियुक् ॥ स्वदेहरुधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः
सहस्रशः । श्मशानेऽभ्यर्च्य देवींच वागीशसमतां व्रजेत् ॥

कालीतन्त्रे च ।

महाचीनद्रुमलतामज्जाभिर्विल्वपत्रकम् । सहस्रं देवीम-
भ्यर्च्य श्मशाने साधकोत्तमः ॥ तदा राज्यमवाप्नोति यदि नै-
वं पलायते । अनादित्यं यथा दृष्ट्वा लक्षं जपति भूमिपः ॥
निर्मलांच ततो दृष्ट्वा वश्यार्थमयुतं जपेत् ॥

भैरवतन्त्रेऽपि ।

श्मशाने योषितंमन्त्री संपूज्य ऋतुगां शुभाम् रक्तचन्द-
नसिक्ताङ्गीं रक्तवस्त्रैरलंकृताम् ॥ तावत् पुष्पैर्मनुं प्रोच्य ततो
ध्यायेच्च चण्डिकाम् । पूजयित्वा लभेत् राज्यं यदि न त्रित-
यायते ॥ मेषमहिषरक्ते न वाग्मित्वं तस्य जायते । धनित्वं

होता है । जरा (बुढापा) आक्रमण नहीं करसक्ता मृत्यु भी फिर नहीं होती, समस्त रोग भी फिर त्रिसीमा में नहीं आसक्ते, शोक दुःखादि भी दूर होजाते हैं । श्मशान में इस प्रकार शवपर आरोहण करके अपनी देह के शोणिताक्त सहस्र बिल्वपत्र से देवी की आराधना करने पर वागीशकी समान होजाता है । कालीतन्त्रमें भी कहा है ? महा माचीन द्रुमलताकी मज्जा सयुक्त सहस्र बिल्वपत्र द्वारा श्मशान में देवी की पूजा करके यदि पलाय न न किया जाय तो राज्य लाभ होता है । अनादिता में अवलोकन करके लक्ष जप करने से जिस प्रकार राजा होजाता है निर्म्मला में दर्शन करके तिसी प्रकार सम्पूर्ण वशीकरण के लिये अयुत जप करै । भैरवतन्त्र में भी कहा है, साधक श्मशान में ऋतुगामिनी सत्स्वभाव रमणी की पूजा करके रक्तचन्दन सिक्ताङ्गी रक्तवस्त्र मण्डिता चण्डिकाके ध्यानमें प्रवृत्त होवे । तो राज्य लाभ करने में समर्थ होता है । मेष और महिष के रक्त द्वारा पूजा करने से वाग्मित्व लाभ होता है, धनित्व प्राप्त होता है, और धर्म-सिद्धि

जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः । आज्ञया देवराजोऽसौ रूपेणैव मनोभवः। बलेन पवनो ह्येप सर्वतत्त्वार्थसाधकः । साधितं शोधितं मांसं सास्थि दद्यात् सदा वलिम् ॥ मूषमांसं छागमांसं मैषं माहिषमेव च। सर्वं सास्थि प्रदातव्यं तथा लोमसमन्वितम् ॥ अजीवं खनखच्छिन्नं केशं संमार्जनास्पदम्। निवेदयेत् श्मशाने च सर्वसिद्धिप्रदं भवेत्॥ नारीरजोऽन्वितं कृत्वा पत्राणां शतमुत्तमम् प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं ततो होमं समाचरेत्॥ युगानामयुतं देवि! पूजिता दक्षिणा भवेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरश्च जायते ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित् पृथिव्यां तस्य जायते।

कुलसद्भावेऽपि ।

रेतोयुक्तेन पुष्पेण चार्कस्यैव सहस्रशः । श्मशानेभ्यर्च्य

समुत्पन्न होती हैं । अधिक क्या ? वह वाक्य में वाक्पति की समान होता है । धन में कुवेर होता है । आज्ञा में देवराज होता है, रूप में कामदेव होता है, बल में पवन की समान होता है । इस प्रकार वह सर्व विध तत्त्वार्थ साधक होता है । साधित और शोधित करके अस्थिके सहित मांस वलि प्रदान करै । मूषिकमांस, छागमांस, समस्त लोम और अस्थि के सहित प्रदान करना चाहिये । अपने नखद्वारा छिन्न और समार्ज्जनास्पद केश श्मशान में निवेदन करने से सर्वसिद्धि प्रद होता है । नारी के रजोयुक्त करके शतविल्वपत्र प्रदान पूर्वक होम करै । प्रत्येक पत्र प्रदान के समय मंत्र प्रयोग करना चाहिये । अयुतवार जप करके पूजा करने से दक्षिणा देनी चाहिये । इस प्रकार दक्षिणा के अनन्तर फल सर्वविध सिद्धि सघटित होती हैं । इस के अतिरिक्त वाग्मी और धीर होजाता है, पृथिवी में भी फिर कुछ दुर्लभ नहीं होता । कुल सद्भाव में भी कहा है, शुक्र सयुक्त सहस्र अर्क पुष्प द्वारा श्मशान में देवी कालिका की पूजा करने से, सर्व

कालीं तु सर्वसिद्धिं स विन्दति ॥ धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोपित्प्रियः सुखी। जायते नात्र सन्देहो महाकालश्चो यथा ॥ श्मशाने शयनं यस्य शवासनगतः पुमान् असकृच्च जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदोभवेत् ॥ तर्पयेच्च शवास्ये तु रक्तमांसा दिभिस्तथा। त्रिभिर्मन्त्रमुदीर्यैवं सर्वसिद्धिर्भवेत्ततः ॥ तर्पये-च्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्व-कीयेन कचेन च मैथुनाजितयोषायाः कुलप्रक्षालनेन च मेष माहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि॥ मूषमार्जाररक्तेन वाग्मित्वं तस्य जायते। वलित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिश्च जायते ॥

भावचूडामणौ ।

सर्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातक नाशनम्। सर्वपाप हर-ञ्चैव सर्वरोग विनाशनम् ॥ नान्यत् सिद्धिप्रदंदेवि! वीर साधन वर्जितम्। महावलो महाबुद्धिर्महासाहसिकःशुचिः॥

विध सिद्धिलाभ होती है, एवं धनवान्, बलवान्, वाग्मी, सम्पूर्ण स्त्रियों का प्रिय और सुखी होता है। महा काल ने स्वयं यह कहा है, अतएव इस विषय में किसी प्रकार सन्देह नहीं। जो व्यक्ति शवके आसन और श्मशान में शयन करके वारम्वार जप करता है, वह सर्वसिद्धि प्रद होता है। रक्त और मांसादि द्वारा शव वदन में तर्पण करनेसे सर्व विधि सिद्धि लाभ होती है। तीन मंत्र उच्चारण करने चाहिये। अधिक क्या? रक्त धारायुक्त दुग्ध द्वारा शुक्र द्वारा, अपने कच द्वारा, मैथुन प्रसक्त रमणी के कुल प्रक्षालन द्वारा, मेष, महिष, और मनुष्य रक्त द्वारा एवं मूष और मार्ज्जार के शोणित द्वारा तर्पण करने से वाग्मित्व वलशालित्व, और सर्व सिद्धि का अधीश्वरत्व उत्पन्न होता है, भाव चूडामणिमें भी कहा; हे देवि! वीर साधन जिस प्रकार साक्षात् कार से सर्वसिद्धि प्रदान करता है, संपूर्ण महा पातक नष्ट करताहै, समस्त पाप हरण करताहै और संपूर्ण रोगों को दूरकरताहै इस प्रकार अन्य किसी सिद्धिसे संभव नहीं। महा वल महा बुद्धि महासाहसिक

महास्वच्छो दयावांश्च सर्वभूतहितेरतः । तेषां कृते महादेवि! वीरसाधन मुत्तमम् ॥

वृहत्श्रीक्रमसंहितायाम् ।

नास्मात्परतरं किंचित्त्वरं सिद्धिदायकम् । सर्वसिद्धि र्भवत्येव अहोरात्रे कलौयुगे ॥ द्वापरे तच्च मासेच त्रेतायां वत्सरेणच । कृते च दशभिर्वर्षैः सत्ये सिद्धिर्न संशयः ॥

अथाष्टम्यां चतुर्दश्यां कुजवारे वा प्रथमप्रहराभ्यंतरे गुरुं देवीञ्च नत्वा वीरवेशो यात्रां कुर्यात् ॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

धटी वन्धनवस्त्रंच मूलेन परिधाय च । तदार्थेन पुनर्वस्त्रं मूलेनाङ्गविलेपनम् ॥ कृतोष्णीशश्च मूलेन सिंदूरेणोर्द्ध्व पुण्ड्रकम् । इष्टदेवं गुरुं नत्वा यात्रा प्रहरमध्यतः ॥ कार्य्या च साधकैः सार्द्धं हृदि मंत्रं परामृषन् । अक्षुब्धो भुक्तभो-

---

शुचि, महास्वच्छ, दयावान, और सर्व्वभूतों के हित निरत, व्यक्तिगणों के लिये वीर साधन की सृष्टिहुई है । वृहत् श्रीक्रम संहितामें भी कहा है, इसकी अपेक्षा शीघ्र सिद्धिदायक और कुछ नहीं है । कलियुग में अहोरात्रि के मध्यमें ही सर्वविध सिद्धिलाभ होती है । द्वापरमें एकमास में त्रेता में एक वर्ष में, और सत्ययुग में दशवर्ष में सिद्धिलाभ होती है । इस में सन्देह नहीं । अनन्तर अष्टमी में वा चतुर्दशी में मङ्गलवार में प्रथम प्रहरके मध्य में गुरु और देवीको प्रणाम करके, वीर वेश में यात्रा करे । तन्त्रांतर में कहा है, मूलमंत्रमें धटी वस्त्र परिधान, मूलमंत्र में अङ्ग विलेपन, मूलमंत्र में उष्णीष बन्धन, और मूलमंत्रमें ही सिंदूरका ऊर्द्ध पुण्ड्रक विधान करके इष्टदेवता और गुरुको प्रणाम एवं हृदयमें मन्त्र परामर्शन पूर्वक साधक गणों के समभिव्याहार में प्रहर में यात्रा करे । यदि वीर साधक हो, तो किसी प्रकार क्षुब्ध न होवे,

ज्यस्तु यदि स्याद्वीरसाधकः ॥ दिव्यो वा पशुभावो वा भुक्त्वा साधन माचरेत् ॥

अथ साधनस्थानम्।

तदुक्तं भावचूडामणौ।

शून्यागारे नदीतीरे पर्वते निर्जनेऽपि वा । बिल्वमूले श्मशाने वा तत्समीपे वनस्थले ॥ अष्टम्यांच चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ भौमवारे तमिस्रायां साधयेत् सिद्धि मुत्तमाम् । उपचारं समादाय कुलामृतरसन्तथा ॥ गुड़ार्द्रक रसेनैव सुरा तु ब्राह्मणस्य च । गौड़ी च क्षत्रियस्यैव माध्वी वैश्यस्य तत्र वै ॥ कदलीमधुसंमिश्रश्चानत्वचि रसैः सुरा । सर्वं शूद्रस्य संप्रोक्तं यत्र वा तद्रुचिर्भवेत् ॥ गृहीत्वा तत्र दातव्यं सर्वं नैव च संस्पृशेत् ॥

अन्यत्रापि ।

द्विजानामनुकल्पन्तु न साक्षाच्च विकल्पितम् ॥

भोजन करले । दिव्यही हो, अथवा पशुभावही हो, भोजन करके साधन में प्रवृत्त होवे ।

साधन स्थान यथा–भावचूडामणिमें कहा है, शून्यागार, नदीतीर, पर्वत निर्जन, बिल्वमूल, श्मशान, इसके समीप का प्रदेश, अथवा वनस्थल इन सम्पूर्ण स्थान में दोनों पक्षकी अष्टमी वा चतुर्दशी में भौमवार में रात्रि में उत्कृष्ट सिद्धि साधन में प्रवृत्त होवे । उपचार, कुलामृतरस, ब्राह्मण होने से गुड़ और अदरकरस निर्मित सुरा, एवं क्षत्रिय गौडी और वैश्य माध्वी सुरा समभिव्याहार में लेवे । शूद्रके पक्ष में कदली और मधु मिश्रित कुकुरत्व को रस निर्मित सुरा प्रशस्त है । यह समस्त ग्रहण करके वहां देवे । स्वयं कुछ स्पर्श न करै । अन्यत्र भी कहा है, द्विजगणों का अनुकल्प

तदुक्तं रुद्रयामले।

सत्यक्रमाच्चतुर्वर्णैः क्षीराज्यमधुपिष्टकैः । त्रेतायां पूजिता देवी घृतेन सर्व वर्णिभिः ॥ मधुभिः सर्व वर्णैश्च पूजयेद् द्वापरे युगे । पूजनीया कलौ देवि ! केवलैर्वासवैश्च तैः ॥ मासभक्तंच शुद्धान्नं धूपदीपादिकं तथा । तिलाः कुशाश्च सर्वाश्च स्थापनीयाः प्रयत्नतः ॥

अथ पूर्वोक्तान्यतमस्थानं गत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय पूर्व मुखो मूलान्ते फट्कारं दत्त्वा यागभूमिं प्रोक्ष्य गुरुगणेशवटुकयोगिनीभ्यः पूर्वादितः संपूज्य पूर्वोक्तविधानेन मंत्रं भूमौ विलिख्य ये चात्रेत्यादि पूर्वोक्तमंत्रेण भूमौ पुष्पांजलित्रयं दत्त्वा प्रणम्य श्मशानाधिपतिभ्यः पूर्ववद्बलिं दत्त्वा अघोर मंत्रेण शिखाबन्धनं विधाय स्वदर्शन मंत्रांते आत्मानं रक्ष रक्षेति हृदि हस्तं दत्त्वा हृद्रक्षां विधाय पूर्वोक्तक्रमेण भू-

---

साक्षात् विकल्पित नहीं । रुद्रयामल में कहा है, सत्ययुग में चारों वर्ण यथा क्रमसे क्षीर, आज्य, मधु और पिष्टक द्वारा, त्रेतामें सम्पूर्ण वर्णही घृत द्वारा द्वापर में मधुद्वारा, और कलियुग में संपूर्ण वर्ण केवल आसव द्वारा देवी की पूजा करैं । मांस भक्त शुद्धान्न, धूप और दीपादि एवं तिल और संपूर्ण कुश यत्न सहित स्थापन करने चाहिये ।

अनन्तर पूर्व कथित अन्यतम स्थान में गमन करके सामान्य अर्घ्य विधान के सहित पूर्व मुख बैठ मूलान्त में फट्कार दान पूर्वक यागभूमि प्रक्षालन और पूर्वादि दिशा में गुरु, गणेश, बटुक और योगिनी गणो की पूजा करके पूर्वोक्त विधानानुसार भूमि में तीन पुष्पाञ्जलि दान और प्रणाम करै । फिर श्मशान के अधिपति गणों को पूर्व की समान बलि देकर अघोर मन्त्र से शिखा बंधन विधान और स्वदर्शन मन्त्र के अन्त में आत्मा की रक्षा कर, इत्यादि कहकर, हृदय में हाथ लगाय हृद् रक्षा करै । फिर पूर्वोक्त

तशुद्ध्यादिकं विधाय जयदुर्गामंत्रेण दिक्षु सर्षपं विकीर्य्य तिलोऽसीत्यादिना तिलान् विकीर्य्य विहितासन समीपं गच्छेत् ॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

गुरुपूजादिकं सर्वं पूर्वोक्तमन्त्रमुच्चरेत् । ये चात्रेत्यादि मंत्रेण भूमौ पुष्पांजलिं क्षिपेत ॥ श्मशानाधिपतीनांतु पूर्ववद्बिलमाहरेत् । अघोरास्त्रेण मंत्रेण शिखाबन्धनमाचरेत् ॥ स्वदर्शनेन वा रक्षामुभाभ्यां परिकल्पयेत् । मायास्फुरद्वयं वर्म प्रस्फुरद्वितयं पुनः घोरघोरतरेत्यन्ते तनुरूपपदं ततः । चटयुग्मं तदन्ते च प्रचटाद्वितयं पुनः ॥ हनयुग्मं समुद्धृत्य सहस्रारस्वरूपकम् । वर्मास्त्रांतं महामंत्र सुदर्शनं प्रकीर्त्तितम् ॥ भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासजालं प्रविन्यसेत् । जयदुर्गाख्येन मनुना सर्षपान् दिक्षु निःक्षिपेत् ॥

क्रमसे भूतशुद्ध्यादि करके और जय दुर्गा मन्त्र से दशोंदिशाओं में सरसों बिखेर, तिलोसि इत्यादि । मन्त्र से सम्पूर्ण तिल फेंक कर, विहित आसन के समीप गमन करैं ।

तन्त्रान्तर में भी कहा है । सम्पूर्ण गुरु पूजादि में पूर्वोक्त मन्त्र उच्चारण और चात्र इत्यादि मंत्र से भूमि में पुष्पाञ्जलि निक्षेप और श्मशानाधिपतिगणों के उद्देश से पूर्व की समान बलि आहरण, अघोरास्त्र मन्त्र से शिखा बन्धन समाचरण और स्वदर्शन मन्त्र से रक्षा कल्पना करनी चाहिये । ह्रीं ह्रीं स्फुर स्फर हुं हुं प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतरा चट चट प्रचट प्रचट हन हन फट्" । इसकाही नाम स्वदर्शन मन्त्र है । अनन्तर भूतशुद्धि करके, न्यास जाल प्रविन्यस्त और जय दुर्गा मन्त्र से सम्पूर्ण सरसों सकल दिशाओं में बखेरे ।

अथ विहितशवो यथा तदुक्तं भावचूडामणौ ।

यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोमृतम्। रज्जुबद्धं सर्पदष्टं चण्डालं चाभिभूतिकम्॥ तरुणं सुन्दरं शूरं रणे नष्टं समुज्ज्वलम्। पलायनविशून्यन्तु संमुखे रणवर्त्तिनम्॥ एतेषामन्यतमं ग्राह्यमित्यर्थः।

अथ निषिद्धशवो यथा तदुक्तं तत्रैव ।

स्वेच्छामृतं द्विवर्षं च वृद्धं स्त्रियं द्विजं तथा। अन्नाभावे मृतं कुष्ठिनं सप्तवर्षार्द्धकं तथा ॥ एवं चाष्टशवं त्यक्त्वा पूर्वोक्तान्यतमं शवम् ॥ गृहीत्वा मूलमंत्रेण पूजास्थानं समानयेत् ॥

नीलतन्त्रे च ।

चाण्डालं चाभिभूतं वा शीघ्रं सिद्धिफलप्रदम्।

कालीतन्त्रेऽपि ।

ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम् ।

अथ शवसमीपं गत्वा ओं फट् इति शवमभ्युक्ष्य ओं हुं

विहित शव यथा—भावचूडामणि में कहा है यष्टिविद्ध, शूलविद्ध, खड्ग विद्ध, जलमृत, रज्जुबद्ध, सर्पदष्ट, चण्डाल, तरुण सुंदर शूर जो पलायन न करके सन्मुख समर में युद्ध करके विनष्ट हुआ हो ऐसे व्यक्तियों में से अन्यतम व्यक्तिको आसनार्थ ग्रहण करे ॥

निषिद्ध शव यथा—उसी में यह कहा है अपनी इच्छा से मराद्वि वर्ष वृद्ध, स्त्री, द्विज, अन्न के अभाव से मरा, कुष्ठी, सप्तवर्षार्द्धक, यह अष्टविध शव त्याग करके पूर्वोक्त अन्यतम शव ग्रहण और मूलमंत्र से उसको पूजास्थान में लावे नीलतंत्र में कहा है—चाण्डाल अथवा अभिभूत यह दो शव शीघ्र सिद्धिफल प्रदान करते हैं । कालीतंत्र में कहा है—ब्राह्मण और गोमय वर्जन करके वीरसाधन में प्रवृत्त होवे । अनन्तर शवसमीप गमन और 'ओं फट्' मंत्र से शवको अभ्युक्षण और 'ओं हुं मृतकाय' इत्यादि मंत्र से

मृतकाय नमः फट् इति शवोपरि पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्पर्शपूर्वकम् वक्ष्यमाणमन्त्रेण प्रणमेत् ।

तदुक्तं भावचूडामणौ ।

प्रणवाद्यस्त्रमन्त्रेण शवञ्च प्रोक्षणञ्चरेत् । प्रणवं कूर्चबीजञ्च मृतकाय नमः फट् ॥ पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत स्पर्शपूर्वकम् ॥ हे वीर ! परमानन्द ! शिवानन्द ! कुलेश्वर !! आनन्दभैरवाकार ! देवीपर्यङ्कसंस्थित ! ॥ वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने । प्रणम्यानेन मन्त्रेण क्षालयेत् तदनन्तरम् ॥ अथ सुगन्धिजलेन शवं सुस्नाप्य वाससा जलमुद्धृत्य धूपैर्धूपिते गन्धचन्दनादिभिः शवं प्रलिप्य तत् कटिदेशे धृत्वा पूजास्थानं समानयेत् ।

तदुक्तं नीलतन्त्रे ।

तारं कूर्चं मृतकाय नमोऽन्तं मन्त्रमुद्धरेत् । शवस्नपनम-

शव के ऊपर तीन पुष्पांजलि प्रदान एवं स्पर्श पूर्वक वक्ष्यमाण मंत्र से प्रणाम करे । भावचूडामणि में कहा है । यथा—प्रणवादि अस्त्रमन्त्र से शवको प्रोक्षण 'ओं हुं, इत्यादि मंत्र से तीन पुष्पांजलि दान और स्पर्श करके प्रणाम करै । हे वीर ! हे परमानन्द ! हे शिवानन्द ! हे आनन्द भैरवाकार ! मैं वीर और कुलेश्वर देवीके पर्यंकमें अवस्थिति करके तुम्हारी शरणागत हुआ हूं । तुम चण्डिका की अर्चना में उत्थान करो । इस मंत्रसे प्रणाम करके तिसके पीछे उसका अभ्युक्षण करे ॥

अनन्तर सुगन्धित जल से भली भांति शवको स्नान कराकर और वस्त्र द्वारा उत्तम रूप से पोछकर धूप द्वारा धूपित और गंध चंदनादि द्वारा प्रलिप्त करके उसकी कमर पकडकर पूजास्थान में लावे । नीलतंत्र में कहा है यथा—'ओं हुं मृतकाय नमः' यह मंत्र उचारण करै । यह शवके स्नान कराने का मंत्र है । धूप द्वारा धूपित और गंधादि द्वारा विलिप्त करने से

न्त्रोऽयम् इत्यादि । धूपैः सुधूपितं कृत्वा गन्धादिना प्रलिप्य च । रक्ताक्तो यदि देवेश ! भक्षयेत् कुलसाधनम् ॥ ततः कुशशय्यायां पूर्वशिरः कृत्वा शवं स्थापयेत् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

कुशशय्यां परिस्कृत्य तत्र संस्थापयेत् शवम् । एलालवङ्गकर्पूरजातीखदिरसारकैः । ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवं कुर्य्यादधोमुखम् ॥ स्थापयित्वा तस्य पृष्ठं चन्दनेन विलेपयेत् । बाहुमूलादि कट्यन्तं चतुरस्रं विभाव्य च ॥ मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम् । ततश्चैनेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत् ।

तन्त्रान्तरे च ।

गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत् कटि देशतः । यद्युपद्रावयेदस्य दद्यान्निष्ठीवनं शवे ॥ पुनः प्रक्षालनं कृत्वा जपस्थानं समानयेत् ॥ ततो द्वादशांगुलमानानि यज्ञकाष्ठानि दशदिक्षु संस्थाप्य पूजयेत् तत्र इन्द्रादिदशदेवताः ।

यदि रक्ताक्त हो तो कुलसाधक को भक्षण करती है । अनंतर कुशशय्यामें शवको पूर्वशिरा करके स्थापन करे । नीलतंत्र में कहा है. यथा—कुशशय्या स्वच्छ करके उस में शवको स्थापन पूर्वक इलायची.लवङ्ग (लोंग) कर्पूर चमेली, और खदिरसार द्वारा ताम्बूल प्रस्तुत करके शव के मुख में देवे । उसका अधोमुख और उसका पृष्ठदेश चन्दन द्वारा अनुलिप्त करे । अनंतर बाहुमूल से कटि पर्यंत चारोंओर भावना करके मध्य में दलाष्टक समन्वित चतुर्द्वार पद्म भावना और कम्बलान्तरित आसन विन्यस्त करना चाहिये । तन्त्रान्तर में कहा है । शव के समीप में गमन करके कटिदेश धारण करे । यदि उपद्रव करे, तो उसके गात्र में निष्ठीवन देवे । पुनर्वार प्रक्षालन करके जपस्थान में लावे । अनन्तर द्वादश अंगुल परिमाण यज्ञकाष्ठ सम्पूर्ण दिशाओं में स्थापन करके उसमें इन्द्रादि दश देवताकी पूजा करनी चाहिये ।

विषमिन्द्राय संलिख्य सुराधिपतये ततः । इमं बलिं गृह युगं गृह्णापययुगं ततः ॥ विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ ठद्वयम् । अनेन मनुना पूर्वं बलिं दद्याच्च सामिषम् ॥ साध्य नामादिकम् कृत्वा पूर्ववद्बलिमाहरेत् । सर्वेषां लोकपालानां ततः साधकसत्तमः ॥

तत्र अयं क्रमः । लं इंद्राय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय वज्रहस्ताय शक्तिपारिषदाय सपरिवाराय नमः । इति संपूज्य बलिं दद्याद् यथा । ओं इंद्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा । एष बलिः इन्द्राय नमः वं वह्नये तेजोऽधिपतये मेषारूढाय शक्तिहस्ताय इत्यादि पूर्ववत् संपूज्य बलिं दद्यात् । ओं वह्नये तेजोऽधिपतये इत्यादि पूर्ववत् । यं यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय इत्यादिना संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन ओं यमाय प्रेताधिपतये इत्यादि पूर्ववत् क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये स्ववाहनाय खड्गहस्ताय इत्यादिं पूर्ववत् संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन ओं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये इत्यादि पूर्ववत् वं वरुणाय जलाधिपतये मकरवाहनाय पाशहस्ताय इत्यादिना पूर्ववत् । वं वायवे वाय्वधिपतये अंकुशहस्ताय मृगवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन । ओं वायवे वाय्वधिपतये इत्यादि पूर्ववत् । ओं कुबेराय य-

---

"विषं इन्द्राय„ इत्यादि मंत्रसे पूर्वकी ओर आमिष सहित बलि देवे । साध्य नामादि करके पूर्व की समान सम्पूर्ण लोकपालों के उद्देश से बलिप्रदान करनी चाहिये । बलिप्रदान का मंत्र यह है "लं इन्द्राय„ इत्यादि इसप्रकार सम्पूर्ण लोकपालों की बलि आहरण करके उनके अधिष्ठात्री देवता इत्यादि

क्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय इत्यादिना संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन। ओं कुवेराय यक्षाधिपतये इत्यादिना पूर्ववत् ओं ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ओं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन ओं अनन्ताय इत्यादि पूर्ववत्। इन्द्रेशानयोर्मध्ये ओं ब्रह्मणे लोकाधिपतये पद्महस्ताय हंसवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् संपूज्य ओं ब्रह्मणे इत्यादिना पूर्ववत् शवाधिष्ठातृ देवताभ्यो बलिं दद्यात् चतुःषष्टियोगिनीभ्यो नमः। डाकिनीभ्यो नमः।

अथ पूजासामग्रीं समीपे भुवि चोत्तरसाधकञ्च संस्थाप्य मूलांते ह्रीं फट् शवाय नमः इत्यादिना आसनं संपूज्य मूल मुच्चरन् अश्वारोहणक्रमेण शवोपरि उपविश्य स्वपादतले कुशान् दत्त्वा शवकेशान् प्रसार्य्य जुटिकान् बध्वा गुरुं देवींच नमस्कृत्य प्राणायामषड़ङ्गन्यासान् कृत्वा पूर्वोक्तवीरासनं दशदिक्षु मनुना लोष्ट्राणि निःक्षिप्य संकल्पं कुर्य्यात्

को भी बलिप्रदान करे। उसका मंत्र यह है। "चतुः षष्टि योगिनीभ्योनमः इत्यादि॥

अनन्तर समीपस्थ भूप्रदेश में पूजासामग्री और उत्तर साधक को स्थापन मूलान्त में "ह्रीं फट् इत्यादि" मंत्र से आसन की पूजा, मूलोच्चारण के सहित अश्वारोहण और क्रमसे शवके ऊपर बैठ, अपने पादतल में सम्पूर्ण कुश दान शवके केशपाश प्रसारण शिखा बन्धन, गुरु और देवीको नमस्कार प्राणायाम और षडङ्गन्यास समाधान पूर्वोक्त वीरासन बंधन और दशोदिशाओं में मंत्र द्वारा लोष्ट्र निक्षेपकरके संकल्प करना चाहिये। भावचूड़ाम-

तदुक्तं भावचूडामणौ ।

पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम् । समानगुण सम्पन्नं मान्त्रिकं विजितेंद्रियम् ॥ अभिषेकविधिं ज्ञात्वा देवतां भावयेत् पराम् संस्थाप्यात्मानमभ्यर्च्य स्वमन्त्रान्ते ततः परम् ॥ फडित्यनेन मन्त्रेण तत्राश्वारोहणं विशेत् । कुशान् पादतले दत्त्वा शवकेशान् प्रसार्य्य च ॥ दृढं निबद्ध्य जुटिकां कृतसङ्कल्पसाधकः ॥

तन्त्रान्तरे ।

शवोपरि समारुह्य गुरुपूजादिकं चरेत् । प्राणायामं विधायाथ दिक्षु लोष्ट्राणि निःक्षिपेत् ॥

ततः स्ववामे शवसमीपे अर्घ्यं पात्रादिकं संस्थाप्य शवजुटिकायां पीठपूजादिकं कृत्वा षोड़शोपचारैः देवीं संपूज्य शवमुखे देवीं कारणेन त्रिः सन्तर्पयेत् ।

तदुक्तं भावचूड़ामणौ ।

तत्र देवीं सुसंपूज्य उपचारैः सुविस्तरैः ।

णि में कहा है । यथा-समीप में पूजा द्रव्य और दूर में उत्तरसाधक को स्थापन करे । यह उत्तर साधक समान गुण सम्पन्न है मंत्रवित् और जिति तेन्द्रिय हों अनन्तर स्वम प्रांतर में आत्मा की अभ्यर्चना करके फिर "फट्" इत्यादि मंत्र से अश्वारोहण क्रमसे उपवेशन, पादतल में सपूर्ण कुश दान, शव के केशकलाप प्रसारण और दृढ़प्रकार से शिखा बंधन करके, कृत सकल्प होवे । तन्त्रांतर में कहा है, शवके ऊपर आरोहण और गुरु पूजादि समाचरण एवं प्राणायाम विधान करके सम्पूर्ण दिशा में समस्त लोष्ट्र निक्षेप करे । अनन्तर अपने वाम में शवसमीप में अर्घ्यपात्रादि स्थापन और शव की जुटिकामें पीठ पूजादि विधान षोडशउपचार से देवी की आराधना करके, शवके मुख में कारण द्वारा तीनबार तर्पण करै । भावचूड़ामणि में कहा है । यथा-वहां देवी की सम्यक् प्रकार से पूजा करके सुविस्तर उपचार

नीलतन्त्रे च ।

शवास्ये विधिवद्देवीं देवताप्यायनं ततः ।

ततः शवादुत्थाय तस्य संमुखं गत्वा वक्ष्यमाणमन्त्रं पठेत्।

तदुक्तं भावचूड़ामणौ ।

उत्थाय संमुखे स्थित्वा पठेद्भक्तिपरायणः । ओं वशो मे भव देवेश ! ममामुकपदं ततः ॥ सिद्धिं देहि महाभाग ! कृताश्रमपदां वर ! । ततो मूलमन्त्रं पठन् पट्टसूत्रेण शवपादद्वयं दृढ़ं निबध्य वक्ष्यमाणमन्त्रेण रक्तचन्दनादिना त्रिकोणचक्रं विलिखेत् ।

तदुक्तं तन्त्रान्तरे ।

मूलमन्त्रमुच्चरन् मन्त्री शवपादद्वयं ततः । पट्टसूत्रेण बध्नीयात् येनोत्थातुं न शक्यते ॥

भावचूड़ामणौ ।

ओं भीमभीरुभयद्राव ! द्रव्यलोचनभावक ! त्राहि मां देवदेवेश ! शवानामधिपाधिप ! ॥ इति पादतले तस्य त्रि

द्वारा इत्यादि । नीलतंत्र में भी कहा है—शवके मुख में यथा विधान से देवी और देवता का आप्यायन करके, शव से उठे । उसके सन्मुख गमन पूर्वक वक्ष्यमाण मंत्र पाठ करे । भावचूड़ामणि में कहा है । यथा—उठ और सन्मुख में अवस्थान करके भक्तिपरायण होकर " ओं शवो में " इत्यादि मंत्र-पाठ करे । अनन्तर मूल मंत्र पाठके अन्त में पट्टसूत्र द्वारा शवके दोनों पाद दृढ़ रूप से बांध कर वक्ष्यमाण मंत्र से रक्त चन्दनादि द्वारा त्रिकोण चक्र लिखना चाहिये । तंत्रांतर में कहा है, यथा—साधक मूल मंत्र उच्चारण करके, फिर पट्ट सूत्र द्वारा शव के दोनों पाद दृढ़प्रकार से बांधे । तो शव फिर उठ नहीं सकता, भावचूड़ामणि में कहा है, " ओं भीम भीरुभयो " इत्यादि मंत्र से शव के पदतल में त्रिकोण चक्र लिखे । तो शव उठनहीं

तदुक्तं भावचूडामणौ ।

पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम् । समानगुण सम्पन्नं मान्त्रिकं विजितेंद्रियम् ॥ अभिषेकविधिं ज्ञात्वा देवतां भावयेत् पराम् संस्थाप्यात्मानमभ्यर्च्य स्वमन्त्रान्ते ततः परम् ॥ फड़ित्यनेन मन्त्रेण तत्राश्वारोहणं विशेत् । कुशान् पादतले दत्वा शवकेशान् प्रसार्य्य च ॥ दृढं निबद्ध्य जुटिकां कृतसङ्कल्पसाधकः ॥

तन्त्रान्तरे ।

शवोपरि समारुह्य गुरुपूजादिकं चरेत् । प्राणायामं विधायाथ दिक्षु लोष्ट्राणि निःक्षिपेत् ॥

ततः स्ववामे शवसमीपे अर्घ्य पात्रादिकं संस्थाप्य शवजुटिकायां पीठपूजादिकं कृत्वा षोड़शोपचारैः देवीं सपूज्य शवमुखे देवीं कारणेन त्रिः सन्तर्पयेत् ।

तदुक्तं भावचूडामणौ ।

तत्र देवीं सुसंपूज्य उपचारैः सुविस्तरैः ।

णि में कहा है । यथा-समीप में पूजा द्रव्य और दूर में उत्तरसाधक को स्थापन करे । यह उत्तर साधक समान गुण सम्पन्न है मन्त्रवित् और विजितेन्द्रिय हों अनन्तर स्वमन्त्रांतर में आत्मा की अभ्यर्चना करके फिर "फट्" इत्यादि मन्त्र से अश्वारोहण क्रमसे उपवेशन, पादतल में सपूर्ण कुश दान, शव के केशकलाप प्रसारण और दृढ़प्रकार से शिखा बंधन करके, कृत सकल्प होवे । तन्त्रांतर में कहा है, शवके ऊपर आरोहण और गुरु पूजादि समाचरण एवं प्राणायाम विधान करके सम्पूर्ण दिशा में समस्त लोष्ट्र निक्षेप करै । अनन्तर अपने वाम में शवसमीप में अर्घ्यपात्रादि स्थापन और शव की जुटिकामें पीठ पूजादि विधान षोडशउपचार से देवी की आराधना करके, शवके मुख में कारण द्वारा तीनबार तर्पण करै । भावचूडामणि में कहा है । यथा-वहां देवी की सम्यक् प्रकार से पूजा करके सुविस्तर उपचार

स्वनाम कथयस्व मे । इत्युक्तः संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत्॥ पुनश्चेत् मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरं ततः । ततः सत्यं कारयित्वा वरन्तु प्रार्थयेत्ततः॥ यदि सत्यं न करोति वरं वान प्रयच्छति। तदा पुनर्जपेद्धीमान् एकाग्रमानस स्तथा ॥नररूपंविनातत्रदेवोऽपिनापसर्पति। यत्नतस्तेनबोद्धव्यो नरो वा देवयोनयः माता मातुःस्वसावापि मातुलानी तथैवच। आगत्य चिह्नं कुरुते माययाच्छाद्य विग्रहम् ॥ उत्तिष्ट वत्स ! ते कार्य्यं सर्वं यातु न संशयः । प्रभातसमयोजातस्त्वत्पिता क्रोशते गृहम् ॥ प्रायो विमत्सरा लोका राजानो दण्डधारिणः। कदाचित् केन वा दृष्टस्तदा किंचिद् भविष्यति ॥ इत्यादि विविधैर्वाक्यैर्न च जापं परित्यजेत् । मृताः पितृगणास्तत्र दूरदेशनिवासिन ॥ बान्धवास्तत्र गच्छन्ति देवरूपधरास्तथा । स्त्रीपुत्रसेवकादींश्च गृहीत्वा नियतैः परैः ॥ रुदन्तः पुत्रकाः सर्वे भ्रातरोऽनुजशिष्यकाः । निजकांताङ्गसंस्पर्शं व-

---

मैंने हस्ती इत्यादि जो प्रार्थना की हैं वह दिनांतर में दान करो । इससमय आपका नाम क्या है, कहो । संस्कृत में इसप्रकार कहे । पुनर्वार निर्भय होकर जप करै फिर यदि मधुरभाव से बात कहैतो मधुरभावसे उसका उत्तर देना चाहिये । अनंतर सत्य कहलाकर वरकी याचना करै । यदि सत्य न कहै. और वर भी न दे तो पुनर्वार एकाग्र चित्त से जप करै नररूप के अतिरिक्त तहां देवता भी अपसर्पण नहीं करते । इसलिये यत्न सहित समझना चाहिये. कि मनुष्य अथवा देवयोनि कोई नहीं । तिस काल मातः मातृष्वसा अथवा मातुलानी इन सम्पूर्ण के वेश में आगमन करके चिह्न करती हैं और इस प्रकार कहती हैं हे वत्सः ! उठो नि.संदेहही तुम्हारा कार्य नष्ट हुआ । यह देख प्रात.काल हुआ है. तुम्हारे पिता गृह में आक्रोश प्रकाश करते हैं । सम्पूर्ण मनुष्य भी प्रायः मत्सर विशिष्ट और राजागण भी दण्डप्रयोग करते हैं । कदाचित कोई देखले तो क्या होगा ? इत्यादि विविध

कोणं चक्रमुल्लिखेत् । येनोत्थातुं न शक्नोति शवश्च निश्चलो भवेत् ॥

शवहस्तद्वयं पार्श्वयोः प्रसार्य्य तदुपरि कुशान् दत्त्वा तत्र स्वपादौ निधाय पुनः प्राणायामं कृत्वा शिरसि गुरुं हृदि देवीं च ध्यात्वा ओष्ठाधरसंपुटौ विहितमालया विभीर्जपेत् ।

तदुक्तं तत्रैव ।

उपविश्य पुनस्तस्य बाहू निःसार्य्य पार्श्वयोः । हस्तयोः कुशमास्तीर्य्य पादौ तत्र निधापयेत् ॥ ओष्ठौ संपुटकौ कृत्वा स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः । तदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौली जपमथाचरेत् ॥

अत्रापि श्मशानसाधनक्रमेण जपः कार्य्यः । यद्यर्द्धरात्रिपर्य्यन्तं किञ्चिन्न लक्ष्यते । तदा पूर्ववत् अर्घ्यं तिलान् विकिरन् सप्तपादगमनादिकं कृत्वा जपं कुर्य्यादिति ।

चलासने भयं नास्ति भये जाते वदेत्ततः । यद्यत् प्रार्थयसे देवि ! दातव्यं कुञ्जरादिकम् ॥ दिनान्तरे तु दास्यामि

सकता और चलभी नहीं सकता ।' शव के दो हस्त, दो पार्श्व, प्रसारित और उसके ऊपर समस्त कुशस्थापित, और उस में अपने दोनों पदस्थित करके, पुनर्वार प्रणाम के सहित मस्तक में गुरु का और हृदय में देवी का ध्यान पूर्वक ओष्ठाधर संपुटित करके निर्भय जप करना चाहिये । उस में कहा है, यथा—पुनर्वार उपविष्टहोकर, दोनों पार्श्व में दोनों बाहु प्रसारित और दोनों हस्तों में कुश आस्तृत करके उस में दोनों पद स्थापित करे । एवं स्थिरचित्त और स्थिर इन्द्रिय होकर, अधर और ओष्ठ संपुटित करके, देवी के ध्यान सहित मौनी जपमें प्रवृत्तहोवे। इसस्थलमें भी श्मशान साधनके क्रम से जपकरना कर्त्तव्य है । यदिअर्द्धरात्रि पर्यंत कुछभी न देखाजाय, तो पूर्व की समान अर्घ्य और तिल विखेर एवं सप्तपद गमन करके जप करे। आसन चालित होनेपर भय न करे । तिस समय इस प्रकार कहे, हे देवि !

एवं कृत्वा तु बहुधा न चाकृतविवुद्धयः । अवश्यं तत्र दातव्यं न च प्रत्यक्षतां कचित् ॥ भैरवा वटुकाश्चैव कुलशास्त्रपरायणाः । एतच्छास्त्रप्रसङ्गेन कृत्याकुटिलविग्रहाः ॥ पुत्रो भूत्वा हरेद्विद्यां नारी भूत्वा विमोहयेत् । तस्मात्तु भवेद्दोषात् विचारे यत्नमाचरेत् ॥ सत्ये कृते वरं लब्ध्वा सत्यजेच्च जपादिकम् । फलं जातमिति ज्ञात्वा जुटिकां मोचयेत्ततः ॥

अन्यत्रापि ।

शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य बन्धनं मोचयेत् पदम् । पदे चक्रं मार्जयित्वा पूजयित्वा जले क्षिपेत् ॥ शवं जलेऽथ गर्त्ते वा निःक्षिप्य स्नानमाचरेत् । ततस्तु स्वगृहं गत्वा वलिं दद्यात् दिनान्तरे ॥

अस्यां रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहं ते गृह्णन्तु इमं वलिम् ।

इति भावचूड़ामणौ ।

हो, तो विचार करके ग्रहण करे । स्वयं शिव ने यह बात कही है । क्योंकि देवगणों के कार्य अनेक प्रकार हैं । वह सहज में जानने दुष्कर हैं । भैरव और सम्पूर्ण वटुक कुल शास्त्र परायण हैं । इस लिये परिणाम में दोष उत्पन्न होने से, यत्न पूर्वक विचार करे । सत्य कहने से वर लाभ करके, जपादि त्याग करना चाहिये । और फल होगया है यह जान ने पर जुटिका भी छोड देवे । अन्यत्र भी कहा है । यथा—शव को प्रक्षालन और स्थापन करके बन्धन खोल देवे । और पदस्थित चक्र का मार्जन करके पूजा करता हुआ जल में निक्षेप करके स्नान करे । अनन्तर अपने गृह में गमन करके, दिनान्तर में वलिप्रदान करे । उसका मंत्र यह है, "अस्मिन् रात्रौ „ इत्यादि । भावचूडामणि में इस प्रकार कहा है ।

स्नाद्याभरणादिकम् ॥ गृहीत्वा नीयतेतत्र पानकैस्तद्धयंत्यजेत् बान्धवैस्तत्र दिवसे शङ्का तत्र प्रजायते ॥ यदि न क्षुभ्यते तत्र तदा किं वा न लभ्यते । स्त्रीरूपधारिणी देवी द्विजरूपधरः पुमान् ॥ वरं गृह्णेति शब्दं वै त्रिरात्रान्ते वरं लभेत् । साधुना साधुना वापि योषिच्चेद्र वरदायिनी ॥ तदा वीरपंतेस्तस्य किं न सिध्यति भूतले । निष्पापपुरुषेणैव कुलीनेनैव संस्कृता ॥ असंस्कृतवरा देवी पापं भुङ्क्ते न संशयः । संमुखेऽसंमुखे चापि संस्कृतं वक्ति चापरम् ॥ सैव देवी न सन्देहा स देवो भैरवः स्वयम् । न चेदेवं भवेच्चैव मायाघटितविग्रहः ॥ वरं न वरयेत्तत्र न किञ्चित् प्रवदेत्ततः । स चेत् संस्कृतमाख्यानं वक्ति वक्तव्यमीदृशम् ॥ न चेत् स्वयं कौलिकोऽपि वरं ग्राह्यं निराकुलम् । अथवा उत्कटं किञ्चित् ज्योतिर्वा नीललोहितम् ॥ शब्दो वा जायते सम्यगमृतं वापि लभ्यते । विचार्य्य तद्गृहीतव्यमेवं शिवेन भाषितम् ॥

वाक्य प्रयोग करने पर भी जप परित्याग न करै । तिस समय मृत पितृगण और दूर देश वासी मृत बांधवगण देवतारूप धारण करके तहां आगमन करते हैं । इन से भी यदि साधकको क्षोभ न हो और यदि कुछ लाभ न करसके तो देवी स्त्री रूप धारण और द्विजरूप धर पुरुष वेष ग्रहण करके तीन रात्रि के अंत में तहां आगमन पूर्वक "वर ग्रहण कर,, यह कहकर शब्द करती हैं । इस प्रकार अच्छा या बुरा जो हो, देवी के स्त्री वेश से वरदेने में उद्यत होनेपर वीर पति का क्या नहीं साधित होता ? सन्मुख अथवा असन्मुख यदि संस्कृत करके बात कहैं. तो वह स्त्री निसन्देह स्वयं देवी, और वह पुरुष निःसंदेह ही साक्षात् भैरव है । यदि वह न हो तो मायाघटित विग्रह समझना चाहिये । फिर किसी प्रकार वरकी प्रार्थना न करै । और किसी प्रकार बातभी न कहे । पुरुष यदि संस्कृत में बात कहे, तो इस प्रकार कहे । अथवा यदि कुछ नील लोहितवर्ण उत्कट ज्योति आविर्भूत, किसी प्रकार शब्द समुद्भूत और सम्यक् प्रकार से अमृत लाभ

एवं कृत्वा तु बहुधा न चाकृतविवुद्धयः। अवश्यं तत्र दातव्यं न च प्रत्यक्षतां कचित्॥ भैरवा वटुकाश्चैव कुलशास्त्रपरायणाः। एतच्छास्त्रप्रसङ्गेन कृत्याकुटिलविग्रहाः॥ पुत्रो भूत्वा हरेविद्यां नारी भूत्वा विमोहयेत्। तस्मात्तु भवेद्दोषात् विचारे यत्नमाचरेत्॥ सत्ये कृते वरं लब्ध्वा सत्यजेच्च जपादिकम्। फलं जातमिति ज्ञात्वा जुटिकां मोचयेत्ततः॥

अन्यत्रापि।

शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य वन्धनं मोचयेत् पदम्। पदे चक्रं मार्जयित्वा पूजयित्वा जले क्षिपेत्॥ शवं जलेऽथ गर्त्ते वा निःक्षिप्य स्नानमाचरेत्। ततस्तु स्वगृहं गत्वा वलिं दद्यात् दिनान्तरे॥

अस्यां रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहं ते गृह्णन्तु इमं वलिम्।

इति भावचूड़ामणौ।

हो, तो विचार करके ग्रहण करे। स्वयं शिव ने यह बात कही है। क्यों कि देवगणों के कार्य अनेक प्रकार हैं। वह सहज में जानने दुष्कर हैं। भैरव और सम्पूर्ण वटुक कुल शास्त्र परायण हैं। इस लिये परिमाण में दोष उत्पन्न होने से, यत्न पूर्वक विचार करै। सत्य कहने से वर लाभ करके, जपादि त्याग करना चाहिये। और फल होगया है यह जान ने पर जुटिका भी छोड देवे। अन्यत्र भी कहा है। यथा—शव को प्रक्षालन और स्थापन करके वन्धन खोल देवे। और पदस्थित चक्र का मार्ज्जन करके पूजा करता हुआ जल में निक्षेप करके स्नान करै। अनन्तर अपने गृह में गमन करके, दिनान्तर में वलिप्रदान करै। उसका मंत्र यह है, "अस्मिन् रात्रौ" इत्यादि। भावचूडामणि में इस प्रकार कहा है।

अथ तैस्तु चित्रश्मशाननरकुञ्जरशूकरात्। दत्त्वा पिष्टमयानेवं कर्त्तव्यमुपवासनम्॥ परेऽह्नि नित्यमाचर्य्य पञ्चगव्यं पिबेत्ततः। ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशतिसंख्यकान्॥ पञ्च पञ्च विहीनान् वा क्रमाच्चैव दशावधि। ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमस्थले॥ यदि न स्याद्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत्। तेन चेन्निर्धनस्तस्य तदा देवः प्रकुप्यति॥ त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं नवरात्रन्तु संयमेत्। स्त्रीशय्यां यदि गच्छेद्वै तदा व्याधि र्भवेत् च हि॥ गीतं श्रुत्वा च वधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात्। यदि वक्ति दिने वाक्यं तदास्य मूकता भवेत्॥ पञ्चदशदिनान्ते तु देहे देवस्य संस्थितिः। गोब्राह्मणानां निन्दाञ्च न कुर्याच्च कदाचन॥ देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेत् शुचिः। प्रातर्नित्यक्रियान्ते तु विल्वपत्रोदकं पिबेत्॥ ततः स्नायाच्च गङ्गायां प्राप्ते

अनन्तर पिष्टक निर्मित पूर्व याचित नर, कुञ्जर और शूकर दान करके उस दिन उपवास करना चाहिये। दूसरे दिन नित्य कर्म के अन्त में पंच गव्य पान करके पचीस ब्राह्मणों को भोजन करावे। पन्दरह या दश ब्राह्मणों के भोजन कराने परभी हानि नहीं है ब्राह्मण भोजन के उपरांत स्नान और भोजन करके उत्तम स्थल में अवस्थिति करै। ब्राह्मणों को भोजन न कराने से साधक निर्धन होता है, और यदि निर्धन हो तो देवता रुष्ट होते हैं। तीन रात्रि वा छय रात्रि अथवा नौ रात्रि गुप्त रहना चाहिये। स्त्री शय्या में गमन करने से, व्याधि ग्रस्त होता है, गीत श्रवण करने से वधिर होता है। नृत्य देखने से नेत्रहीन होता है। दिन में बात कहने से मूक होता है। पन्दरह दिन के उपरांत देह में देवता का अधिष्ठान होता है। गो ब्राह्मण की निन्दा कभी न करै। शुद्ध होकर नित्य देव, गौ और ब्राह्मण को स्पर्श करना चाहिये। प्रात काल के समय नित्य क्रिया के उपरांत विल्वपत्रोदक पान करै। फिर सोलहवां दिन उपस्थित होने पर गंगा में स्नान करना चाहिये . स्वाहा के अन्त में मूळ

षोड़शवासरे । स्वाहान्तमूलमुच्चार्य्य तर्पणान्ते नमः पदम् ॥ एवं शतत्रयादूर्द्ध्वं देवान् वैतर्पयेज्जलैः । स्नानतर्पणशून्यस्य न स्याद्देवस्य तर्पणम् ॥ इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः । इह भुक्त्वा वरान् भोगान् अन्ते याति हरेः पदम् । असाङ्गं वापि साङ्गं स्यात निष्फलं सफलं भवेत् ॥ कृत्वा साधनमेवैतत् शक्तेः प्रियतरो भवेत् । शवाभावे श्मशाने वा कार्य्यं वै वीरसाधनम् ॥ यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तैर्भावैर्यदि नार्चयेत् । दशाहक्रमयोगेन भ्रष्टो भवति, साधकः ॥ कुलमन्त्रं गृहीत्वा न यावत् वुद्धिः प्रजायते । नोपदिश्येत्तत्र भावं न रूपं तत्र सन्दिशेत् ॥

इति श्यामारहस्ये त्रयोदशः परिच्छेदः ।

मंत्र उचारण करके, तर्पण के अन्त में 'नमः' शब्द प्रयोग करै । इस प्रकार जल द्वारा तीनसौ से ऊर्द्ध्व देवता गणों का तर्पण करना चाहिये । स्नान और तर्पण शून्य होने से देव तर्पण में अधिकार नहीं होता । इस प्रकार विधानानुसारसेही लोकमें सिद्धिहोतीहै,और इसलोकमें संपूर्ण उत्कृष्ट भोग भोग करके परलोक के समय हरिपद में लीन होता है । अधिक क्या, इस के द्वारा अंगहीन भी पूर्णाङ्ग होता है । और निष्फल सफल होता है, इस के अतिरिक्त यह शव साधन करने से शक्ति का प्रियतर होजाता है । शव का अभाव होने से श्मशान में वीर साधन करना चाहिये जिन का जो भाव कथित है, वह यदि उस भाव से अर्चना न करै । तो दश क्रमयोग में ही भ्रष्ट होजाता है, इस विषय में भाव उपदेश न करै । रूपभी निर्देश न करै । कुल से मंत्र ग्रहण करके जिस प्रकार समझै उसी भाव में प्रवृत्त होवे ॥

इतिश्रीमहामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित
श्यामारहस्य पं० कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकासहित
त्रयोदश परिच्छेदः समाप्तः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशः परिच्छेदः ।

अथ प्रकारान्तरसाधनम् ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे ।

शृणु देवि ! वरारोहे ! वीरसाधनमुत्तमम् । नृणां शीघ्रज्ञानार्थं प्रकारान्तरमुच्यते ॥ चतुष्पथे चतुर्दिक्षु पुरुषं हृदयं खनेत् । जीवितं ब्रह्मरन्ध्रेवै दीपं प्रज्वालयेदथ ॥ मध्ये तथा खनेदेकं तत्र शुद्धासनं भवेत् । पूर्वोक्तेन च मार्गेण तत्र संस्कारमारभेत् ॥ महाकालादिदेवेभ्यो बलिं पूर्ववदाहरेत् । कल्पोक्तपूजां संपूज्य जपेत् प्रयतमानसः ॥ दन्ताक्षमालया चैव राजदन्तेन मेरुणा । दिग्वासाः प्रजपेन्मन्त्रमयुतं सर्वदैवतम् ॥ जपान्ते च बलिं दत्त्वा दक्षिणा विभवावधि । सर्वसिद्धीश्वरो विद्वान् सर्व देव नमस्कृतः ॥ अथवा विजनेऽरण्ये अस्थिशय्यासनो नरः । उदयान्तं दिवा

अब प्रकारान्तर साधन कहते हैं—काली तन्त्र में कहा है, हे देवि ! श्रवणकरो, सम्पूर्ण साधनों से श्रेष्ठ वीरसाधन कीर्तन करता हूँ । लोकमें शीघ्र फलप्राप्ति के लिये प्रकारान्तर वर्णित होताहै । पुरुष चतुष्पदमें चारों ओर हृद खनन और ब्रह्मरन्ध्र में जीवित प्रदीप प्रज्वलित करै । मध्यभाग में अन्य एक खनन करना चाहिये । उससे ही शुद्धासन होताहै । पूर्वोक्त मार्गानुसार उसमें संस्कार आरम्भ करना चाहिये । महाकालादि देवगण को पूर्वकी समान बलिप्रदान करै । कल्पोक्त पूजा करके एकाग्रचित्त से जप करना चाहिये । नग्न होकर दन्त और अक्षमाला एवं राजदन्त और मेरुमालाद्वारा सर्वदैवत मन्त्र अयुतवार जप करै । जपान्त में बलिप्रदान पूर्वक विभवके अनुसार दक्षिणा दान करनेसे, सर्वसिद्धिका अधीश्वर, विद्वान और सम्पूर्ण देव नमस्कृत होजाता है । अथवा निर्जन वनमें अस्थि की शय्या और अस्थि का आसन करके उदयास्त दिनमान जप करने से

जप्त्वा सर्वं सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ विल्ववृक्षे निजक्रोड़े शवमारोप्य यत्नतः । नृसिंहमुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकया यदि ॥ सहस्रं तत्र वै जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । वटमूले शवं नीत्वा तत्र देवीं प्रपूज्य च ॥ सुप्त्वा तत्र मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । करकाञ्चीं समादाय मुण्डमालाविभूषितः ॥ तेनैव तिलकं कृत्वा तत्तद्भस्मविभूषितः । श्मशाने च सकृज्जप्त्वा सर्वं सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ कुंकुमागुरुकस्तूरी रोचना घनचन्दनम् । कर्पूरं पद्मरागश्च केशरं हरिचन्दनम् ॥ एकत्र साधितं कृत्वा प्रत्येकं साधयेत् सुधीः । जिह्वाग्रे रुधिरं वीर आकाशे च समाहरेत् ॥ तेनैव वटिकां कृत्वा भद्रकालीं ततो जपेत् । नीलां नीलपताकाञ्च लोलजिह्वां करालिकाम् ॥ ललाटे तिलकं कृत्वा साधको वीरभीः स्वयम् । महाष्टमीनवम्यास्तु संयोगे पुरतः स्थितः ॥ छागमहिषमेषा-

---

सर्व्वसिद्धिका अधीश्वरत्व संग्रह होताहै । अथवा विल्ववृक्ष में अपनी गोदीमें शवको यत्नपूर्व्वक बैठाल करके नृसिंह मुद्रा प्रदर्शन सहित मातृका द्वारा जप करे इस प्रकार सहस्र जप करनेपर सर्व्व प्रकार की सिद्धि आधीन होती है । अथवा वटवृक्षके मूलदेश में शवको लाकर देवी की पूजा करके उस में शयन करताहुआ मंत्र जप करनेपर भी सर्व्वसिद्धिका ईश्वर होजाता है । अथवा शवगणोंकी काञ्ची ग्रहण करके, मुण्डमाला में विभूषित होकर उससेही तिलक और उस भस्मसेही अङ्गविलिप्त करै । उस अवस्थाके समय श्मशान में सकृत जप करने से सर्व्वसिद्धिका अधीश्वर होताहै । कुंकुम, अगर, कस्तूरी, रोली घनचन्दन, कर्पूर, पद्मराग, केशर हरिचन्दन, एकत्र साधित करके प्रत्येकको साधित करै । इसके द्वारा वटिका करके, फिर भद्रकाली, नीला, नीलपताका, लोलजिह्वा, और करालका का जप करताहुआ ललाट में तिलक करने से, वीरगणों को भी भयोत्पादन कियाजाता है । महाष्टमी और नवमीकी सधि में सन्मुख अवस्थिति करके, चारों ओर छाग, महिष और मेष सबके शवको निक्षेप करै । तिस

णां चतुर्दिक्षु शवान् क्षिपेत् । कबन्धान् मुण्डपूजाञ्च दीपादिभिरलंकृताम् ॥ मध्ये कबन्धमास्तीर्य्य तत्र गन्धर्वरूपधृक् । ताम्बूलपूररक्तास्य मञ्जनाञ्जितलोचनम् ॥ कृत्वा तत्र मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । वियत्त्रययुतं देवि ! नेत्रान्तं चन्द्रभूषितम् ॥ वीजं प्रत्येकदेवान मिति तासाञ्च पार्वति ! । मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञो जपेत् सार्द्धशतद्वयम् ॥ जिह्वाग्रे रुधिरं गृह्ण चामुण्डे ! घोरनिःस्वने ! । बलिं छित्वा वरं देहि रुधिरं गगनेऽमले ॥ कालि ! कालि ! प्रचण्डोग्रे ! ततोऽस्त्रं कवचं ततः । कालिकेयं समाख्याता वीराणां हितकाम्यया ॥ कूर्चयुग्मं महादेवि ! लीलया कथितं तव । चन्द्रखण्डसमायुक्तं ततो नीलपदं ततः । पताके हुँ फडन्ते च पूर्वकूटमनुर्मतः ॥ सुगुसेयं महाविद्या तव स्नेहादिहोदिता । जयश्रीकरणी देवी पताकेव रणस्थले ॥ तेन नीलपताकेयं योज्या वै नीलसाधने । उग्रचण्डा महाविद्या या पुरा कथिता प्रिये ! ॥ लोलजिह्वा तु सा प्रोक्ता संयोज्या

समय सम्पूर्ण कवन्ध और दीपादि समूह में अलंकृत सम्पूर्ण मुण्डभी इस प्रकार निक्षेप करने चाहिये । मध्यमें कवन्ध आस्तरण पूर्वक ताम्बूल पूर्ण द्वारा वदनमण्डल रक्तवर्ण और दोनों नेत्र अञ्जनाङ्कित करके, मंत्र जप करने से सर्व्वसिद्धिका अधीश्वर होजाता है । नेत्रांत और चन्द्रभूषित तीनों आकाश प्रत्येक देवताकेही वीज हैं मूलमंत्र सहित यह बीज सार्द्धशत जप करै । तिस समय इस प्रकार कहै, हे चामुण्डे ! घोरनिस्वने ! जिह्वाग्र में रुधिर ग्रहण करो । बलि छेदन करके, । वरदो । वीरगणोंको हित कामनासे देवी कालिका का विषय कीर्त्तन किया । देवी कालिका रणस्थल में पताका की समान जय श्री विधान करती हैं । इस लिये नील साधन में नील पताका की योजना करनी चाहिये । हे प्रिय ! मैंने जो पूर्व में महाविद्या उग्र चण्डा का विषय कीर्त्तन किया है उसको लोलजिह्वा

नीलसाधने । या सा विद्या महातारा सा करालेति कीर्त्तिता ॥ भूमिपूरसमायुक्ता सामावस्या शुभोदया । भाद्रेपुष्करयोगे च तस्यां वीरवरोत्तमः ॥ विष्णुकान्तां समानीय निःक्षिपेत् मन्त्रभूमिषु । तत्र तां साधितां कृत्वा तद्दिने मृतहट्टके ॥ तत्र प्रसारितं मत्स्यमेकं मूल्येन दापयेत् । तज्जलेनाभिषेकञ्च पूर्ववच्च शवोपरि ॥ साधितां विजयां तस्य उदरे मुखवर्त्मना । क्षिप्त्वा तत्र खनेन्मत्स्यमञ्जनाञ्जितलोचनः ॥ तिलकी पूर्वद्रव्येण उत्थाय च मनुं जपेत् । स्वयं वै तत्र भगवान् भैरवो लगुडाङ्कितः ॥ भ्रमातीतस्ततो वीर स्तं विलोक्य जपेन्मनुम् । यदि भाग्यवशाद्देवि ! लगुडस्तत्र लभ्यते ॥ तदा स्वयं भैरवोऽसौ स्वयं वीरेश्वरो भवेत् । मत्स्य मानीय देवेशि ! निःक्षिपेत् पितृकानने ॥ तत्रासकृज्जपित्वा च देवतामेलनं भवेत् । तत्र नत्वा महादेवं महादेवीञ्च भाविनि ! ॥ तद्भस्मतिलकं कृत्वा स्वयं वीरेश्वरो भवेत् । निशा

कहते हैं । भाद्रमास के समय पुष्कर योग में चिरचिटा लाकर मंत्र भूमि में निक्षेप और उस में उसको साधित करके उसदिन एक मट्टी की हांडी में प्रसारित मत्स्य लाकर प्रदान करै । अनन्तर उस जल से पूर्व की समान शवके ऊपर अभिषेक करके उसके उदर में मुख मार्गयोग में साधित विजया निक्षेप करता हुआ अञ्जनाङ्कित लोचन से मत्स्य को खनित करै । फिर पूर्व द्रव्य से तिलक करके, उत्थान पूर्वक जप में प्रवृत्त होवे । स्वयं भगवान भैरव लगुडांकित होकर तहां आविर्भूत होते हैं । उनका दर्शन करके मंत्र जप करै । हे देवि ! यदि वहा भाग्य वश से लगुडलाभ हो, तो साधक स्वयं भैरव होता है । हे देवेशि ! उल्लिखित मत्स्यलाकर, पितृ कानन में निक्षेप पूर्वक तहां वारम्वार जप करने से, देवता के सहित मेल होता है । हे भाविनी ! तहां महादेव और महादेवी को नमस्कार करके उनकी भस्म से तिलक करने पर, स्वयं वीरेश्वर होजाता है । हे देवि ! रात्रिकाल के

यां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरव ॥ दिग्वासा विमली भस्म भूषणो मुक्तकेशकः। कृपाणखड्गहस्तश्च जपेन्मातृकया यदि ॥ तदा तस्य महादेवि! सर्वसिद्धिःप्रजायते। डाकिनीं योगिनीं वापि अन्यां वा भूतकाङ्गनाम् ॥ तत्र चानीय संपूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनांनीलसाधने॥ ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम् । मृतासनं विना देवि पूजयेत् पार्वतीं शिवाम् ॥ तावत्कालं वसेद्घोरे यावदाहूतसंप्लवम् । महाशवाः प्रशस्ताः स्युः कालीकावीरसाधने ॥ क्षुद्राः प्रयोगे कर्त्तृणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः। एवं नीलकर्म देवि! कथितञ्च तवानघे! ॥ न कस्यचित् प्रवक्तव्यं मम प्रीत्या महेश्वरि ॥

श्रीदेव्युवाच।

ज्ञातमेतन्मया देव! त्वत्प्रसादान्महेश्वर!। अशक्तानान्तु मे देव! पुरश्चरणमुच्यताम् ॥

समय श्मशान प्रदेश में नग्नवेश मुक्त केश भस्म भूषित कलेवर शुद्ध मानस कृपाण और खड्गहस्त से यदि मातृका द्वारा जप कियाजाय। तो सम्पूर्ण सिद्धि सम्पन्न होता है। डाकिनी, योगिनी, अथवा भूतांगना को तहां लाकर, पूजा करने से सर्वविध सिद्धि का अधीश्वर होजाता है। नील साधन में ब्राह्मण और गोमय वर्जन करके, अन्यान्य सम्पूर्ण जन्तुओं की शव लाकर, वीर साधन करे। मृतासन के अतिरिक्त देवी पार्वती की पूजा करने से यावत् प्रलय तक घोर नरक में वास करना होता है। कालिका और वीर साधन में संपूर्ण महा शव प्रशस्त हैं। और समस्त क्षुद्र शव प्रयोग समय में प्रशस्त और सर्व सिद्धि की हेतु होती हैं। हे देवि! मैं ने यह तुम्हारे निकट नील क्रम कीर्तन किया। हे महेश्वरि! हमारी प्रसन्नता के लिये इसे अन्य किसी से न कहे ॥

श्रीदेवी ने कहा हे देव महेश्वर! मैं आपके प्रसाद द्वारा इससे अवगत हुई अब अशक्तपक्षका पुरश्चरण कीर्तन कीजिये॥

भैरव उवाच ।

श्मशानेषु पुरश्चर्य्या कथिता देवि ! दुर्लभा ॥ अथवाऽन्य प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते । कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समायुतम् ॥ पंचगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः । निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने ॥ तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानवः । एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । शवमानीय तद् द्वारि तेनैव परिखन्यते ॥ तद्दिनात् तद्दिनं यावत् जपेदष्टोत्तरं शतम् । स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्य्या विचारणा ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरण मिष्यते अष्टम्यांच चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ सूर्य्योदयात् समारभ्य यावत् सूर्य्योदयान्तरम् । तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव ग्रासावाधि विमुक्तितः ॥ यावत्संख्यं मनुं जप्त्वा तावद्धोमादिकं चरेत् ।

भैरव ने कहा है, हे देवि ! श्मशानही दुर्लभ पुरश्चर्य्यानिर्दिष्ट हुई है । अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण होताहै । कहता हू- श्रवण करो । मङ्गलवार वा शनिवार में पंचगव्य विशेष करके चन्दनादि द्वारा मिश्रित और संयुक्त नरमुण्ड भूमि अथवा वन में आधे हाथकी परिमाण निक्षेप करके यदि उस दिन रात में अकेला सहस्र जप करै । तो वह व्यक्ति कल्पवृक्ष होता है । अथवा अन्यप्रकार भी पुरश्चरण कियाजाता है । शव लाकर उसी द्वार में खननकर उस दिन अष्टोत्तर शत जप करने से सर्व विध सिद्धि का अधीश्वर होजाता है । इसमें द्विधा करने की आवश्यकता नहीं । अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण कियाजाता है । दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी में सूर्योदय से अस्त पर्यंत निरातङ्क होकर जप करने से सर्व्व सिद्धिका अधिनायक होजाता है । अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण कियाजाता है । चंद्र और सूर्य के ग्रहण समय ग्रास से मोक्ष पर्यंत यावत् संख्यक मंत्र जप करके

सूर्य्यग्रहणकालाद्धि नान्यः कालः प्रशस्यते ॥ अत्र यद्यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् । तावदिति जपदशांशहोमादिकमित्यर्थः ॥ ग्रहणे चन्द्रसूर्य्यस्य शुचिः पूर्वमुपोषितः । नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः ॥ यदा शुद्धोदके स्नात्वा शुचौ देशे समाहितः । स्पर्शाद्विमुक्तिपर्य्यंतं जपं कुर्य्यादनन्यधीः ॥ अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत् । तदन्ते महतीं पूजां कुर्य्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥ ततो मन्त्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुं संपूज्य तोषयेत् ॥

अथ कालीतन्त्रे ।

शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यंतं विशेषतः । भक्तितः पूजयित्वा च रात्रौ तावत् सहस्रकम् । ॥ जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये । अष्टम्यादि नवम्यंतमुपवासपरो भवेत् ॥ अन्यत्र गुरुमार्गस्य लङ्घनं नैव कारयेत् । अथवान्यप्रकारेण

जपका दशांश परिमाण होम करै । सूर्यग्रहण की अपेक्षा अन्य काल श्रेष्ठ नहीं है । इस समय जिस जिस कार्य का अनुष्ठान कियाजाता है वह सम्पूर्ण ही अनन्त फल प्रसव करता है चंद्र सूर्य के ग्रहण से पूर्व दिन उपवास करके शुचि पूर्वक समुद्रगामिनी नदी में नाभि पर्यंत अवस्थिति करके समाहित चित्त से शुद्धोदक में स्नान पूर्वक शुद्ध प्रदेश से स्पर्श मुक्ति पर्यन्त अनन्य मन से जप करै । अनन्त दशांश परिमाण क्रम से होमादि करके पीछे देवी की भली भांति पूजा पूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन करावे । अनन्तर मंत्र सिद्धिके लिये गुरुकी अभ्यर्चना करके उनका परितोष करै ॥

कालीतंत्र में कहा है शरतकाल के समय चतुर्थी से नवमी पर्यन्त भक्ति सहित भली भांति पूजा करके रात्रि में केवल अकेला अन्धेरे में बैठकर हजार जप करे । अष्टमी से नवमी पर्यंत उपवास परायण होवे । अन्यत्र गुरु मार्गको उलघन न करे । अथवा अन्य प्रकारभी पुरश्चरण कियाजाताहै

पुरश्चरणमिष्यते ॥ अष्टमीसन्धिवेलायां अष्टोत्तरलतागृहम्। प्रविश्य मन्त्री विधिवत् ताः समभ्यर्च्य यत्नतः ॥ पूर्वोक्तफलमासाद्य पूजादिकं समाचरेत्। केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम्॥ तासान्तु पत्रमूलेन उग्रां संपूज्य कर्णिके। मन्त्रसिद्धिर्भवेत् सद्यो लतादर्शनपूजनात् ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। आकृष्णयोः कुलागारे भावयेन्मन्त्रमेव च ॥ प्रपूज्य तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च। किंचित् जपं मनु नीत्वा देवताभावतत्पर ॥ तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुसंयतः। प्रातः स्त्रीभ्यो वलिंदत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजनं विभोः ॥ वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः सन्तोष्य गुरुमेव च। तत्सुतं तत्सुताञ्चैव तत्पत्नीञ्च विशेषतः ॥ पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्व सिद्धीश्वरो

अष्टमीकी सन्धि बेला में अष्टोत्तर लता गृह में प्रवेश और यथा विधान से यत्न सहित उन सबकी पूजा करके पूर्वोक्त फल लाभ होनेपर पूजादि में प्रवृत्त होवे। अष्टोत्तर शत जप करने से कामदेव होता है। उनके पत्र मूल द्वारा उग्राकी अर्चना करने से लतादर्शन और उसका पूजन प्रयुक्त शीघ्र मंत्र सिद्धि संघटित होती है। अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण होता है। कृष्णवर्णा रमणीकी कुलागार में मंत्र भावना और उसमें पूजा एवं संस्कार करके उस रमणी को निवेदन पूर्वक कुछ एक परिमाण मत्र जप करै। फिर देवता की समान तत्पर होकर उस रमणी को नमस्कार के अनंतर विदा देकर स्वय भली भाति सयम सहित जप के अंत में प्रातः काल के समय सम्पूर्ण स्त्रीको वलिप्रदान करने से निःसंदेह मत्र सिद्धि होती है। अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण कियाजाता है। गुरुको बुलाय स्थापन पूर्वक देवता की समान पूजन और वस्त्र अलंकार एव होमादि द्वारा उनका संतोष सम्पादन और उनके पुत्र कन्या विशेष करके पत्नी की अर्चना करके मंत्र जप करनेसे सम्पूर्ण सिद्धि आधीन होती हैं। अथवा अन्य प्रकारभी पुर-

भवेत् । अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥ सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च । केवलं देवभावेन जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ गुरवे दक्षिणां दद्यात् यथाविभवमात्मनः । गुरोरनुज्ञामात्रेण दृष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥ गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारः सुरैरपि । एषाञ्च मन्त्रतन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि ॥ गुरुवक्त्रं विना देवि ! सिद्धिहानिः प्रजायते । एतत्तन्त्रंच मन्त्रंच शिष्येभ्योऽपि न दर्शयेत् । अन्यथा प्रेतराजस्य भवनं याति निश्चितम् ॥

अथ कालिकादर्शनार्थं साधनान्तरमालिख्यते । प्रदोषे शून्यगृहं गत्वा उत्तराभिमुख उपविश्य भूतशुद्ध्यादिकं न्यासान्तं विधाय सिन्दूरेण नवकोणवृत्ताष्टदलवृत्तचतुरस्रचतुर्द्वारात्मकं यन्त्रं विलिख्य संमुखे कुमार्य्याः शक्तिबीजं लिखित्वा पुरतः संस्थाप्य तत्र पीठपूजां विधाय द्वादश प्राणायामं कृत्वा देवीं ध्यायेद् यथा ।

श्चरण कियाजाता है । सहस्रार गुरुके चरण कमलों का ध्यान और पूजा करके केवल देवभाव में जप करने से सिद्धीश्वर होजाता है । गुरु को विभव के अनुसार दक्षिणा देवे । गुरुकी आज्ञामात्र से दृष्ट मन्त्र भी सिद्ध होता है । गुरुको लंघन करके सुरगणों को भी इस शास्त्रमें अधिकार प्राप्त नहीं होता । हे देवि ! गुरु से विमुख होकर इन सम्पूर्ण मंत्र तंत्रों का प्रयोग करने से सिद्धिकी हानि होती है । यह तंत्र और मंत्र शिष्यगणों को भी न दिखावे, दिखाने से निःसंदेह प्रेतराज के भवन में गमन करना होता है ॥

अब कालिका का दर्शनार्थ साधनान्तर लिखते हैं । सायङ्काल के समय शून्य गृह में गमन और उत्तराभिमुख बैठकर भूत शुद्धि इत्यादि से न्यास पर्यंत विधान और सिंदूर द्वारा नवकोण वृत्त अष्टदल वृत्त चतुरस्र और चतुर्द्वारात्मक यंत्र अङ्कित करे । फिर सन्मुख कुमारी का शक्तिबीज लिख कर पुरोभाग में स्थापन और उसमें पीठपूजा विधान एवं द्वादश प्राणायाम समाधान करके देवी का ध्यान करना चाहिये । यथा—नर कपाल में

नृकपालसमारूढ़ां नरमालाविराजिताम् । कृष्णाभ्रसन्निभां रक्तवासोपरि विभूषिताम् ॥ चतुर्बाहुधरां देवीं दिव्यालङ्कारशोभिताम् । निशामुखं समारुह्य यावद् यामद्वयं भवेत् ॥ तावत्कालं जपेन्मन्त्रं कालिकादर्शनोत्सुकः । चन्दनावीतनृशिरः शवोपरि विराजितः ॥ घृतप्रदीपमालाभिस्तथैव परिवेष्टितः । मुण्डोपरि भवेन्मुण्डो भयमोहविवर्जितः ॥ ऊर्द्ध्वास्यः प्रजपेन्मन्त्रं दीपालोकनतत्परः । मुण्डोपरि भवेन्मुण्डस्तद्दीपंच निधापयेत् ॥ पूजयेन्मूलमन्त्रेण कुर्य्याद्देव्या विलक्षणः । सिंदूरमण्डलं कृत्वा नवकोणसमन्वितम् ॥ शक्तिवीजन्तु तन्मध्ये लिखित्वान्यैः समावृतम् । वहिरष्टदलं पद्मं तेनैव कारयेद्‌वुधः । तत्रानाह्य जगद्धात्रीं कालिकां कृष्ण विग्रहाम् । पूजयेद्विधिवद्देव्यै नवरात्रं समाहितः ॥ ततस्तुष्टा जगद्धात्री कालिका परमेश्वरी । सर्वसम्पत्तिदा देवी साधकस्यानुकम्पया ॥ नेदं प्रकाशयेद् मन्त्रं प्राणैःकण्ठगतै-

---

अधिरूढ नरमाला से विभूषित कृष्णाभ्रसन्निभा, रक्तवस्त्र के ऊपर विराजित चारभुजा धारण किये । दिव्यालङ्कार शोभित देवीकी निशा मुखसे दो याम इय पूजा और ध्यान करके उनका दर्शनोत्सुक होकर मंत्र जप में प्रवृत्त होवे । तिस काल चारोंओर घृतका दीप रखकर शवके ऊपर बैठ मोह भय रहित होवे । और मुण्ड के ऊपर मुण्ड होवे । ऊर्द्ध्वास्य और दीप दर्शन तत्पर होकर मंत्र जप और मण्डके ऊपर दीप सन्निविष्ट करे । और मूल मंत्र से पूजा करके देवी के देखने में प्रवृत्त होवे । फिर नव कोण समन्वित सिन्दूर मण्डल विधान करके उस में शक्ति बीज विन्यस्त और अन्य बीज समूह में उस शक्ति बीजको परिवृत करे । अनतर सिंदूर द्वाराही वाहिर अष्ट दल पद्म लिखकर उसमें जगद्धात्री कृष्ण विग्रहा कालिका का आवाहन करके समाहित होकर नौरात्रि यथा विधान से उनकी पूजा करनी चाहिये। वो जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका तुष्ट होकर दया प्रकाश के पीछे साधक

रपि । शिष्याय भक्तिहीनाय भैरवेन हि भाषितम् ॥

इति श्यामारहस्ये चतुर्दश परिच्छेदः ।

अथ पञ्चदशःपरिच्छेदः ।

अथ काम्यहोमार्थं कुण्डनियमो यथा तदुक्तं यामले ।

शान्त्यै चोक्तं तथारोग्ये कुण्डञ्च चतुरस्रकम् । आकर्षणे त्रिकोणं स्यात् उच्चाटे वर्त्तुलं तथा ॥ मारणेच तथा योज्यं वर्त्तुलं मंत्रभिः सदा ॥

देव्युवाच ।

देवदेव ! महादेव ! भक्तानां प्रीतिवर्द्धन ! । कालिका या महाविद्या निर्दिष्टा न प्रकाशिता ।

को सर्वविध सम्पत् प्रदान करती हैं । प्राण कण्ठगत होने परभी इस को प्रकाश न करै ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित श्यामारहस्य प० कन्हैयालाल मिश्र मुरादाबाद निवासी कृत भाषाटीकासहित चतुर्दश परिच्छेदः समाप्तः ॥ १४ ॥

अब काम्य होमार्थ कुण्ड नियम लिखते हैं । यथा—यामल में कहा है, शांति और आरोग्य कर्म में चतुरस्रविधान करे । आकर्षण में त्रिकोण कुंड करना चाहिये । उचाटन में गोलाकार करै । मारण में भी गोल कुड की योजना करनी कर्त्तव्य है ॥

श्री देवी ने कहा हे देव देव ! हे महादेव ! आप भक्तगणों की प्रीति वर्द्धन करते हो । आप ने पूर्व में जो महाविद्या कालिका का विषय निर्देश किया था वह प्रकाश नहीं किया, उसको कहो, मैं सुनने के लिये उत्सुक हुई हू।

श्रीमहादेव उवाच ।

लक्षं लक्षसहस्राणि वारितासि मया पुनः । स्त्रीस्वभावान्महादेवी ! पुनस्त्वं परिपृच्छसि ॥ अत्यन्तदुर्लभम् देवी ! कवचं सर्वकामदम् । तथापि कथयाम्यद्य तव प्रीत्या वरानने ! ॥ उक्तं पुरा महादेवी ! श्रूयतां तत् कृपामयि ! । कवचाज्ञानतो देवी ! विद्यासिद्धिर्न जायते ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथ्यतां कवचं देव ! यदि स्नेहोमयि प्रभो । अन्यथा जगतां नाथ ! प्राणांस्त्यजामि निश्चितम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

कवचं कथयिष्यामि सुगोप्यमतिदुर्लभम् । गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिवद्वरानने ! ॥ पूर्वस्यां पातु काली च कपाली दक्षिणेऽवतु । कुल्ला रक्षतु पाश्चात्ये कुरुकुल्ला तथोत्तरे ॥ विरोधिनी तथैशान्यां विप्रचित्ताग्निकोणके । नैर्ऋते पातु चोग्रा च वायावुग्रप्रभावतु ॥ दीप्ता तु रक्षतां शीर्षे नीला-

---

श्री महादेव ने कहा, मैं तुमको लक्ष लक्ष सहस्रवार निवारण करता हूं तथापि तुम स्त्री स्वभाव वशतः पुनर्वार जिज्ञासा करती हो । देवी कालिका का यह कवच अत्यन्त दुर्लभ और सर्वविध कामना पूर्ण करता है । तथापि तुम्हारे प्रति प्रीति वशतः अब वह कहता हूं । यह कवच न जानने से विद्या सिद्धि नहीं होती ॥

श्री देवी ने कहा । हे विभो ! यदि मेरे प्रति स्नेह हो, तो कवच कीर्त्तन कीजिये । अन्यथा हे जगत् के नाथ ! निश्चयही प्राण त्याग करूंगी ॥

श्रीमहादेवने कहा अति दुर्लभ कवच कीर्त्तन करता हूं. अतियत्नके सहित अपनी योनिकी समान इसको गुप्त रखना चाहिये । काली पूर्वदिक में रक्षा करें । कपाली दक्षिणदिक में रक्षा करे । कुल्ला पश्चिम में और कुरुकुल्ला उत्तर में, विरोधिनी ऐशान में, विप्रचित्ता अग्निकोणमें, उग्रा नैर्ऋत में, उग्रप्रभा वायुकोण में, दीप्ता मस्तक में, नीला मुखमण्डल में, घना कण्ठ में बलाका

ठ्यान्मुखमण्डले । घना रक्षतु कण्ठे च वलाका हृदयेऽवतु ॥ नाभौ मात्राजङ्घयोश्च मिता मुद्रावतु ध्वजे । ब्रह्माण्याद्या महादेव्याः सर्वत्र पान्तु सर्वदा ॥ श्लोकत्रयं महापुण्यं यज्ज्ञात्वा मत्समो भवेत् । तत्र स्नेहान्महादेवि कथयामि सुदुर्लभम् ॥

श्रीपरमशिव उवाच ।

सर्पिःसागरविस्फुरन्मणिमयद्वीपे कदम्बान्विते गेहे रत्नमये शवस्य हृदये रत्नामृतेशानने । वर्गाद्याननवामलोचनमयीं श्रीदक्षिणां कालिकां सद्यश्छिन्नशिरःकरां भगवतीं ध्यायन्ति पुण्याशयाः ॥ मद्याघूर्णितलोचनत्रयमहाशोभामयीं योषितां लक्षैः सेवितपादपद्मयुगलां श्रीभैरवीद्योतिताम् । श्रीमत्कालमुखे मुखं निदधतीं चान्द्रीं कलां बिभ्रतीं तां ध्यायन्ति सुसिद्धये भगवतीं तद्भावनानन्दिता ॥ मां·

हृदय में मात्रा नाभि में मिता दोनों जंघाओं में, मुद्रा ध्वज में, और ब्राह्मणी इत्यादि महादेवीगण सर्वत्र मेरी रक्षा और पालन करें ॥

हे देवी ! जो तीन श्लोक परम पवित्र और जिन के जाननेसे, मेरी समान होता है । अब तुम्हारे स्नेह के अनुरोध से वहदुर्लभ तीन श्लोक कीर्त्तन करता हूं । जिनका आशय पवित्र है । वही सर्पिःसागर में शोभमान मणिमय द्वीप में कदम्बान्वित रत्न गृह में शवके हृदय में सद्यछिन्न कर परं परा में सुशोभित श्री रूपणी, श्री दक्षिणा कालिका का जो ध्यान करता है ॥ १ ॥ जो तदीय भावना रूप परमानन्द सन्दोह भोग करता है। वही सिद्धि के लिये भगवती कालिका का वक्ष्यमाण ध्यान करता है । पान वशतः तीनो नेत्र घूर्णायमान होजाने से उनकी अत्यन्त शोभा उत्पन्न हुई है । लक्ष लक्ष स्त्रियें उनके दोनों चरणारविन्दों की सेवा करती हैं । उन्होंने सर्व शोभाढ्य और सर्व सौभाग्य सम्पन्न काल के मुख में मुख स्थापन करके चान्द्री कला धारण की है ॥ २ ॥ जो मांस और अत्युत्कृष्ट दुग्ध

सास्त्रगुदुग्धखण्डच्छुरितमधुमहापानमत्तां हसन्तीम् अट्टाट्टं कालकालं कहकहडमिति प्रोल्लसन्तीम् सखीपु। नृत्यप्रोद्दामहासोन्मदमुदितमहाभैरवानन्दवीचीं मातङ्गं खण्डयन्तीमभयवरकरां कालिकां तां भजामः॥ इदन्तु दिव्यं कवचं मनोज्ञं देयं कदाचिद् गुरवेऽपि नैव। महद्भयात् स्नेहरसेन दत्वा हानिः शरीरेण च साधकेषु॥

यस्मादिदन्तु कवचं लभ्यते वहुपुण्यतः। तेन दत्तन्तु सकलं सद्गुरुं परमं प्रिये!॥ यस्मै तस्मै न दातव्यं प्राकृतेभ्यो विशेषतः। प्रकाशे सिद्धिहानिः स्यात् तस्माद् यत्नेन गोपयेत्॥ गुरुपादप्रसादेन यदि काली प्रलभ्यते। जप्त्वा कालीं महाविद्यामिदन्तुं कवचं पठेत्॥ अज्ञात्वा कवचं देवि! कालिका चेत् प्रजप्यते। स नाप्नोति फलं तस्मात् परत्र नरकं व्रजेत्॥ सर्वत्र सुलभा विद्या कवचन्तु सुदुर्लभम्॥ शरीर

खण्ड में निच्छुरित मधु अतिमात्र पान करके मत्तभावापन्न हुई हैं। जो नृत्यवशतः अतिशय उद्दाम भावापन्न और महा हास्योन्माद से परम अमोदित महा भैरव के आनन्द लहरी स्वरूप और जो हस्ती को पकड़कर खंड खण्ड करती हैं। उसी वराभयकरा कालिका की भजना करता है॥ ३॥ यह विद्या मनोज्ञ कवच गुरु को भी न देवे। महाभय वा स्नेह रस प्रयुक्त दान करने से शरीर के सहित साधक की हानि होती है। क्योंकि पुञ्जीकृत पुण्य प्रभाव सेही यह कवच लाभ होता है। इसी कारण जिस को तिसको, विशेषतः प्राकृत व्यक्तिगणों को न देवे। और प्रकाश करने सेभी सिद्धि की हानि होती है। इस लिये यत्न सहित गुप्त रक्खे। गुरु के पाद प्रसाद से यदि देवी कालिका को लाभ कियाजाये। तो काली महा विद्या का जप करके यह कवच पाठ करे। हे देवि! यह कवच न जानकर काली का मंत्र जप करने से उसका फल लाभ नहीं होता। और अन्त काल के समय नरक संघटित होता है। काली का मंत्र सर्वत्र सुलभ, किन्तु कवच अत्यन्त दुर्लभ है। इस लिये शरीर, धन और स्त्री द्वारा गुरुको

धनदारेण गुरुं सन्तोष्य तत् पठेत् ॥ सफला रजनी पूजा दिवापूजा च निष्फला । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रजन्यां कवचं स्मरेत् । विवादे च रणे द्यूते विद्यायां कवितागमे । राजगेहे विचारे च सर्वत्रेदं पठेन्नरः ॥ मोहनस्तम्भनाकर्षमारणोच्चाटनं तथा । कवचस्मरणाद्देवि ! जायंते सर्वसिद्धयः ॥ अथवा किमिहोक्तेन सत्यं सत्यं मम प्रिये ! । प्रत्यक्षा दक्षिणा काली वरं यच्छति सुंदरि ! ॥ गुरौ च कवचे तंत्रे यंत्रे देवीं सदा भजेत् । गुरुस्त्राता महादेवः कवचं यः प्रयच्छति ॥ इदं तु कवचं प्राप्य हेलनं कुरुते तु यः । अचिरान्मृत्युमाप्नोति मम तुल्योऽपि साधकः ॥ स माता जनकश्चैव स गुरुः स च पूजितः । स सर्वदः स आचार्यः कवचं यः प्रयच्छति ॥

इति श्रीरुद्रयामले महातंत्रे श्रीदक्षिणकालिकायाः
परमशिवोक्तं सर्वसिद्धिदं कवचं समाप्तम् ॥

सन्तुष्ट करके, यह पाठ करना चाहिये । रात्रि में पूजा करने से वह सफल होती है । दिन में पूजा निष्फल होती है, इस लिये सर्व यत्न से रात्रि में कवच स्मरण करै । विवाद, युद्ध, द्यूतक्रीडा, विद्या, कवितागम, राजगृह विचार सर्वत्र यह कवच पाठ करै । हे देवि ! इस कवच के स्मरण मात्र से ही मोहन, स्तम्भन, आकर्षण, मारण और उच्चाटन इत्यादि सर्वविध सिद्धि लाभ होजाती है । अथवा इस विषयमें और क्या कहूं ? सत्य सत्य ही कहता हूं, देवी दक्षिणा कालिका प्रत्यक्ष होकर वरदान करती है । गुरु में कवच में तंत्र में और यंत्र में सर्वदा देवी की भजना करै । गुरुही त्राणकर्त्ता है । क्योंकि यह कवच दान करते हैं । जो व्यक्ति इस कवच को प्राप्त करके उन के प्रति अश्रद्धा करता है । वह मेरी समान होने परभी अचिरात्मृत्यु के मुख में पतित होता है । जो व्यक्ति यह कवच प्रदान करै । वही माता, वही पिता, वही गुरु, वही पूजित, वही आचार्य, और वही सम्पूर्ण दान करता है । इति दक्षिण कालिका का परम शिवोक्त सिद्धि दायक कवच समाप्त ॥

नमामि कृष्णरूपिणीं कृष्णाङ्गयष्टिधारिणीम् । समग्रतत्त्वसागर मपारपार गह्वराम् ॥ शिवाप्रभां समुज्ज्वलां स्फुरच्छशाङ्कशेखराम् । ललाटरत्नभास्करां जगत्प्रदीप्तिभास्कराम् ॥ महेन्द्रकश्यपार्चितां सनत्कुमारसंस्तुताम् । सुरासुरेन्द्र वन्दितां यथार्थनिर्मलाद्भुताम् ॥ अतर्क्यरोचिरूर्जितां विकार

देवी कालिका को नमस्कार करता हूं । वह साक्षात् कृष्ण रूपिणी अर्थात् संहार स्वरूप हैं । उनकी अङ्गयष्टि कृष्ण अर्थात् तमोगुण से व्यवच्छिन्न है । वह सम्पूर्ण तत्त्व की सागरस्वरूप हैं । वह अपार अर्थात् उनकी सीमा वा अवधारण नहीं है, और सहज में भी उनको प्राप्त नहीं किया जाता । वह पारा अर्थात् भक्तगण उनको सहजमें ही लाभ करते हैं । वह गह्वरा अर्थात् अतीव दुर्विज्ञय स्वरूप हैं । वह शिवा अर्थात् कल्याणस्वरूप हैं । वह प्रभा अर्थात् सूर्य्य चन्द्रादि ज्योतिरूप से सम्पूर्णको प्रकाश करती हैं । वह समुज्ज्वला अर्थात् विज्ञान ज्योतिस्वरूप हैं । वह स्फुरत् अर्थात् सत्स्वरूप प्रकृति हैं । वह शशाङ्का अर्थात् अमृतके आधार हैं । वह शेखरा अर्थात् सबसे श्रेष्ठ हैं । वही सबकी ललाट अर्थात् अदृष्ट स्वरूप हैं । वही रत्न अर्थात् सबसे उत्कृष्ट है । वह भास्करा अर्थात् सम्पूर्ण प्रभाकी खानस्वरूप हैं । वह जगत् अर्थात् जन्ममृत्यु हैं । प्रभास्वरूप से वारम्वार आविर्भाव और तिरोभाव साधन करती हैं । वह प्रदीप्ति अर्थात् सम्पूर्ण चैतन्यज्योति स्वरूप हैं । वह भास्करा अर्थात् वही चैतन्य ज्योतिको नित्य प्रकाश करती हैं । वही महेश्वर अर्थात् सम्पूर्ण महत् पदार्थ से श्रेष्ठ है और वही कश्यप अर्थात् सम्पूर्ण के आश्रय हैं । वह आदि देव भी उनकी अर्चना करते हैं। जो सनत् अर्थात् सर्वदाही विराजमान हैं । किसी समय जिनका अभाव वा क्षय नहीं और जो कुमार अर्थात् सम्पूर्ण अमङ्गल विनाश करतेहैं । वह भी उनका स्तव करतेहै । सुर और असुरगणके भी ईश्वर सम्पूर्ण उनकी वन्दना करतेहैं । वह यथार्थ चरम सत्यस्वरूपहैं । वह निर्मला अर्थात् शुद्धसत्वस्वरूपहैं। वह अद्भुता अर्थात् परम अश्चर्यस्वरूपहैं । तर्क द्वारा उनको प्राप्तनहीं कियाजाता । वह साक्षात् ज्योति स्वरूपहैं । वह ऊर्जिता अर्थात् अपने स्वरूपसे सम्पूर्णको

दोषवर्जिताम् । मुमुक्षुभिर्विचिन्तितां ... मृतास्थिनिर्मितस्रजां मृगेन्द्रवाहनाग्रजाम् । सुशुद्धतत्त्वतोषणां त्रिवेदपारभूषणाम् ॥ भुजङ्गहारहारिणीं कपालखण्डधारिणीम् । सुधार्मिकोपकारिणीं सुरेन्द्रवैरिघातिनीम् ॥ कुठारपाशचापिनीं कृतान्तकामभेदिनीम् । शुभांकपालमालिनीं सुवर्णकल्पशाखिनीम् ॥ श्मशानभूमिवासिनीं द्वि-

अधः कृत करती हैं । मुमुक्षुगण उनकी चिन्ता करते हैं। विशेष तत्त्व अर्थात् जगद्भ्रम निराकृत होने से, जो विज्ञान योग उत्पन्न होता है, उनके प्रभाव से ही उन को जाना जाता है । विशेष अर्थात् सांख्य, तत्त्व अर्थात् ज्ञान योग द्वाराही उनका स्वरूप अव्यक्त हुआ है । वह मृतास्थि अर्थात् प्रलय काल के समय अपनपे में सम्पूर्ण हरण करती हैं वह निर्मित स्रजा अर्थात् सम्पूर्णको माया के बलसे निर्माण करके उस माया जनित अज्ञानसे समुद्भूत ममतापाश में बद्ध करके रखती हैं वह मृगेन्द्रवाहना अर्थात् उन्होंने स्वयं हिंसा धर्मको अपने आधीन किया है । वह अग्रजा अर्थात् सबके आगे उत्पन्न हुई हैं । वह सुशुद्धा अर्थात् निरवच्छिन्नसत्त्वस्वरूप हैं । वह तत्त्वतोषणा अर्थात् एकमात्र सत्य द्वाराही संतोष लाभ करती हैं । वह तीनो वेदके पार अर्थात् अतीत हैं । वह भूषणा अर्थात् सबकोही आविर्भावमात्र से सुशोभित करती हैं । वह सदा अर्थात् सत्स्वरूपसे सम्पूर्ण व्याप्त करती हैं। वह औचित्यैकलक्षणा अर्थात् जो कुछ न्याय सङ्गत है. वह वही हैं । वह मनोजवैरी अर्थात् उन्होंने संसारबन्धन का हेतु भूत रजोगुणका ध्वंस किया है । वह लक्षणा अर्थात् संसार की सर्वत्र सर्वदा समस्त वस्तुमें उनको देखा जाता है । वह भुजङ्ग अर्थात् भोगासक्त पुरुषों की हार अर्थात संसार की प्राप्ति हरण करती हैं । वह कपाल खण्ड धारिणी अर्थात सम्पूर्ण ही अदृष्ट को परिचालन करती हैं । वह धार्मिकगणों का उपकार और सुरेन्द्रगणों के वैरी विनाश करती हैं । वह कुठार पाशचापिनी अर्थात् छेदन बन्धन निराकरण करती हैं । वह कृतान्त की कामना भेद अर्थात् मृत्यु निवारण करती हैं । वह सम्पूर्ण सौभाग्य रूपिणी हैं । वह कपालमालिनी अर्थात् तमोगुण भूषित हैं । वह सुवर्णा हैं । वह कल्प शालिनी अर्थात् समस्त

जेंद्रमौलिभाविनीम् । तमोऽन्धकारयामिनीं शिवस्वभाव कामिनीम् ॥ सहस्रसूर्य्यराजिकां धनञ्जयोग्रकारिकाम् । सुशुद्धकालकन्दलां सुभृङ्गवृन्दमंजुलाम् ॥ प्रजापिनीं प्रजावतीं नमामि मातरं सतीम् । स्वकर्मकारणेगतिं हरप्रियांच पार्वतीम् ॥ अनन्तशक्तिकान्तिदां यशोऽर्थभुक्तिमुक्तिदाम् । पुनः पुनर्जगद्धितां नमाम्यहं सुरार्चिताम् ॥ जयेश्वरि ! त्रिलोचने ! प्रसीद देवि ! पाहिमाम् । जयन्ति ते स्तुवन्ति ये शुभं लभन्त्यमोघतः ॥ सदैव ते हताद्विषः परं भवन्ति स-

---

की मनोकामना पूर्ण करती हैं। वह श्मशान अर्थात् प्रलय स्वरूपहैं। वह भूमि अर्थात् सम्पूर्ण की स्थिति स्वरूप हैं। वह वासिनी अर्थात् उन्होंने संपूर्ण को व्याप्त और आवृत किया है। वह द्विजेन्द्रमौलि भाविनी अर्थात् संपूर्ण द्विजेन्द्र मस्तक द्वारा उनकी पूजाकरते हैं। वह तमोन्धकार यामिनी अर्थात् महा प्रलयरात्रि हैं। वह शिवकी अर्थात् सर्व मङ्गलमय पुरुष की स्वभाव कामिनी अर्थात् प्रकृति हैं। वह सहस्र सूर्य की समान प्रकाश युक्त हैं। वह धन और वही जय हैं। वह उग्रकारिका अर्थात् महा प्रलयादि संघटित करती हैं। वह प्रजापिनी अर्थात् सबही उनका जपकरते हैं। वह प्रजावती अर्थात् संपूर्ण संसार ने उनसे जन्म ग्रहण किया है। वह सब की माता हैं। वह सती अर्थात् सर्वकाल सर्वदेश में स्थिति करतीहैं। उनको प्रणाम करता हूं। वह हरप्रिय अर्थात् साक्षात् मायारूपसे सम्पूर्ण को मोहित करके उनकी प्रीति आकर्षण करती हैं। वह पार्वती अर्थात् अङ्कारस्वरूप हैं। वह अनन्त शक्ति हैं। वह कान्तिदा अर्थात् माया प्रसव करती हैं। वह भुक्ति मुक्ति और यशका साधन हैं। वह जगत् का हितकरने वाली और सुख देनेवाली हैं। इस लिये सम्पूर्ण उनकी अच्चना करते हैं। मैं भी इसी कारण बार बार उनको नमस्कार करता हूं। तुम्ही जया, तुम्ही ईश्वरी, तुम्ही त्रिलोचना अर्थात् त्रिभुवन के लोचन अर्थात् ज्ञानस्वरूप हो। अतएव प्रसन्न हो और मेरी रक्षा करो। जो तुम्हारा स्तव करते हैं, वह जय लाभ करते हैं। वही शुभ संग्रह करते हैं। वही सर्वदा शत्रुसंहार करते हैं। एवं वही

ज्जुषः । नराः परेशितेऽधुना प्रसाधि मां करोमि किम् । अतीव मोहितात्मनो वृथा विचेष्टितस्य मे । कुरु प्रसादितं मनोयथास्मि जन्मभंजनः ॥ तथा भवन्तु तावका यथैव घोषिताल्लकाः । इमां स्तुतिं ममेरितां पठन्ति कालिसाधकाः । न ते पुनः सुदुस्तरे पतन्ति मोहगह्वरे ॥

इतिश्रीब्रह्मकृतकालिस्तवः समाप्तः ।

इतिश्रीपूर्णानन्दगिरि परिव्राजक परमहंसविरचितं
श्यामारहस्यं समाप्तम् ॥

सर्वदा सत् सम्भोग करते हैं । हे शिवे ! अब आज्ञाकरो, मुझको क्या करना चाहिये । मेरी आत्मा मोहसे अतीव आच्छन्न हैं । इस लिये मैं वृथा कार्य में सर्वदा प्रवृत्त होता हूं । अतएव जिस से फिर मेरा जन्म न हो, वही विधान करो । काली साधकगण मेरा कृत यह स्तोत्र पाठ करने से पुनर्वार मोहगह्वर में पतित नहीं होते ॥

इति श्री ब्रह्मकृतकाली स्तव सम्पूर्णम् ।

